"हरिवंश पुराण में प्रतिबिम्बित समाज एवं धर्म का ऐतिहासिक अनुशीलन"

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी (उ०प्र०)

इतिहास विभाग के अन्तर्गत
डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत

2004

शोध निर्देशक
प्रो० बी०एन०राय
सेवा निवृत्त अध्यक्ष
इतिहास विभाग

शोधार्थिनी
कु० श्वेता सिंह
इतिहास विभाग

अनुसन्धान केन्द्र
परास्नातक इतिहास विभाग
पं० जवाहर लाल नेहरू पोस्ट ग्रेजुएट कालेज (बाँदा)

प्रो0बी0एन0 राय

सेoनिo अध्यक्ष, इतिहास विभाग
पं0 जवाहरलाल नेहरु
पोस्टग्रेजुएट कालेज
बाँदा (उ0प्र0)

दिनांक 20/XII/04
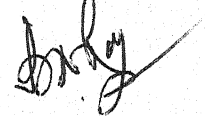
प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि–

1. कु0 श्वेता सिंह ने मेरे निर्देशन में "हरिवंश पुराण में प्रतिबिम्बित समाज एवं धर्म का ऐतिहासिक अनुशीलन" विषय पर शोध कार्य किया है।
2. इन्होने मेरे यहां निर्धारित अवधि तक उपस्थिति दी है।
3. इनका शोध कार्य मौलिक है।

यह शोध–प्रबन्ध अब इस स्थिति में है कि इसे पी0एच0डी0 उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिये प्रस्तुत किया जा सकता है।

शोध पर्यवेक्षक

(बी0एन0 राय)

प्राक्कथन

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के आधार भूत ग्रन्थों में पुराण अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। धर्म, दर्शन एवं समाज से सम्बन्धित अनेक तत्व तो इनमें मिलते ही हैं इसके अतिरिक्त इतिहास के अनेक वंशों जैसे आन्ध्र, वाकाटक, भारशिव, और गुप्त आदि का इतिहास इनसे स्पष्ट हो जाता है। प्राचीन भारतीय विद्याओं को सुरक्षित एवं संग्रहीत करने के कारण इन्हे विश्वकोष माना जाता है। भारतीय संस्कृति के स्वरुप की जानकरी के लिये तो पुराणों के अध्ययन की महती आवश्यकता हैं। पुराण भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है वह आधारशिला है जिस पर आधुनिक भारतीय समाज अपने नियमन को प्रतिष्ठित करता है।

यद्यपि प्राचीन भारतीय धर्मो का उद्गम स्त्रोत वेदों को माना जाता है किन्तु भारतीय समाज विशेष रुप से ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी से आज तक प्रधानतया पुराण सम्मत धार्मिक मान्यताओं सें अनुप्राणित रहा है। इसमें पौराणिक साहित्य तथा उसमें अन्तर्निहित मूल्यों एवं मान्यताओं की जीवन्तता को बोध होता है। इसमें उल्लिखित सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित आदि का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में होने पर भी मूल तथ्य से सम्यक् रुप से सम्बद्ध हैं। छान्दोग्योपनिषद के उद्गाता ऋषि ने पुराणों की इन्हीं विलक्षणताओं को ध्यान में रखकर उन्हें 'पंचमवेद' की मान्यता प्रदान की है।

विगत वर्षो में पौराणिक 'वंशानुचरित' विवरणों को प्राचीन भारतीय इतिहास के परिज्ञान में विशेष उपयोगी साक्ष्य स्वीकार करने की प्रवृत्ति विकसित हुई हैं। वस्तुतः प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में ही यह विशेषता रही है कि इसमें मानव संस्कृति की कोड में इतिहास को सुरक्षित रखा गया है। पौराणिक साहित्य में विपुल ऐतिहासिक सामग्री कथा–परिधानों से इतनी लिपटी हुई है, कि उसमें से विशुद्ध ऐतिहासिक तथ्य को ग्रहण करना नितान्त दुष्कर कार्य है। पौराणिक रूपकात्मक अथवा वर्णनात्मक शैली की प्रकृति पर पूर्ण ध्यान दिये बिना इनसे ऐतिहासिक सामग्री को संग्रहीत किया ही नहीं जा सकता है। कलियुग राजवंश वृतान्तों से

सम्बन्धित अधिकांश ऐतिहासिक विवरणों की पुष्टि तो अन्यान्य साहित्यिक तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से की जा सकती है परन्तु कलियुग के पूर्व द्वापर एवं त्रेता युगों के प्रारम्भिक आर्य नृपतियों की विपुल ऐतिहासिक सूचनायें जिन्हें पुराणों में सुरिक्षत किया गया है, संयोगवश अभी तक पुरातात्विक साधनों से उनकी सम्यक् रूप में पुष्टि नही की जा सकी है। सम्भवतः ऐसा पुरातात्विक गणेषणाओं के पूर्णतः विकसित न हो पाने के कारण ही है क्योंकि जितनी विस्तृत सीमा पर उक्त अन्वेषण होना चाहिए था, आज भी सम्भव नहीं हो सका है। कुछ भी हो, पौराणिक वंशानुचरित विवरण मूल भारतीय इतिहास लेखनधारा में ही समाहित माने जा सकते हैं, जिनसे प्रेरणा प्राप्त कर अन्य प्राचीन साहित्यकारों ने इतिवृत्तों को सुरक्षित करना यथेष्ट समझा था।

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति और धर्म के स्वरूप तथा तत्कालीन समाज की जानकारी के लिये पुराणों का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी रहा है। पुराण भारतीय संस्कृति और धर्म के मेरूदण्ड रहे हैं। प्रायः अनेक प्राचीन और अर्वाचीन विद्वान पुराणों के ऐतिहासिक और धार्मिक महत्व को स्वीकार करते हैं। यद्यपि अष्टादश पुराणों में हरिवंश का परिगणन नहीं किया जाता है क्यों कि इसे महाभारत का खिल माना जाता है। किन्तु स्वरूप से यह एक पुराण है और पुराण के सम्पूर्ण लक्षण इसमें घटित होते हैं। यह पुराण स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ है इसमें जहां एक ओर अन्य पुराणों की विशेषतायें प्राप्त होती हैं वहीं दूसरी ओर इसकी अपनी विशेषतायें भी हैं। जिस प्रकार से प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों ने अन्य पुराणों का अनुशीलन और परिशीलन किया है वैसी हरिवंश पुराण की ओर विद्वानों की दृष्टि कम ही पड़ी है। सम्भवतः इसका कारण यह हो सकता है कि एक तो यह महाभारत का खिल पर्व है और दूसरा पुराण के रूप में इसका विकास अर्वाचीन रहा है।

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से हरिवंश एक महत्वपूर्ण पुराण प्रतीत होता है। पुराणों के प्रसिद्ध अध्येतागण फरक्यूहर, विण्टरनित्स, हापकिन्स, डॉ. हाजरा इत्यादि विद्वानों ने भी हरिवंश पुराण के महत्व को निरूपित किया हैं। फरक्यूहर के अनुसार

हरिवंश पुराण बीसवाँ महापुराण है। चूंकि अन्य पुराणों की भांति हरिवंश पुराण के अध्ययन के प्रति विद्वानों का ध्यान अधिक आकर्षित नहीं हुआ है एक मात्र श्रीमती वीणापाणि पाण्डे ने हरिवंश पुराण के सांस्कृतिक पक्ष का विवेचन किया है किन्तु उन्होंने हरिवंश पुराण के सामाजिक, धार्मिक और ऐतिहासिक अध्ययन की ओर कम ध्यान दिया है। इसलिये इस शून्य को भरने के लिये शोध प्रबन्ध "हरिवंश पुराण में प्रतिबिम्बित समाज एवं धर्म का ऐतिहासिक अनुशीलन" लिखा गया है।

इतिहास का ज्ञान प्राप्त करना और इतिहास में रूचि रखना दोनों बड़े कठिन कार्य हैं। आज यह जो शोध प्रबन्ध पूर्णता को प्राप्त हुआ है उसमें केवल मेरा परिश्रम ही नहीं है बल्कि पं0जे0एन0पी0जी0 कालेज बांदा के सेवानिवृत्त इतिहास विभागाध्यक्ष प्रो0 बी0एन0 रॉय जी के कुशल निर्देशन का परिणाम है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह शोध प्रबन्ध भविष्य में उपयोगी सिद्ध होगा तथा यह हरिवंश पुराण से सम्बन्धित ऐतिहासिक सोंच के यथार्थ को प्रस्तुत करेगा और पाठकगण इससे लाभ उठायेंगे।

कोई भी शोध कार्य एक लक्ष्य की पूर्ति के लिये किया जाता है और जब तक लक्ष्य की पूर्ति नही हो जाती उस समय तक यह शोध कार्य चलता रहता है। जिन लक्ष्यों को ध्यान में रखकर यह शोध कार्य किया गया है उनकी पूर्ति हुई है तथा लक्ष्य पूर्ति के उपरान्त एक विशेष प्रकार का आत्म संतोष भी मुझे प्राप्त हुआ है।

शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री शोध के प्रमुख बिन्दु "हरिवंश पुराण में प्रतिबम्बित सामाज एवं धर्म का ऐतिहासिक अनुशीलन" से सम्बन्धित है। शोध प्रबन्ध लेखन में शोध प्रबन्ध की परिसीमाओं पर कड़ी निगाह रखी गई है ताकि शोध प्रबन्ध विषयान्तर न हो। अध्ययन की सुविधा के लिये यह शोध प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त किया गया है–

1– हरिवंश पुराण परिचय

2– हरिवंश पुराण एवम् अन्य पुराणों की तुलनात्मक समीक्षा

3– हरिवंश पुराण में वर्णित समाज

4— हरिवंश पुराण में वर्णित धर्म

5— हरिवंश पुराण में प्राप्त ऐतिहासिक राजवंश परम्परायें

6— हरिवंश पुराण में वर्णित स्त्रियों की सामाजिक और धार्मिक स्थिति

7— उपसंहार

इस शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में हरिवंश पुराण का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है इसके अन्तर्गत पुराण का काल, हरिवंश पुराण का पुराणत्व, पुराण का लक्षण, हरिवंश से प्राप्त पुराण लक्षण सामग्री, पुराण शब्द की व्युत्पत्ति, हरिवंश खिल अथवा पुराण, महाभारत के खिलपर्व के रूप में हरिवंश, अष्टादश पुराणों के मध्य हरिवंश का परिगणन, हरिवंश का प्रतिपाद्य विषय, हरिवंश के प्रणेता, हरिवंश का रचनाकाल, हरिवंश की धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्ता, हरिवंश का सांस्कृतिक पक्ष, हरिवंश में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री, हरिवंश में प्राप्त अध्ययन विषयीभूत विषय वस्तु का ऐतिहासिक दृष्टि से पर्यालोचन आदि विषयों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत हरिवंश पुराण एवं अन्य पुराणों की तुलनात्मक समीक्षा, प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से, धर्म निरूपण की दृष्टि से, संस्कृति की दृष्टि से, ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से तथा पौराणिक प्रयोजनों की दृष्टि से की गयी है।

तृतीय अध्याय में "हरिवंश पुराण में वर्णित समाज के अन्तर्गत सामाज के विविध अंगों यथा वर्ण, आश्रम, संस्कार, वेशभूषा, आभूषण, खान—पान, रहन—सहन, रीति—रिवाज, अंधविश्वास, सामाजिक उत्सव, सामाज का स्तर, शिक्षा, स्त्रियों की स्थिति आदि पर प्रकाश डाला गया है।

चतुर्थ अध्याय में हरिवंश पुराण में वर्णित धर्म के अन्तर्गत वैदिक धर्म, पौराणिक धर्म, शैव धर्म, शाक्त धर्म, वैष्णव धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, रामोपासना, कृष्णोपासना, धर्मसमन्वय, यज्ञ (पारिवारिक स्तर पर), उपासना पद्धति (जप, तप, दान, भक्ति), धार्मिक उत्सव (तीज त्योहार आदि), स्त्री और पुरूषों के धर्म में समानता एवं भिन्नता आदि बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है।

पंचम अध्याय में "हरिवंश पुराण में प्राप्त ऐतिहासिक राजवंश परम्परायें" नामक शीर्षक के अन्तर्गत हरिवंश में मिलने वाले इक्ष्वाकु वंश, अजमीढ़ वंश, काशी का राजवंश, मगध राजवंश, पुरूवंश, यदु इत्यादि राजवंशों पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही आर्यों के साथ अन्य जातियों की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को भी रेखांकित किया गया है।

षष्ठ अध्याय में हरिवंश पुराण में वर्णित स्त्रियों की सामाजिक और धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

सप्तम् अध्याय उपरोक्त सभी बिन्दुओं के गहन अध्ययन के पश्चात् निकाले गये निष्कर्षों एवं सम्भावनाओं से सम्बन्धित है।

वह, जिसने इस महान विश्व को सृजित किया है। वह, जिसने सम्पूर्ण जीवों को आकृति प्रदान की है। वह, जिसने पृथ्वी को धन–धान्य से पूर्ण किया तथा उसे रत्नगर्भा बनाया। वह, जिसने मुझे जीवन प्रदान किया, कर्म करने के लिये हाथ और पैर दिये तथा चिन्तन करने के लिये बुद्धि प्रदान की, मेरा सर्वस्व है। मैं उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। तथा उसकी बहुत बड़ी आभारी हूँ। जिसकी अनुकम्पा से मुझे शोध करने की प्रेरणा मिली। जिसने मुझे बुद्धि और संसाधन प्रदान किये। मैं उसके प्रति नतमस्तक हूँ। यह शोध प्रबन्ध उसी परमपिता परमेश्वर की महान अनुकम्पा का प्रतिफल है।

भारतीय संस्कृति में गुरू और आचार्य की महिमा ईश्वर से बढ़कर बताई गई है। गुरू जब ज्ञान देता है तभी यथार्थ का बोध होता है। विषय चयन से लेकर शोध प्रबन्ध की पूर्णता तक जिस अपनत्व, उदारता एवं विद्वता के साथ मेरे शोध निर्देशक पं0जे0एन0पी0जी0 कालेज बाँदा के इतिहास के सेवानिवृत्त विभागाध्यक्ष पूज्यनीय प्रो0 बी0एन0राय जी ने मेरी सहायता की है, वह मेरे लिये न केवल पथ प्रदर्शक बनी वरन् मेरी भविष्य की योजनाओं के लिये एक प्रेरक प्रसंग भी बनी। शोध के प्रति गहन अभिरूचि उत्पन्न करके, विवादास्पद विषयों पर मेरी शंकाओं का समाधान करके तथा उचित दिशानिर्देशन प्रदान करके लक्ष्य के प्रति सदैव समर्पित रहने का जो मूलमंत्र गुरूवर प्रो0 रायसाहब ने दिया है, उसके लिये शाब्दिक कृतज्ञता

ज्ञापित करना संभव नहीं है। शोध पर्यवेक्षक के रूप में गुरूवर प्रो0 रॉय साहब ने मुझे कई रूपों में उपकृत किया है इसके लिये मैं उनकी आजीवन ऋणी रहूंगी। जो प्यार एवं स्नेह श्रीमती रॉय ने मुझे दिया है। उसके लियें भी मैं उनके प्रति हार्दिक श्रद्धा निवेदित करती हूँ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के डा.0 जे0एन0 पाण्डे जी की मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध कार्य में गहन अभिरूचि ली तथा समय–समय पर उचित दिशा निर्देशन भी प्रदान किया। संस्कृति विभाग के असिस्टेंट डायरेक्टर डा0 लवकुश प्रसाद द्विवेदी जी, जो कि मेरे महाविद्यालय के इतिहास विभाग के भूतपूर्व प्रवक्ता भी रहे हैं, ने विद्यार्थी जीवन से इस स्थिति तक सदैव मेरा पथ प्रर्दशन किया है इसके लिये मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूं।

पं0 जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय बाँदा जहाँ से मैंने शिक्षा प्राप्त की है तथा यही मेरा शोध केन्द्र भी रहा है, यहां कि विभिन्न विद्वानों का मुझे मार्ग दर्शन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है। इनमें सर्वप्रथम प्राचार्य डॉ0 एन.एल.शुक्ला जी की मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होने शोध कार्य हेतु मुझे पर्याप्त सुविधायें प्रदान कीं। इनकें साथ–साथ सेवानिवृत्त संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ0 आर.ए. त्रिपाठी जी, समाज शास्त्र के प्रवक्ता डॉ0 शिवशरण गुप्ता (दादू) एवं इतिहास विभाग के अंशकालिक प्रवक्ता डॉ0 सन्तोष तिवारी जी की मैं ह्रदय से आभारी हूँ। जिन्होने समय–समय पर मेरी हर सम्भव मदद की तथा विषय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सामग्री भी प्रदान की।

पं0 जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय बांदा के पुस्तकालय, राजकीय पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय, बामदेव संस्कृत महाविद्यालय बांदा के पुस्तकालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के पुस्तकालय, गंगानाथ झा शोध संस्थान, इलाहाबाद के पुस्तकालय सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पुस्तकालय के पुस्तकालयीय कर्मचारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ, जहां से मुझे पुस्तकीय सहायता प्राप्त हुई। इस शोध प्रबन्ध के प्रणयन में मैने जिन प्रतिष्ठित विद्वानों की प्रामाणिक पुस्तकों का सहयोग लिया है, उन सभी विद्वानों के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

मेरे पूज्यनीय माता–पिता एवं अन्य परिवारीजन भी श्रद्धा और प्यार के पात्र हैं, जिन्होनें इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिये मुझे हर प्रकार के संसाधन उपलब्ध कराये। मेरे माता–पिता के ह्रदय में यह अभिलाषा थी, कि मैं कुछ ऐसा करूँ जिससे पूरा परिवार गर्व का अनुभव करें, मैंने यह शोधकार्य उन्हीं की प्रेरणा एवं सहयोग से किया है। मेरे पिता श्री राजेन्द्र सिंह एडवोकेट, माता श्रीमती शशि गौतम, दादी श्रीमती बदामा बाई, भाई शैलेन्द्र सिंह, राघवेन्द्र सिंह, बृजेन्द्र सिंह, देवेन्द्र सिंह, बहनें सविता, सरिता, पूर्णिमा मेरे ज्ञानवर्द्धन मे सदैव सहयोगी रही हैं तथा मुझे हर प्रकार की सुख सुविधा उपलब्ध कराई है। इसके लिये मैं सदैव इन सबकी ऋणी रहूंगी।

इस शोध प्रबन्ध के स्वच्छ एवं आकर्षण कम्प्यूटर टाइप के लिये मैं **ZEE NET** कम्प्यूटर महेश्वरी देवी रोड बांदा के टाइप राइटर श्री मिथलेश कुमार, श्री विवेक गुप्ता और मोनू को कोटिशः धन्यवाद देती हूँ। जिनके अथक परिश्रम से यह शोध प्रबन्ध वर्तमान रूप ले सका। अत्यन्त सावधानी के बाद भी यदि प्रूफ सम्बन्धी कुछ गलतियाँ रह गयी हों तो उनके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

स्थान – बांदा

दिनांक –20/12/2004

शोधार्थिनी

श्वेता सिंह

(कु0 श्वेता सिंह)

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

- हरिवंश पुराण का परिचय
- पुराण का काल
- हरिवंश पुराण का पुराणत्व
- 'पुराण' का लक्षण
- हरिवंश से प्राप्त पुराण–लक्षण–सामग्री
- 'पुराण शब्द की व्युत्पति
- हरिवंश–रिवल अथवा पुराण
- महाभारत के खिलपर्व के रुप में हरिवंश
- अष्टादश पुराणों, के मध्य हरिवंश का परिगणन
- हरिवंश का प्रतिपाद्य विषय
- हरिवंश के प्रणेता
- हरिवंश का रचनाकाल
- हरिवंश की धार्मिक एवं ऐतिहासिक, महत्ता
- हरिवंश का सांस्कृतिक पक्ष
- हरिवंश में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री
- हरिवंश में प्राप्त अध्ययन–विषयीभूत विषय वस्तु का ऐतिहासिक दृष्टि से पर्यालोचन

हरिवंश पुराण का परिचय

पुराण भारतीय इतिहास के गौरव ग्रन्थ हैं। पुराणों के बारे में तो यहां तक कहा गया है कि बिना पुराण के अध्ययन के कोई भी व्यक्ति विद्वान नहीं बन सकता। प्राचीन मनीषियों का तो यहां तक कहना है कि 'कोई द्विज चारों वेदों को तथा उनके अंगों–उप निषदों को जानता भले हो लेकिन यदि वह पुराण को नहीं जानता तो वह विलक्षण–चतुर तथा शास्त्र कुशल नहीं माना जा सकता। यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं है कि वेद हमारे सनातन धर्म के सर्वप्रामाणिक तथा प्राचीनतम ग्रन्थ हैं लेकिन इसके साथ–साथ वेदों के साथ ही शास्त्रों में पुराणों की भी महिमा गायी गयी है, पुराणों को साक्षात श्री हरि का रुप बताया गया है। वेद का उपबृंहण करने वाला पुराण इसलिये 'वेद का पूरक' माना जाता है। पुराण शब्द का एक अर्थ 'पुरणात पुराणम्' भी है जिसका तात्पर्य यही है कि वेदार्थ के करने के कारण ही इस ग्रन्थ को ''पुराण' नामकरण प्राप्त पूरण हुआ। इसी व्युत्पत्ति के आधार पर सुप्रसिद्ध विद्वान जीवगोस्वामी पुराण को वेद के समान ही अपौरुषेय मानते हैं अपने मत की पृष्टि के लिये वे तर्क देते हैं कि ''पूर्ति करने वाला पदार्थ भी मूल पदार्थ से सर्वथा सादृश्य धारण करता है। पूरक पदार्थ में भिन्नता होने के कारण मूल पदार्थ का पूरण क्या यथार्थतः कभी हो सकता है? सुवर्ण आभूषण की पूर्ति क्या जतु (लाह) कभी कर सकता है? सोने के गहनों में यदि कहीं च्युति हो जाय, तो उसकी पूर्ति सोने से ही की जा सकती है, लाह से नहीं। पूरक पदार्थ की मूल, पदार्थ से एक जातियता अनिवार्य है।'' इस तर्क का आश्रय लेकर इतनी दूर तक न जाने पर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि बेदार्थ का उपबृंहण पुराण सर्वथा करता है। महाभारत मे व्यास जी का यह प्रख्यात श्लोक इसी तथ्य की ओर संकेत करता है–

''इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
विभेत्यल्पश्रुताद् वेदों मामयं प्रहरिष्यति।।''[1]

अर्थात इतिहास और पुराण के द्वारा वेद का उपबृंहण करना चाहिये इसीलिये वेद अल्पश्रुत कम शास्त्र पढ़ने वाले से सदा डरा रहता है कि कहीं वह मुझे धोखा देकर ठग

न डाले अथवा (मार न डाले)।

सुप्रसिद्ध विद्वान जीव गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ तत्वसन्दर्भ में पुराणार्थ की वेदार्थ से महनीयता तीन कारणो से मानी हैं।

1. वैदिक साहित्य की दुष्पारता :-

वेद का सहित्य इतना विशाल है कि उसका पार पाना एकान्ततः कठिन है।

2. वेदार्थ की दुरधिगमता :-

वेद की भाषा के सर्वाधिक प्राचीन होने के कारण उसके अर्थ को समझना नितान्त कष्ट साध्य है।

3. वेदार्थ के निर्णय में मुनियों का परस्पर विरोध :-

उदाहरणार्थ वैदिक 'वृत्र' के स्वरुप का निर्णय आज भी यथारुपेर्ण नहीं हो पाया। इसीलिये महर्षि यास्क ने अपने 'निरुक्त' में नाना सम्प्रदायों का उल्लेख कर निर्णय के प्रश्न को खुला ही छोड़ दिया है।

लेकिन उपर्युक्त कारणों से उत्पन्न दुरुहता पुराण में कही भी नहीं है। पुराण न तो दुष्पार है न उसका अर्थ दुरधिगम है और न ही उसके अर्थ निर्णय में मुनीनां च मतिभ्रमः वाली बात है। इसी सन्दर्भ में पुराण तथा वेद की शैली तथा भाषागत वैभिन्य को मूलतः समझ लेना भी नितान्त आवश्यक प्रतीत होती हैं। जहां वेद की भाषा प्राचीन तथा दुरुह है और वेदो की शैली रुपकमयी तथा प्रतीकात्मक है वहीं इसके ठीक विपरीत पुराण की भाषा व्यावहारिक तथा सरल है और पुराणों की शैली रोचक तथा आख्यानमयी है। शायद इसीलिये अशिक्षित जनता के ह्रदय तक धर्म के तत्व को सुबोध भाषा के द्वारा पहुंचा देने में पुराण का प्रतिस्पर्धी कोई साहित्य नहीं है। यद्यपि स्मृतियाँ भी वेद–प्रतिपादित धर्म का वर्णन करती हैं परन्तु वे उपदेशमयी होने के कारण आकर्षण विहीन हैं लेकिन पुराण अपने उपदेशों को कथा–कहानी, आख्यान–उपाख्यान के रुप में प्रस्तुत करता है और इसीलिये उसका आकर्षण सर्वातिशायी है। जनता के हदय को उतना न तो वेद का दुरुह मन्त्र आकृष्ट करता है। और न स्मृति का शुष्क श्लोक जितना कि पुराण का भक्ति संपुटित सरल श्लोक आकर्षित करता है इसीलिये नारदीय पुराण का कथन है –

"वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थ वरानने।

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वेपुरणें नात्र संशयः।।[2]

प्राचीनकाल में पुराण के विषय में दो दृष्टियाँ देखने को मिलती हैं। एक अर्थ में तो यह प्रचीनकाल के वृत्तों के विषय में विद्या के रुप में प्रयुक्त होता था। दूसरे अर्थ में यह एक विशिष्ट साहित्य या गन्थ के लिये प्रयुक्त किया गया था। ऋग्वेद में 'पुराण' शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया गया है।[3] परन्तु इन स्थलों पर पुराण शब्द केवल प्राचीनता का ही बोधक है। ऋग्वेद में ही अन्यत्र 'पुराणी' शब्द 'गांथा' शब्द के विशेषण रूप में प्रयुक्त मिलता है। [4] इससे अर्थ लगाया जा सकता है कि ऋग्वैदिककाल में कुछ गाथाएं ऐसी विद्यमान थीं। जिनका उदय किसी प्राचीनकाल में हुआ था। अथर्ववेद में हमें 'पुराण' शब्द इतिहास, गाथा, नाराशयी शब्दों के साथ प्रयुक्त मिलता है यथा–

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।

उचिछष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः ।। [5]

इतिहास गाथा तथा नाराशंसी के साथ पुराण शब्द का सह प्रयोग कहा इन सबके साहित्यिक रूप में समान आकार की ओर इंगित करता है कि 'वैदिक युग में ही साहित्य की प्रवहमान दो धारायें प्रतीत होती हैं– एक धारा तो विशुद्ध धार्मिक है जिसमें किसी देवता की स्तुति तथा प्रार्थना ही मुख्य लक्ष्य है। दूसरी धारा विशुद्ध लौकिक है जिसमें लोक में ख्याति पाने वाले महान् व्यक्तियों का तथा लोक प्रसिद्ध वृत्त का वर्णन करना ही अभीष्ट तात्पर्य होता है। पुराण का सम्बन्ध इसी द्वितीय धारा से मानना नितान्त उपयुक्त प्रतीत होता है।

अर्थवेद में कहा गया है–

"येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धा तय इद् विदुः।

यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत् पुराणवितं।"[7]

अर्थात् इस (दिःखती हुई भूमि) से पहले (अर्थात पहले कल्पवाली) जो भूमि थी, उस भूमि को सत्य ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं। जो निश्चय करके उस प्रथम कल्पवाली भूमि को नामतः यथार्थ रुप से जान ले वह पुराणवित (अर्थात् पुराणों के वृतान्त को जानने वाला) माना जाना चाहिये।

अथर्ववेद के इन उल्लेखों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अथर्ववेद के काल में पुराण का तथा पुराणविद् व्यक्तियों का अस्तित्व अवश्यमेव विद्यमान था।

"शतपथ ब्राम्हण में पुराण को 'वेद' कहा गया है।[8] 'बृहदारण्य कोपनिषद' पुराण को ऋग्वेद आदिके ही समान महाभूत का निःश्वास मानती है यथा–

"अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङिग्रस इतिहास पुराणम्।।[9]

इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद में पुराण को पंचम वेद मानकर वेद के समान ही उसकी अध्येतव्यता प्रतिपादित की गयी है।[10]

उपरोक्त विभिन्न उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल के उतर युग में पुराण नाम के अनेक ग्रन्थ रहे होंगे लेकिन उपर्युक्त पुराणों में पुराण शब्द के एकवचन में उपलब्ध होने से उसके एक ही संख्या में होने की अधिक सम्भावना है जिसमें उस समय के प्राचीन कथानकों के संकलन के साथ ही तत्कालीन धर्म और संस्कृति तथा वंश परम्परा आदि का विवरण रहा होगा। कथानकों की पुरातन्ता के कारण ही इन ग्रन्थों को 'पुराण' नाम से अभिहित किया गया होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि 'मत्स्य पुराण'[11] में जिस 'पुराणसंहिता' का उल्लेख पाया जाता है वह कदाचित् यही वैदिककालीन पुराण था परन्तु वर्तमान में वह उपलब्ध नहीं है।

सम्प्रति जो पुराण उपलब्ध होते हैं उनकी मुख्य विशेषता उनका पंचलक्षणी होना है। 'श्रीमद्भागवत' के अनुसार ये पांच लक्षण निम्नलिखित है।

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशों मन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितंचैव पुराणं पंचलक्षणम्।।

जिन प्रसिद्ध 18 पुराणों को इनसे अभिन्न माना जाता है उनमें सेकतियय में ही ये लक्षण प्राप्त होते हैं। फिर भी ये सभी 'पुराण' वैदिक पुराण में भिन्न है यह स्पष्ट है।

पुराण का काल :-

उपलब्ध पुराणों की संख्या 18 है। इनका रचनाकाल क्या है? इस सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं है। पुराणों के कुछ अंश अत्यन्त प्राचीन है। और कुछ बहुत बाद के पुराणों

के काल निर्धारण के लिये निम्नलिखित प्रमाणों के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकालने में मदद मिलती हैं–

1. शंकराचार्य तथा कुमारिल भट्ट ने अपने ग्रन्थों में पुराणों के उद्धरण दिये हैं। बाणभट्ट (625ई0) ने अपने ग्रन्थ हर्ष चरित में इस बात का उल्लेख किया है कि उन्होने अपने जन्मस्थान में वायुपुराण के कथापारायण को सुना था। अपने ग्रन्थ 'कादम्बरी' में भी बाणभट्ट ने 'पुराणेषु वायु प्रलपितम्' कहकर वायुपुरण के अस्तित्व की सूचना दी हैं।
2. पुराणों में कलियुग के राजाओं का जो वर्णन किया गया है उसकी परीक्षा भी समयनिरुपण करने में विशेष सहायक है। विष्णु पुराण में मौर्य वंश का प्रामाणिक विवरण दिया गया है। मत्स्य पुराण दक्षिण के आन्ध्र राजाओं का (लगभग 225 ई0) प्रामाणिक इतिवृत्त प्रस्तुत करता है। वायुपुराण गुप्त राजाओं के प्रारम्भिक इतिहास की सूचना देता है। अतः पुराणों की रचना का काल गुप्तकाल के बाद का नहीं माना जा सकता।
3. वर्तमान महाभारत और पुराणों का परस्पर सम्बन्ध भी विवेचनीय है। महाभारत का उपलब्ध वर्तमान रुप प्राप्त होने से भी पहले पुराणों का अस्तित्व था। महाभारत कथा के वक्ता उग्रश्रवा सूत लोमहर्षण के पुत्र थे। वे पुराणों में भी पूर्ण रूप से निष्णात बतलाये गये हैं। लोमहर्षण भी पुराणों के विशेष ज्ञाता के रूप में प्रसिद्ध थे। हरिवंश में वायुपुराण के उल्लेख ही नहीं मिलते अपितु वह वर्तमान वायु–पुराण के साथ अनेक अंशों में पर्याप्त साम्य भी रखता है। बहुत से आख्यान तथा उपदेशात्मक श्लोक पुराणों तथा महाभारत में समान रुप से उपलब्ध होते हैं। डाक्टर लूडर्स ने इस बात को प्रमाणतः सिद्ध किया है कि ऋष्यश्रृग्डं का जो आख्यान पद्मपुराण में मिलता है। वह महाभारत में उपलब्ध आख्यान की अपेक्षा प्राचीन है। इस विवेचना के आधार पर हम कह सकते हैं कि महाभारत के वर्तमान संस्करण के अस्तित्व में आने के बहुत पहले ही पुराण अस्तित्व में थे और जो पुराण इस समय उपलब्ध हो रहे हैं उनमें भी बहुत सी सामग्री महाभारत की अपेक्षा कहीं अधिक पुरानी हैं।
4. कौटिल्य का अर्थशास्त्र पुराणों से अच्छी तरह परिचित हैं। कौटिल्य का कथन है कि

कुमार्ग पर चलने वाले राजकुमारों को पुराणों का उपदेश देकर सन्मार्ग पर लाना चाहिये। इतना ही नहीं कौटिल्य ने पौराणिक को राज्य के अधिकारियों में अन्यतम स्थान दिया है। अतः पुराणों को कौटिल्य से प्राचीन मानना उचित हैं।

5. सूत्र ग्रन्थों के अवलोकन से पुराणों के अस्तित्व का कुछ परिचय मिलता है। इस काल में पुराण ग्रन्थ रुप में निबद्ध हो चुके थे और उनका स्वरुप वही था जिस रुप में वे आजकल हमें उपलब्ध हो रहे हैं। गौतम तथा आपस्तम्ब के प्राचीनतम धर्मसूत्रों में पुराणों का उल्लेख है गौतम धर्मसूत्र में लिखा है कि " राजा को अपनी शासन व्यवस्था के लिये वेद, धर्म शास्त्र, वेदांग और पुराण के प्रमाण बनाना चाहिए। [12] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में पुराण से सम्बन्धित उद्वरण और अधिक महत्वपूर्ण ढंग से दिया गया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में दो उद्वरण पद्म पुराण से उद्घृत किये गये हैं। और तीसरा उद्वरण भविष्यत् पुराण से हैं। ये तीनों उद्वरण वर्तमान पुराणों में नही मिलते, परन्तु इन्ही के समानार्थक श्लोक पुराणों में मिलते हैं बहुत सम्भव है कि उस समय विरचित पुराणों का पुनः संस्करण कालान्तर में किया गया हो। इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है। कि सूत्रकाल में पुराण ग्रन्थरुप में निबद्ध हो चुके थे।

6. उपनिषद काल में भी पुराणों का उल्लेख हमें मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद में इतिहास–पुराण पंचम वेद कहा गया है।

"ऋग्वेद भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामदेव माथर्वणं।
चतुर्थ मितिहास पुराणं पच्चंम वेदानां वेदम्।।"[13]

7. अथर्ववेद के उद्वरण से भी पुराणों के अस्तित्व का पता चलता है। अथर्ववेद के एक मन्त्र के अनुसार उच्छिष्ट नाम से अभिहित परम पुरुष से चारों वेदों के अनन्तर पुराण की उपत्ति हुयी इस मन्त्र के गहन विवेचन से प्रतीत होता है कि यहां पुराण शब्द से केवल पुराने आख्यान का अर्थ नहीं है, अपितु विद्या विशेष है। यथा–

"ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः।।"[14]

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि पुराण का अस्तित्व विद्या–विशेष

के रुप में वैदिक काल में भी था। ईस्वी से छः सौ वर्ष पूर्व वर्तमान काल में उपलब्ध होने वाले पुराणों के समान ही पुराण ग्रन्थों का निर्माण हो चुका था। यद्यपि वर्तमान समय में मूलपुराण उपलब्ध नहीं होता। उपरोक्त विभिन्न तर्कों के सांगोपांग विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि पुराण किसी एक शताब्दी की रचना नहीं है समय–समय पर उनमें नये–नये अध्याय जोड़े गये थे। गुप्त काल तक वे अपने वर्तमान रुप को प्राप्त कर चुके थे।

पुराणों के रचनाकाल के सन्दर्भ में कुछ प्रमुख भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के मत इस प्रकार हैं–

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के अनुसार पुराणों का रचनाकाल ईसा की दूसरी शताब्दी के बाद का नहीं हो सकता।[15] लगभग इसी से मिलता जुलता मत पाश्चात्य विद्वानों में पुराणों के सबसे बड़े गवेषक पार्जिटर का है। इस सन्दर्भ में डा0 हाजरा का मत विशेष महत्वपूर्ण है उनकी दृष्टि में 'मार्कण्डेय' ब्रह्मण्ड' विष्णु' 'मत्स्य' 'भगवत' एवं कूर्म पुराण अन्य पुराणों की अपेक्षा काफी प्रचीन हैं। उपयुक्त पुराणों में भी प्रथम दो 'विष्णु पुराण' से प्राचीन है तथा शेष का काल इस प्रकार है– विष्णु 400 ई0 'वायु' 500ई0 'भागवत' 600–700 ई0 और कूर्म 700ई0। अग्निपुराण के सम्बन्ध में उनका विचार है कि उसकी रचना 800ई0 के आसपास हुयी, यद्यपि उसमें कुछ सामग्री उसके पहले की और कुछ बाद की भी है डा0 सुशील कुमार डे इसे नवम् शताब्दी की रचना और महामहोपाध्याय काणें इसके अधिकांश को 700ई0 किन्तु काव्यशास्त्रीय अंश को 900ई0 में रचित मानते हैं नारदीय पुराण को दशम शती में रचित बताया जाता है। जबकि कुछ सामग्री इसमें बाद को भी मिलाई गयी। ठीक यही बात 'ब्राह्मणपुराण' के सम्बन्ध में भी है। 'स्कन्दपुराण' की अधिकांश सामग्री आठवीं शती की है और कुछ उसके बाद की है। 'गुरुण निश्चित रुप से दशवीं शती में या उसके बाद लिखा गया ब्रह्मवैवर्तपुराण के सम्बन्ध में धारणा है कि इसकी रचना सातवीं शताब्दी में हो चुकी थी फिर भी इसका वर्तमान रुप 16वीं शती में बना।

सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ पुराणविमर्श में पुराणों को रचना काल की दृष्टि से तीन श्रेणियों में विभक्त किया है।[16]

क. प्राचीन :-

प्रथम शती से लेकर 400 ईस्वी तक। इसके अन्तर्गत वायु, ब्रह्मण्ड, मार्कण्डेय, मत्स्य, तथा विष्णु को रखते हैं।

ख. मध्यकालीनः-

इस श्रेणी में वे श्रीमद् भागवत, कूर्म, स्कन्द, पद्मपुराण को रखते है इनका समय वे 500 ई0 से 900 ई0 तक मानते है।

ग. अर्वाचीन :-

इस श्रेणी में वे ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्म, लिङग आदि को रखते है तथा इनका रचनाकाल 900 ई0 से 1000 ई0 मानते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पुराणों की रचना किसी एक काल में नहीं हुयी। वास्तव में ये अनेक शताब्दियों के चिन्तन मनन के परिणाम है फिर भी अधिकांश महत्वपूर्ण पुराणों की रचना सातवी शती ई0 तक हो चुकी थी इतना निश्चय है।

पुराण संख्या :-

पुराणों की संख्या के विषय में मतभेद नहीं है इनकी संख्या 18 है जो इस श्लोक में से संकेतित है–

"म–द्धयं भ–द्वयंचैव ब्र–त्रयं व–चतुष्टयम्।
अ–ना–प–लिंग कूस्कानि पुराणनि प्रचक्षते।।"

अर्थात

'म' वर्ण से आरम्भ होने	1. मत्स्य पुराण
	2. मार्कण्डेय पुराण
'भ' वर्ण से आरम्भ होने वाले	1. भविष्य पुराण
	2. भागवत पुराण
'ब्र' वर्ण से आरम्भ होने वाले	1. ब्रह्म पुराण
	2. ब्रह्मण्ड पुराण
	3. ब्रह्मवैवर्त पुराण
'ब' वर्ण से आरम्भ होने वाले	1. वामन पुराण

	2. वराह पुराण
	3. वायु पुराण
	4. विष्णु पुराण
'अ' वर्ण से आरम्भ होने वाला	1. अग्नि पुराण
'ना' वर्ण से आरम्भ होने वाला	1. नारद पुराण
'प' वर्ण से आरम्भ होने वाला	1. पद्म पुराण
'लि' वर्ण से आरम्भ होने वाला	1. लिंग पुराण
'ग' वर्ण से आरम्भ होने वाला	1. गरुड़ पुराण
'कू' वर्ण से आरम्भ होने वाला	1. कूर्म पुराण
'स' वर्ण से आरम्भ होने वाला	1. स्कन्द पुराण

इन पुराणों में भिन्न–भिन्न देवताओं की उपासना तथा महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। पदम् पुराण में इन पुराणों का सत्व, रज, तम इन तीन गुणों के अनुसार विभक्त किया गया है।

1. सतोगुणी पुराण :-

विष्णु विषयक पुराण सात्विक माने गये हैं इनमें विष्णु, भागवत, नारद, गरुड पदम् तथा वराह पुराण आते हैं।

2. रजोगुणी पुराण :-

ब्रह्मा विषयक पुराण रजोगुणी माने गये हैं इनमें ब्रह्म ब्रह्माण्ड, मार्कण्डेय, ब्रह्मवैवर्त, वामन तथा भविष्य पुराण सम्मिलित हैं।

3. तमोगुणी पुराण :-

शिव विषयक पुराण तमोगुणी पुराण कहलाते हैं। जैसे– स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, लिंग अग्नि तथा वायुपुराण।

उपरोक्त 18 पुराणों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् हैं–

1. ब्रह्म पुराण :-

पुराणों के अनुसार इस पुराण की रचना पुराणों में सबसे पहले की गयी

इसीलिये इस आदिपुराण भी कहते हैं। कुछ पुराणों में इसकी श्लोक संख्या 10000 कही गयी है और कुछ में 13000 इसके वर्तमान संस्करण में श्लोकों की संख्या 13787 है। इसमें सृष्टिवर्णन, विभिन्न देवों और दानवों के वंश का वर्णन तथा सूर्य और चन्द्रवंशी राजाओं के वर्णन हैं इसमें सूर्य के अतिशय महत्व को प्रतिपादन करते हुये उन्हे शिव से अभिन्न बताया गया है। इसमें कोणार्क के उस सूर्यमंदिर का उल्लेख हुआ है जिसका निर्माण 1241 ई0 के पश्चात हुआ। सम्भवतः यह अंश बाद में जोड़ा गया था। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने ब्रह्म पुराण की रचना का काल 13 वीं शती माना है।[17]

2. पद्य पुराण :-

यह पुराणों में विशालता की दृष्टि से दूसरे स्थान पर आता है। पुराणों में इनकी श्लोक संख्या 55000 बताई गयी है। किन्तु बम्बई के संस्करण में केवल 48000 श्लोक मिलते हैं इसमं पांच खण्ड हैं–सृष्टि भूमि, पाताल, स्वर्ग और उत्तर। मुख्यतया विष्ण के महत्व का प्रतिपादक होने पर भी यह त्रिदेवों में एकत्व की भावना को अग्रसर करता है। इसमें राधा को कृष्ण की प्रेयसी के रुप में चित्रित किया गया है। इसमें शकुन्तला और राम के आख्यान विशेष महत्वपूर्ण हैं जिनको महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलं और रघुवंश में गृहीत किया है।

3. विष्णु पुराण :-

पुराणों की दृष्टि में इस पुराण का रचनाक्रम की दृष्टि से तीसरा स्थान है। इसमें 23000 श्लोक बताये गये हैं किन्तु बम्बई के संस्करण में केवल 16000 श्लोक मिलते हैं इसमें प्रधान रुप से विष्णु का वर्णन किया गया है किन्तु इसमें विष्णु के किसी व्रत और मंदिर का उल्लेख नहीं मिलता। इसमें मौर्य वंश का वर्णन मिलता है। विद्वानों की दृष्टि में यही एक ऐसा पुराण है जिसमें पुराणों के सभी लक्षण मिलते हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय के मतानुसार इस पुराण का रचनाकाल ईस्वी पूर्व द्वितीय शती में होना चाहिये।[18]

4. वायु पुराण :-

इसका उल्लेख महाभारत और हरिवंश में हुआ है। वाण भट्ट ने भी इसका संकेत दिया है इस पुराण में 112 अध्याय है तथा श्लोकों की संख्या 10,991 है। इसका रचनाकाल 350ई0 से लेकर 550 ई0 के बीच (लगभग 400 ईस्वी) माना जाता है। प्राचीन पुराणों

में अन्यतम पंचलक्षण का स्पष्ट परिचायक यह पुराण इतिहास तथा धर्मशास्त्र दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

5. श्रीमद् भागवत :-

महत्व की दृष्टि से पुराणों में भीमद् भागवत का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। शुकदेव ने इसे निगम तक का गिरा हुआ फल माना है। वैष्णवों में इसका महत्व सर्वाधिक है। पश्चात कालीन सम्प्रदायों के प्रवर्तन में इसका विशेष महत्व है। इसमें विष्णु के चौबीसों अवतारों, विशेषकर कृष्ण की बाल लीलाओं का विशद् वर्णन प्राप्त होता है। इसकी भाषा और शैली साहित्यिक है। इसमें राधा का वर्णन नहीं प्राप्त होता। इसमें श्लोकों की संख्या 18000 है। जो बारह स्कन्धों और लगभग 300 अध्यायों में विभक्त है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भागवत पुराण का रचना काल लगभग छठी शती ई0 के आसपास माना है।[19]

6 नारदीय पुराण :-

इसमें विष्णु की महिमा का प्रतिपादन किया गया है और पुराण के मुख्य विषयों का स्पर्श तक नहीं किया गया है। इसके दो खण्डों में से पूर्वखण्ड में 125 अध्याय और उत्तरखण्ड में 25 अध्याय हैं इसमें वर्ण, आश्रम, पाप और पुण्य आदि का वर्णन विशेष रुप से किया गया है। साथ ही इस पुराण में बौद्धों की बड़ी निन्दा की गयी है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने नारदीय पुराण की रचनाकाल 700 ईस्वी से 900ईस्वी के बीच माना है।[20]

7. मार्कण्डेय पुराण :-

पुराणों में इसकी श्लोक संख्या 9000 बताई गयी हैं किन्तु इस समय इसमें 6900 श्लोक ही प्राप्त होते हैं। यह पुराणों में सबसे कम साम्प्रदायिक और रोचक होने के साथ–साथ प्राचीनतम भी माना जाता है। इसमें इन्द्र, ब्रह्म, अग्नि, सूर्य के साथ–साथ देवी के त्रिविध रुप महाकाली, महालक्ष्मी, तथा महासरस्वती के चरित्र का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। इसके अतिरिक्त मन्वन्तरों का विस्तृत विवरण इस पुराण का वैशिष्ट्य माना जा सकता है। इसमें पुराण के पंचलक्षण का विवरण प्रायः उपलब्ध होता है। मार्कण्डेय पुराण के रचना काल के विषय मं विद्वान एकमत नहीं है। जोधपुर से उपलब्ध दद्यिमती माता के शिलालेख में 'सर्वमंगलमाडग्ल्ये' श्लोक उदघृत है। इसका समय 289 दिया गया है जिसे भंडारकर गुप्त

संवत 608ई0 मानते हैं परन्तु मिराशी इसका समय 813 ई0 मानते हैं।[21] आचार्य बलदेव उपाध्याय का इस पुराण के रचनाकाल के सन्दर्भ में मत है कि यह पुराण 600ई0 से प्राचीनतर है और इसका रचना काल 400–500ई0 के बीच माना जाना चाहिये।[22]

8. अग्नि पुराण :-

यह कुछ दृष्टियों से पुराणो में अपना विशेष महत्व रखता है। इसमें तत्कालीन प्रायः सभी विषयो का वर्णन मिलता हैं इसलिये यह पौराणिक विश्वकोश कहलाता है। इसमें 15000 श्लोक मिलते हैं आचार्य बलदेव उपाध्याय अग्निपुराण का रचनाकाल सप्तम्–नवम् शती के मध्य मानते हैं।[23]

9. भविष्य पुराण :-

भविष्य पुराण का रुप इतना बदलता रहा तथा इसमें नये–नये अंश जुड़ते रहे कि उसका मूल स्वरुप इन प्रतिसंस्कारों के कारण ढूंढना कठिन है। यद्यपि आपस्तम्ब ने अपने गृहसूत्र में भविष्य पुराण का उल्लेख किया है। और इस कारण इसकी प्राचीनता में सन्देह नहीं है परन्तु कालान्तर में समय–समय पर इसमें अनेक क्षेपक जुड़ते रहे जिस कारण इस मूलरुप ही बदल गया। इसके चार पर्व है। ब्रह्म, मध्यम, प्रतिसर्ग तथा उत्तर इसमें अधिकतर भावी घटनाओं का भविष्य वाणी के रुप में वर्णन किया गया है। इस पुराण में ब्राह्मण धर्म से सम्बद्ध कृत्यों, व्रतों और तीर्थो आदि के वर्णन के साथ–साथ कुछ आख्यान भी आये हैं। अलबरुनी के द्वारा उद्घृत होने से प्रचलित भविष्य पुराण का समय दशम शती के आस–पास माना जा सकता है।[24]

10. ब्रह्मवैवर्त पुराण :-

इसके चार खण्डों– ब्रह्म, प्रकृति, गणेश, और कृष्णजन्म में 18000 श्लोक पाये जाते हैं। इसके प्रथम खण्ड में सृष्टि रचना और दूसरे खण्ड में प्रकृति रुपी, दुर्गा पार्वती, और राधा आदि का वर्णन है। अन्य खण्डों के विषय अस्पष्ट है। इसके अनुसार श्रीकृष्ण ही सर्वोच्च देवता हैं ब्रह्म वैवर्त पुराण के रचना काल के समय का निर्धारण करने के सन्दर्भ में आचार्य बलदेव उपाध्याय ने तर्क दिया है कि राधा की विशद पूजा तथा अनुष्ठान का विस्तृत वर्णन इस पुराण का समय–नवम दशम शती से प्राचीन सिद्ध नहीं होता देता।[25]

11. लिंग पुराण :-

यह एक शैव पुराण है इसमें भगवान शिव की लिडं पूजा का वर्णन प्राप्त होता है। इसमें 11000 श्लोक हैं इसमें विभिन्न शैव तीर्थो, शैवव्रतों तथा अनुष्ठानों की विस्तृत चर्चा की गयी है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने लिंग पुराण का समय अष्टम–नवम् शती माना है।[26]

12. वराह पुराण :-

यह विष्णु को प्रधान मानने वाला पुराण है। इसमें भगवान विष्णु के वाराह (सूकर) अवतार का वर्णन विशद रुप में किया गया है। यद्यपि इसमें सृष्टि और वंशानुक्रम आदि का उल्लेख है तथापि पुराण के अन्य विषयों के चर्चा इसमें नहीं मिलती। इसमें नागेश और नचिकेता के उपाख्यान के साथ–साथ श्राद्ध और प्रायश्चित आदि धर्मशास्त्रीय विषयों का भी निरुपण किया गया है। आचार्य बलदेव उपाध्याय इस पुराण की रचना का काल नवम्–दशम शती मानते हैं।[27]

13. स्कन्द पुराण :-

शिव के पुत्र स्कन्द के महत्व का प्रतिपादक होने के कारण इसे स्कन्दपुराण कहते हैं । विशालता की दृष्टि से यह सबसे बड़ा पुराण है। पुराणों के अनुसार इसमें 81110 श्लोक होने चाहिये किन्तु वर्तमान में 81000 श्लोक ही मिलते हैं यह ग्रन्थ सनत्कुमारीया, सूत्र, ब्राह्मी, वैष्णवी, शंकरी तथा सौरी इन छह संहिताओं में बँटा है। संहिताओं के क्रम में ही इसमें तत्तद देवताओं के महत्व का प्रतिपादन किया गया है किन्तु शंकर और उनके पुत्र स्कन्द में महत्व को इसमें सर्वाधिक बताया गया है। स्कन्दपुराण के काशीखण्ड के अन्तर्गत रेखाखण्ड में सत्यनारायण की प्रख्यात कथा है आचार्य बलदेव उपाध्याय का मत है कि इस पुराण की रचना सप्तम शती के पूर्व कालीन और नवम् शती के उत्तर कालीन नहीं हो सकती। दोनों के बीच में सम्भवतः यह प्रणीत हुआ।[28]

14. वामन पुराण :-

इस वैष्णव पुराण के प्रारम्भ में विष्णु के वामनावतार का वर्णन मिलता है। इसी कारण यह बामन पुराण कहलाया। यद्यपि यह एक वैष्णव पुराण है परन्तु किसी समय में यह शैव रुप में परिणत कर दिया गया और आज इसका यही रुप प्रचलित है फलतः इस पुराण में

शिव पार्वती का चरित्र विस्तृत रुप में वर्णित है। पार्वती की धोर तपस्या, बहुरुपधारी शिव से वार्तालाप, शिव से विवाह आदि विषय अलंकृत शैली में वर्णित है। इसमें 95 अध्याय और 10,000 श्लोक है। कालिदास के कुमार सम्भव का वामनपुराण के ऊपर प्रभाव बड़ा ही विस्तृत, गम्भीर तथा मौलिक है। वामनपुराण के पार्वती तथा वटु का संवाद अर्थ में ही नहीं अपितु शब्द में भी कुमार सम्भव में उपस्थित संवाद से अक्षरशः मेल खाता है। इस पुराण में शैव होने पर भी वैष्णव मत के साथ किसी प्रकार के विरोध या संघर्ष की भावना नहीं है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के शब्दों में "कालिदास के काव्य द्वारा प्रचुरता से प्रभावित होने के कारण इसकी रचना का काल कालिदासोत्तर युग हैं अर्थात 600 ई0 900 ई0 के बीच वामनपुराण का आविर्भाव मानना उचित है।[29]

15. कूर्म पुराण :-

पुराणों के अनुसार प्रारम्भ में इसमें ब्राह्मी भागवती, सौरी और वैष्णवी ये चार संहितायें और 17000 श्लोक थे किन्तु वर्ममान में इसकी 6000 श्लोकों वाली ब्राह्मी संहिता ही मिलती है। इसमं विष्णु के कूर्म अवतार के साथ–साथ शिव के अवतरों का भी वर्णन किया गया है।साथ ही विष्णु और शिव तथा लक्ष्मी और पार्वती का परम्पर अभिन्न माना गया है। इसमें अग्निदव द्वारा सीता की रक्षा की कहानी भी है जो रामायण में नहीं है। इस पुराण में पाशुपत मत की प्रधानता है। पाशुपत मत का प्राधान्य होने से यह पुराण पष्ठ–सत्तम शती की रचना है। जब पाशुपत मत का उत्तर भारत में विशेषतः राजपूताना और मथुरा मण्डल में प्राधान्य था।[30]

16. मत्स्य पुराण :-

इसमें विश्व प्रसिद्ध जलप्लावन की घटना और विष्णु के मत्स्यावतार का विशद वर्णन है। इसमें सभी विषयों का वर्णन मनु और मत्स्य के प्रश्नोत्तर के रुप में हुआ है। यद्यपि यह एक वैष्णव पुराण है। तथापि यह शैवधर्म से सम्बन्ध रखने वाले विषयों का भी विशद वर्णन करता है। इस पुराण की आन्ध्र राजाओं की वंशावली पर्याप्त विश्वसनीय मानी जाती है। मत्स्य पुराण के रचनाकाल के विषय में आचार्य बलदेव उपाध्याय का मत है कि "इसका आविर्भावकाल 200ई0 से लेकर 400 ई0 के बीच मानना चाहिये।"[31]

17. गरुड़ पुराण :-

यह वैष्णव पुराणों में अन्यतम है। इस पुराण के दो खण्ड हैं–पूर्वखण्ड और उत्तरा खण्ड इसके पूर्वखण्ड में विष्णु से सम्बद्ध व्रतों और तीर्थ आदि के साथ–साथ ज्योतिष, व्याकारण, छन्दस और रत्न परीक्षा आदि का भी वर्णन मिलता है। जबकि इसके उत्तरखण्ड में जिसे प्रेतकल्प का भी कहा जाता है। शरीर त्याग के उपरान्त आत्मा की स्थिति, नरक यात्रा, नरक यात्रा मार्ग और नरक की यातनाओं के साथ–साथ आत्मा के पुर्नजन्म का भी वर्णन मिलता हैं। अलबरूनी ने इसका नामोल्लेख किया है तथा भोजराज ने अपने ग्रन्थ 'युक्ति कल्पतक' में गरुड़ पुराण से श्लोक उद्घृत किये है फलतः यह पुराण 1000 ईस्वी के बाद का नहीं हो संकता।[32] अष्टम–नवम् शती में गरुड़ पुराण का रचनाकाल भावना अप्रासिडंगक नहीं होगा।[33]

18. ब्रह्माण्ड पुराण :-

पुराणों में यही अन्तिम पुराण है। इसके चार विभाग है इनमें सबसे बड़ा भाग तृतीयपाद है जिसके आरम्भ में श्राद्ध का विषय बड़े विस्तृत रुप में वर्णित है। इसमें परशुराम की कथा, तथा परशुराम एवं कार्तवीर्य हैहय के संघर्ष की कथा भी विस्तृत रुप में मिलती है। इस पुराण में राजा सगर तथा भगीरथ द्वारा गंगा को पृथ्वी पर लाने जाने एवं सूर्य तथा चन्द्रवंश के राजाओं का विवरण भी प्राप्त होता है। इस पुराण के रचना काल के विषय में सुप्रसिद्ध विद्वान एस.एन.राय का मत है कि ब्रह्मण्ड की रचना गुप्तोत्तर युग में अर्थात 600 ईस्वी में मानना कथयपि इतिहास विरुद्ध नहीं है। 600 ई0– 900 ई0 तक तीन शताब्दियों में इसके प्रतिसंस्कार का समय न्यायतः माना सकता है।[34]

कतिपय विद्वान 'देवीभागवत' को भी महापुराणों में ही गिनते है और श्रीमद्भागवत को उपपुराण में। परन्तु अधिकांश पुराणों श्रीमद्भागवत को ही महापुराण माना है। इसी प्रकार कतिपय विद्वान 'योग वशिष्ठ' को भी महापुराणों की कोटि में सन्निविष्ट करने का प्रयास करते है। यद्यपि पुराणों की सूची में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

इन महापुराणों के अतिरिक्त 18 उपपुराण भी मिलते है जिनके नाम गरुड पुराण के आधार पर निन्नवत हैं [35] 1. सनतकुमार 2. नारसिंह 3. स्कान्द 4. शिवधर्म 5. आश्चर्य 6. नारदीय 7. कपिल 8. वामन 9. औशनस 10. ब्रह्माण्ड 11. वारुण 12. कालिका 13. माहेश्वर 14. साम्ब 15. सौर 16. पाराशर 17. मारीच 18. भार्गव।

यद्यपि इन नामों के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं देवी भागवत के अनुसार उपर्युक्त स्कन्द, वामन, ब्राह्मण्ड, मारीच और भार्गव के स्थान पर क्रमशः शिव, मानव, आदित्य, भागवत और वसिष्ट नाम मिलते हैं। [36] डा0 सूर्यकान्त ने अपने ग्रन्थ संस्कृत बाडमय को इतिहास में 30 पुराणों की सूची दी है। जिसमें हरिवंश भी सम्मिलित है। [37]

हरिवंश पुराण का पुराणत्व :-

पुराण अपने समय के तत्कालीन भारतीय जीवन एवं साहित्य तथा संस्कृति का वास्तविक प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करते हैं, यह बात हरिवंश पुराण के सन्दर्भ में विशेष रुप से लागू होती है। हरिवशं के पुराण में महाभारत के खिल (परिशिष्ट) के साथ–साथ पुराणत्व का समन्वय हुआ है। अतः सामाजिक ऐतिहासिक, साहित्यिक, और सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से हरिवंश एक महत्वपूर्ण पुराण है।

यह बात ध्यान देने की है कि विद्वानों का ध्यान दूसरे पुराणों की अपेक्षा हरिवंश पुराण की ओर कम आकृष्ट हुआ। इसका कारण सम्भवतः यह है कि अठारह महापुराणों तथा अठारह उपपुराणों में हरिवंश की गणना नहीं की गयी किन्तु जब हम हरिवंश पुराण का सूक्ष्म अध्ययन करते हैं तो हमें हरिवंश पुराण में सभी पौराणिक तत्व विद्यमान दिखलाई देते हैं। हरिवंश पुराण में इन तत्वों की उपस्थिति देखकर कुछ विद्वानों ने इसे भी पुराणों के समकक्ष रखने की बात कही है। सुप्रसिद्ध विद्वान फरक्यूहर ने हरिवंश पुराण की गणना महापुराणों में करते हुये इसको बीसवाँ महापुराण माना है। [38] इसी प्रकार दूसरे विद्वान विण्टर नित्स ने भी हरिवंश पुराण को खिल के अतिरिक्त पुराण के रुप में स्वीकार किया है। [39] महाभारत के महान विद्वान हापकिन्स ने महाभारत के अध्ययन में महाभारत के अनेक स्थलों की तुलना हरिवंश पुराण से की है। हापकिन्स के अनुसार हरिवंश महाभारत के अर्वाचीनतम पर्वो में एक है।[40]

जहां तक हरिवंश–पुराण के पुराणत्व का प्रश्न है तो इसे केवल आकार–विस्तार तथा कही–कही वर्णन शैली के कारण ही पुराण की संज्ञा दी गयी है जबकि हरिवंश के तथा महाभारत के अन्तः साक्ष्य हरिवंश को महाभारत का खिल सूचित करते हैं। यह महाभारत का एक अंग है किन्तु महाभारत के उन्नीसवें पर्व के रुप में नहीं अपितु खिल के रुप में [41] जब कि हरिवंश में पुराण के पंचलक्षण सर्ग प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचारित मिलते हैं। हरिवंश

में पुराण पंचलक्षण के सर्ग प्रतिसर्ग के अनुरुप ही जगत की सृष्टि तथा प्रलय सम्बन्धी विचार मिलते हैं। वंश तथा मन्वन्तर के अनुरुप राजाओं तथा मन्वन्तरों का विवरण मिलता है। वंशानुचरित के अनुसार राजाओं तथा ऋषियों के विविध आख्यान मिलते हैं। पुराण पंचलक्षण के अतिरिक्त हरिवंश के अनेक वृतान्त पौराणिक प्रसंगों से समानता रखते हैं। पुराणों में बाद में जोड़े गये साम्प्रदायिक प्रसंग भी हरिवंश में मिलते हैं उदाहरणार्थ हरिवंश में वैष्णव, शैव तथा शाक्त विचार धारायें इसी प्रकार के उत्तरकालीन साम्प्रदायिक स्थल है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महाभारत का परिशिष्ट होने पर भी हरिवंश एक स्वतन्त्र पुराण के रुप में विकसित हुआ है अतः हरिवंश के लिये पुराण शब्द उचित हैं।

पुराण का लक्षण :-

पुराण के साथ पंचलक्षण का सम्बन्ध प्राचीन काल से धनिष्ठ रुप से सम्बद्ध रहा है। प्रायः अधिकांश पुराणों में पुराणों के पंचलक्षण के सम्बन्ध में उक्त श्लोक मिलता है।

"सर्गश्रच प्रतिसर्गश्रच वंशी मन्वन्तराणि च।
वंशनुचरितं चेति पुराणं पंचलक्षणम्।।"[42]

पंचलक्षण शब्द पुराण का इतना अनिवार्य घोतक माना जाता था कि अमर सिंह ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ अमरकोश में यह शब्द बिना किसी व्याख्या के ही प्रयुक्त किया है। पुराण के इन पंचलक्षणों का विवरण निम्नवत् है–

1. सर्ग :-

जगत की तथा, उसके नाना पदार्थो की उत्पत्ति अथवा सृष्टि 'सर्ग' कहलाती है। इस सम्बन्ध में भागवत पुराण का निम्न श्लोक उल्लेखनीय है–

"अख्याकृतगुणक्षोभात् महतस्त्रि वृतोऽहमः।
भूत मात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते।।"[43]

अर्थात जब मूल प्रकृति में लीन गुण क्षुब्ध होते हैं तब महत् तत्व की उत्पत्ति होती है। महत् तत्व से तीन प्रकार तामस, राजस तथा सात्विक के अहंकार बनते हैं। त्रिविध अहंकार से ही पंचतन्मात्रा (भूत मात्रा) इन्द्रिय तथा (पंच) भूतों की उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति क्रम का नाम सर्ग है।

2. प्रतिसर्ग :-

सर्ग से विपरीत शब्द प्रतिसर्ग है इस प्रकार प्रतिसर्ग का अर्थ है प्रलय विभिन्न पुराणों में प्रतिसर्ग को भिन्न–भिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है यथा विष्णु पुराण में प्रतिसर्ग के स्थान पर 'प्रतिसंचर' शब्द का प्रयोग मिलता है।[44] श्रीमद् भागवत में इस शब्द के स्थान पर (संस्था) शब्द प्रयुक्त हुआ है।[45] भागवत पुराण के अनुसार इस ब्राह्मण्ड का स्वभाव से ही प्रलय हो जाता है और यह प्रलय चार प्रकार का है– नौमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक। यह 'संस्था' शब्द से अभिहित किया जाता है।

3. वंश :-

वंश शब्द की व्याख्या भागवत पुराण के निम्न श्लोक में की गयी है–

"राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रेकालिकोऽन्वयः।।"[46]

अर्थात् ब्राह्म जी के द्वारा जितने राजाओं की सृष्टि हुयी उनकी भूत, भविष्य तथा वर्तमान कालीन सन्तान परम्परा को वंश नाम से पुकारते हैं। परन्तु इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि वंश को राजवंश तक ही सीमित करना उपयुक्त नहीं है क्योंकि इस शब्द के भीतर ऋषियों के वंश का ग्रहण भी अन्य पुराणों में किया गया है।

4. मन्वन्तर :-

पुराण के अनुसार सृष्टि के विभिन्न काल–मान का द्योतक शब्द मन्वन्तर है। मन्वन्तर 14 होते हैं और प्रत्येक मन्वतन्तर का अद्यिपति एक विशिष्ट मनु हुआ करता है। जिसके सहयोगी पांच पदार्थ और भी होते हैं। भागवत पुराण में मन्वन्तर की परिभाषा निम्न रुप में दी गयी है–

"मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।

ऋषयोंऽशावताराश्च हरेः षड़विद्यमुच्यते।।"[47]

अर्थात मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान के अंशावतार –इन छः विशिष्टताओं से युक्त समय को मन्वन्तर कहते हैं।

5. वंशानुचरित :-

भागवत पुराण के अनुसार पूर्वोवत वंशों में उत्पन्न हुये वंशधरों का तथा मूलपुरुष

राजाओं का विशिष्ट विवरण जिसमें वर्णित होता है वह 'वंशानुचरित कहलाता है। यथा–

"वंशानुचरित तेषां वृत्तं वंशाधराश्च ये।"[48]

यहां मनुष्य वंश में प्रसूत महर्षियों का तथा राजाओं का चरित्र भी समाविष्ट समझना चाहिये। महर्षियों के चरित्र की अपेक्षा राजाओं के चरित्र का ही विशेष विवरण पुराणों में उपलब्ध होता है।

पुराण के उपरोक्त पंचलक्षणों के साथ–साथ श्रीमद्‌भागवत में दो स्थानों पर तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में एक स्थान पर पुराण के दस लक्षणों का निर्देशा किया गया है [49] और पूर्वोक्त पांच लक्षणों को क्षुल्लक पुराण का लक्षण माना गया है। यह बात उल्लेखनीय है कि श्रीमद्भागवत के दोनों स्थलों पर दिये गये लक्षणों में मूलतः साम्य है भले ही नाम में कुछ अन्तर हो। अर्थात इन दोनों में शब्द भेद अवश्य है परन्तु अभिप्राय भेद नहीं है भागवत पुराण के द्वादश स्कन्ध के अनुसार ये दश लक्षण इस प्रकार है–

"सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्ति रक्षान्तराणि च।

वंशों वंशानुचरित संस्था हेतुरयाश्रयः।।[50]

अर्थात् 1. सर्गः 2. विसर्गः 3. वृत्तिः 4. रक्षा 5. अन्तराणि 6. वंश 7. वंशानुचरितम् 8. संस्था 9. हेतुः 10. अपाश्रयः

इन दस लक्षणों के विवरण निम्नवत् हैं।

1. सर्ग :-

पूर्ण वर्णित सर्ग से यह भिन्न नहीं है।

2. विसर्ग :-

इससे तात्पर्य जीवन की सृष्टि से है। परमेश्वर के अनुग्रह से ब्रह्म सृष्टि का सामर्थ्य प्राप्त करके महत् तत्व आदि पूर्व कर्मो के अनुसार अच्छी और बुरी वासनाओं की प्रधानता के कारण जो यह चराचर शरीरात्मक उपाधि से विशिष्ट जीवन की सृष्टि किया करते हैं। इसे ही विसर्ग कहते हैं।

3. वृत्ति :-

भागवत पुराण के अनुसार जीवों के जीवन निर्वाह की सामग्री चर पदार्थों की

अचर पदार्थ वृत्ति है। [51] अर्थात मानव जीवन को चलाने के लिये जिन वस्तुओं का उपयोग मनुष्य करता है वही उसकी वृत्ति है। चावल, गेहूं आदि अन्न सब वृत्ति के अन्तर्गत आते हैं।

4. रक्षा :-

इसका सम्बन्ध भगवान के अवतारों से है। भगवान युग–युग में पशु–पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवता, आदि के रुप में अवतार ग्रहण कर अनेक लीलायें किया करते हैं। इन अवतारों के द्वारा वे वेदत्रयी–वेदधर्म से विरोध करने वाले व्यक्तियों का संहार भी किया करते हैं। इस कारण भगवान की यह अवतार लीला विश्व की रक्षा के लिये ही होती है। इसीलिये इसकी संज्ञा रक्षा है।

5. अन्तराणि :-

इसका अर्थ पूर्ववार्णित मन्वतन्तर के समान ही है।

6. वंश :-

7. वंशानुचरित :-

} पूर्वाक्त्

8. संस्था :-

इसका अर्थ पूर्वसूची के प्रतिसर्ग के समान हैं।

9. हेतु :-

हेतु शब्द से तात्पर्य जीव के ग्रहण से है। वह अविधा के द्वारा कर्म का कर्ता है। संसार की सृष्टि में जीव को कारण मानने का रहस्य यह है कि जीव के अदृष्ट के द्वारा प्रयुक्त होने से विश्व का सर्ग तथा प्रतिसर्ग होता है। फलतः जीव अपने अदृष्ट के द्वारा विश्व–सृष्टि या विश्व प्रलय का कारण होता है और इसी अभिप्राय से वह भागवत पुराण में 'हेतु' जैसे सार्थक शब्द के द्वारा अभिहित किया गया है। [52]

10 अपाश्रय :-

जीव की तीन वृत्तियां या अवस्थायें होती है– जाग्रत, स्वप्न तथा सुप्रप्ति और इन दशाओं में चैतन्य का निवास है जो क्रमशः विश्व, तैजस तथा प्राज्ञ के नाम से प्रख्यात है। इन मायामयी वृत्तियों में साक्षिरुपेण जो सन्तन प्रतीत होती है। वही अधिष्ठान रुप अपाश्रय तत्व है वह इन अवस्थाओं से परे तुरीय तत्व के रुप में लक्षित होता है वही ब्रह्म है और उसे 'अपाश्रय'

कहते हैं।

श्रीमद् भागवत के द्वितीय स्कन्ध के अन्तिम दशम अध्याय में भी पुराण के दस लक्षणों का उल्लेख किया गया है जो पूर्वोक्त लक्षणों के साम्य रखने पर भी नामतः भिन्न हैं

"अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।

मन्वन्तरेशानुकथा निरोचो मुतिराश्रयः।।"[53]

इन दस लक्षणों के नाम इस प्रकार हैं–

1. सर्ग 2. विसर्गः 3. स्थानम् 4. पोषणम् 5. ऊतयः 6. मन्वन्तरम् 7. ईशानुकथा 8. निरोधः 9. मुक्तिः 10. आश्रयः।

लेकिन यदि हम भागवत के दो विभिन्न स्कन्धों में प्रतिपादित 10 लक्षणों की तुलना करते हैं तो दोनों में विशेष पार्थक्य नहीं प्रतीत होता। इसी प्रकार ब्रम्हाण्ड पुराण में निर्दिष्ट पुराण के दस लक्षण प्रायः वही भागवत पुराण वाले ही हैं।

इस प्रकार पुराण के लक्षणों का विश्लेषण करने के पश्चात् हम कह सकते है कि ऊपर प्रतिपादित दस लक्षणों को पंचलक्षणों का ही आवश्यकतानुसारी विस्तार समझना चाहिये। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तराणि तथा वंशानुचरित ये पंचलक्षण तो भागवत पुराण के 12वें स्कन्ध के सातवें अध्याय में स्वशब्देन प्रतिपादित है। इसमें किसी शक की गुँजाइश नहीं हैं। इतर अवशिष्ट पंचलक्षणों का भी समावेश इन्ही पंचलक्षणों में भलीभाँति किया जा सकता है।

उदाहरणार्थ :-

विसर्ग सर्ग का ही अवान्तर भेद है क्योंकि सर्ग के अन्तर्गत ब्रम्हाण्ड की सृष्टि आती है और विसर्ग के अन्तर्गत जीव जन्तुओं की सृष्टि। फलतः विसर्ग को सर्ग के ही अन्तर्गत माना जा सकता है। अपाश्रय या आश्रय शब्द से उपात्त परमात्मा का सर्ग के कर्ता होने से प्रतिपादन उचित है। हेतु (जीव) तथा ऊति (कर्मवासना) का सर्ग–हेतु होने के कारण सर्ग के भीतर अन्तर्भाव यथार्थ है। वृत्ति या स्थान का भी ग्रहण वंशानुचरित के भीतर समझना चाहिये। भगवान के अवतारों की उत्पत्ति तो किसी वंश को लेकर ही होती है। इसलिये तद्विषय–घोतक ईशानुकथा, पोषण अथवा रक्षा का भी अन्तर्भाव 'वंशानुचरित' के भीतर करना सर्वथा मान्य है। इसलिये भगवान की लीला के बोधक चरित का अवतार कथा का–समावेश वंशानुचरित में करना

उचित ही है। इस प्रकार तारतम्य परीक्षण करने पर भागवत पुराण में वर्णित पुराण के दस लक्षण, पंच लक्षणों का ही विकसित स्वरूप हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दस लक्षण पुराण सामान्य का लक्षण न होकर पुरा–मूर्धन्य श्रीमद्भागवत का ही निजी लक्षण है और यही मानना सर्वथा उचित प्रतीत होता है।

हरिवंश से प्राप्त पुराण-लक्षण सामग्री :-

हरिवंश पुराण में पुराण के पंच लक्षण पुर्णता के साथ मिलते हैं। पुराण पंच लक्षण के सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित हरिवंश पुराण के सृष्टि सम्बन्धी वृतान्तों, राजवंशवर्णनों तथा विविध आख्यान और उपाख्यानों मे मिलते हैं। सर्ग (सृष्टि) पुराणों के पंचलक्षणों में प्रमुख लक्षण है। अन्य पुराणों के समान ही हरिवंश पुराण में भी विश्रव के सृष्टितत्व का वर्णन किया गया है।[54] पुराणों में सृष्टि के 9 प्रकार बतलाये गये हैं। सर्ग मुख्यतया तीन प्रकार के होते हैं –

1. प्राकृत सर्ग :-

प्राकृत सर्ग अबुद्धिपूर्वक होता है अर्थात् उसकी सृष्टि नैसर्गिक रूप में होती है और उसके निमित्त ब्रम्हा को अपनी बुद्धि या विचार को कार्य रूप में लाने की आवश्यकता नहीं होती।

2. वैकृत सर्ग :-

वैकृतसर्ग बुद्धिपूर्वक होता है अर्थात ब्रम्हा ने खूब सोच समझकर इस सर्ग के प्रकारों का निर्माण किया।

"प्राकृताश्च त्रये पूर्वे सर्गास्तेऽबुद्धिपूर्वकाः।
बुद्धिपूर्व प्रवर्तन्ते मुख्याद्याः पञव वैकृताः।।[55]

प्राकृत सर्ग की संख्या तीन है–ब्रम्हा सर्ग, भूत सर्ग, तथा वैकारिक सर्ग। वैकृत सर्ग की संख्या पाँच है–मुख्य सर्ग, तिर्यक सर्ग, देव सर्ग, मानुष सर्ग, अनुग्रह सर्ग तथा प्राकृत वैकृत सर्ग की संख्या मात्र एक कौमार सर्ग है। इस प्रकार हरिवंश पुराण तथा अन्य पुराणों में कुल नौ सर्गों के अन्तर्गत सर्ग (सृष्टि) तत्व का वर्णन किया गया है।

प्रतिसर्ग का वर्णन हरिवंश पुराण के साथ–2 प्रायः सभी पुराणों में किया गया

है।[56] प्रलय चार प्रकार का होता है– नैमित्तिक प्रलय, प्राकृत प्रलय, आत्यन्तिक प्रलय तथा नित्य प्रलय।

1. नैमित्तिक प्रलय :-

इक हजार चतुर्युगी ब्रम्हा का एक दिन माना जाता है। ब्रम्हा के एक दिन का ही नाम कल्प है जिसके भीतर 14 मनुओं का काल बीतता है। कल्प का अन्त हो जाने पर उतने ही काल के लिये प्रलय भी होता है। इसी प्रलय को ब्राम्ही रात्रि भी कहते हैं। ब्रम्हा जी के इस शयन को निमित्त मानकार इस प्रलय का उदय होता है इसीलिये यह प्रलय नैमित्तिक प्रलय कहलाता है।

2. प्राकृत प्रलय :-

यह प्रलय नैमित्तिक प्रलय की अपेक्षा अधिक वर्षों के अनन्तर होता है। ब्रम्हा की आयु उनके मान से 100 वर्ष की होती है। ब्रम्हा की इस आयु के समाप्त होने पर एक महान प्रलय संघटित होता है जिसे प्रलय कहते है।

3. आत्यन्तिक प्रलय :-

पूर्ववर्णित दोनों प्रलयों का काल नियत है परन्तु आत्यन्तिक प्रलय को काल की परिधि या सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। यह आज भी इसी एक क्षण में सम्पन्न हो सकता है अथवा कोटि–2 वर्षों के अन्तराल होने पर भी नहीं सम्पन्न हो सकता। अर्थात् इसका कोई निश्चित समय नहीं है कि यह कब न घटित हो जाये।

4. नित्य प्रलय :-

पुराणों के अनुसार सृष्टि भी नित्य होती है और प्रलय भी नित्य होता है। तत्वदर्शी लोगों का कहना है कि ब्रह्मा से लेकर तिनके तक जितने प्राणी या पदार्थ होते हैं वे सभी हर समय पैदा होते रहते हैं और मरते रहते हैं। इस प्रकार जायमान इस विनाश को 'नित्य प्रलय' के नाम से पुकारा जाता है।

पुराणों में जितने वंशों का वर्णन है उनका प्रारम्भ मनु से होता है। वैवस्वत मनु के वंशजों का विवरण पौराणिक इतिहास का मेरूदण्ड हैं। पुराणों के गम्भीर अध्ययन के द्वारा प्रामाणिक वंशवृत्तों की वास्तविकता अनेक विद्वानों के द्वारा स्वीकृत हो चुकी है।[57] हरिवंश में वंश

का विवरण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। परन्तु वंश की प्रतिष्ठा की दृष्टि से दो मनु अधिक महत्वपूर्ण है–

1. स्वायम्भुव मनु 2. वैवस्वत मनु

ये मनवन्तर के भी स्वामी है। वंश के अन्तर्गत प्राचीन राजाओं और महर्षियों के वंश का वर्णन होता है जिसमें राजाओं की विस्तृत वंशावलियाँ आती है। वंश वर्णन के प्रसंग में किसी महान राजा के चरित्र का गुणगान गाथाओं के द्वारा होता है। पुराणों में चन्द्रवंशी राजा ययाति के पुत्रों तथा उनके वंशजों पुरू, यदु, द्रध्यु, अनु, तुर्वसु का इतिहास विस्तार से वर्णित हैं। पुराणों में ही पांचाल के राजा सुदास और पंजाब के राजाओं के बीच के युद्ध का वर्णन भी प्राप्त होता है। यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि पुराणों की बातों का समर्थन वेदों से भी होता है।

मन्वन्तर में युगों के काल का निर्धारण किया गया है। मनुष्यमान से एक चतुर्युगी 43लाख 20हजार वर्षों की होती है। एक हजार चतुर्युगी बीतने पर ब्रम्हा एक दिन होता है अर्थात चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षो का । और ब्रम्हा की एक रात्रि का भी यही परिमाण है। एक ब्रम्हा दिन ही एक कल्प माना जाता है। इस प्रकार एक कल्प में 14 मनुओं का साम्राज्य काल माना जाता है। एक मनु के बीतने तथा दूसरे मनु के आने के समय के बीच वाले समय को एक मन्वन्तर कहते हैं। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक मन्वन्तर में एक सन्धि काल होता है जो एक कृतयुग के मान के बराबर अर्थात 4800 दिव्यवर्ष का होता है और प्रत्येक कल्प के आरम्भ में भी एक सन्धिकाल उतने ही वर्षो का होता है। इस प्रकार प्रत्येक 4800 दिव्यवर्ष के 15 सन्धिकाल होते हैं जो गणना में 72000 दिव्यवर्ष होते है और ही 6 महायुग के बराबर होता है।[58] मन्वन्तर की काल गणना में पुराणों ने सन्धिकाल को उसमें सम्मिलित न कर उसे अलग ही छोड़ दिया है। चौदह मन्वन्तरों के नाम पुराणों में प्रायः एक जैसे ही मिलते हैं जो निम्न लिखित है–[59]

1. स्वायम्भुव मनु 2. स्वारोचिष मनु
3. उत्तम मनु 4. तामस मनु
5. रैवत मनु 6. चाक्षुज्ञ मनु
7. वैवस्वत मनु 8. सावर्णि मनु

9.	दक्षसावर्णि मनु	10.	ब्रम्हसवर्णि मनु
11.	धर्मसावर्णि मनु	12.	रूद्रसावर्णि मनु
13.	देवसावर्णि	14.	इन्द्रसावर्णि

पुराणों के अनुसार मन्वन्तर में पाँच अधिकारी होते है ये अधिकारी है–

1.	मनु	2.	सप्तर्षि
3.	देव	4.	देवराज इन्द्र तथा
5.	मनुपुत्र।		

इन पाँच मनुओं का सम्बन्ध एक ही व्यक्ति के साथ है और वह व्यक्ति हैं मानवों के सृष्टा स्वायम्भुव मनु। इसका तात्पर्य यह है कि स्वायम्भुव मनु ही निश्चित रूप से इस मन्वन्तर परम्परा के प्रवर्तक हैं।

वंशानुचरित में राजाओं का विशिष्ट विवरण उपलब्ध रहता है। वंशानुचरित में मुख्यतः 9 सूत महर्षियों का राजाओं का चरित्र समाविष्ट रहता है। पौराणिक पंचलक्षणों को महत्व देने वाले पुराणों में साम्प्रदायिक प्रभाव कम मात्रा में दिखलाई देता हैं। हरिवंश पुराण, ब्रम्हाण्ड पुराण, मत्स्य पुराण, वायु पुराण तथा ब्रम्हपुराण उत्तरकालीन साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों से बहुत कम प्रभावित हुये हैं। पुराण लक्षण के अन्तर्गत आने के कारण इनमें वंशावलियाँ बड़ी सुव्यवस्था के साथ दी गयी हैं। वंशानुचरित के अन्तर्गत विभिन्न राजवंशों ऋषियों की सूची वायुपुराण, ब्रम्हाण्ड पुराण, विष्णु पुराण, भागवत पुराण, गरूड़पुराण, विष्णु पुराण, विष्णु धर्मोत्तर, देवी भागवत, ब्रह्म पुराण, हरिवंश पुराण, शिव पुराण, कूर्मपुराण, लिंगपुराण, मत्स्य पुराण, पद्मपुराण तथा अग्निपुराण इन पन्द्रह पुराणों उपपुराणों में मिलती है। पुराण लक्षण का पालन न करने वाले अर्वाचीन पुराणों में वंशावलियों का स्थान प्रायः नगण्य है।

हरिवंश में पुराण लक्षण पूर्णता के साथ मिलते हैं। हरिवंश में यथास्थान पुराण पंचलक्षण के सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्तन्तर तथा वंशानुचरित मिलते हैं। पुराण पंच लक्षण के सर्ग प्रतिसर्ग अनुरूप हरिवंश में जगत की सृष्टि तथा प्रलय सम्बन्धी विचार मिलते है। वंश तथा मन्वन्तर के अनुरूप राजाओं तथा मन्वन्तरों का विवरण मिलता है। वंशानुचरित के अनुसार राजाओं तथा ऋषियों के विविध आख्यान मिलते हैं। अतः हरिवंश पुराण में पुराण लक्षण का

अनुसरण करने के कारण पुराण की सभी सामग्री विद्यमान है। पुराण लक्षण का पालन करने के कारण हरिवंश के अनेक स्थल पुराणों के स्थलों से समानता रखते हैं। हरिवंश का विकास, उसके पौराणिक लक्षणों की प्रधानता को देखते हुये, एक पुराण के रूप में हुआ प्रतीत होता है। हरिवंश के पुराण होने का प्रमाण विन्टरनित्स ने ब्रम्हपुराण, पद्मपुराण, भागवत पुराण और वायु पुराण के उन विशेष लक्षणों के आधार पर दिया है जो हरिवंश पुराण के इन्ही खण्डों से समानता रखते हैं।[60] पुराण पंचलक्षणों के साथ–2 पुराणों से समानता रखने वाली कुछ स्मृति सामग्री भी हरिवंश पुराण में मिलती है।

'पुराण' शब्द की व्युत्पत्ति :-

पुराण का अर्थ तथा पुराण शब्द की व्युत्पत्ति की चर्चा पाणिनि की अष्टाध्यायी तथा यास्क के निरूक्त नामक ग्रन्थों में की गयी है। इसके अतिरिक्त पुराणों में भी पुराण शब्द की व्युत्पत्ति की चर्चा है। लेकिन इन सभी में पुराण का अर्थ एक जैसा नहीं मिलता। पाणिनि ने पुराण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार से दी है– 'पुराभवम्' (प्राचीन काल में होने वाला) इस अर्थ में ''सायंचिरंप्राह्णेप्रेगऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च'' पार्णिनि के इस सूत्र से 'पुरा' शब्द से 'टयु' प्रत्यय करने तथा 'तुट्' के आगमन होने पर पुरातन शब्द निष्पन्न होता है।[61] पुराण शब्द ऋग्वेद में एक दर्जन से अधिक स्थानों पर मिलता है यह वहॉ विशेषण है तथा उसका अर्थ है प्राचीन या पूर्वकाल में होने वाला। यास्क के निरूक्त के अनुसार पुराण की व्युत्पत्ति है ''पुरानवं भवति''[62] अर्थात जो प्राचीन होकर भी नया होता है। वायुपुराण के अनुसार पुराण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है– 'पुरोअनति' अर्थात प्राचीन काल में जो जीवित था।

''यस्मात् पुरा ह्मनक्तींद पुराणं तेन तत् स्मृतम।
निरूक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।।''[63]

पद्म पुराण के अनुसार '' पुरापरम्परां वष्टि कामयते [64], अर्थात् जो प्राचीनता की अर्थात परम्परा की कामना करता है वह पुराण कहलाता है।

ब्रम्हाण्ड पुराण में पुराण की व्युत्पत्ति इस प्रकार से दी गयी है– 'पुरा एतत् अभूत 65 अर्थात प्रचीनकाल में ऐसा हुआ।

पुराण शब्द की इस व्याख्या को कहॉं तक सही माना जा सकता है इसकी

समीक्षा उन पद, शब्द और वाक्यों द्वारा होती है जो पौराणिक वाङ्‌मय के विभिन्न स्थलों में प्रयुक्त मिलते हैं। इनमें इति नः श्रुतम, इति श्रुतिः तथा इतिश्रुयते अतीव महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं इनका सामान्य अर्थ है ऐसा सुना गया है, ऐसा सुनते हैं अथवा ऐसा स्मरण किया जाता है परन्तु इनसे जो ध्वनि निकलती है वह प्राचीनता के प्रति पुराण का संकेत करती है इस प्रकार पुराण का तात्पर्य है अतीत की परम्परा के साथ वर्तमान वृत्तों और सांस्कृतिक आदर्शो को सम्बन्धित करना।

पुराणों में पाये जाने वाले उक्त शब्दों की समीक्षा पार्जीटर महोदय ने भी अत्यन्त व्यापक रूप में की है। उनके अनुसार [66] श्रुति शब्द का सामान्य अर्थ पवित्र ग्रन्थ से अथवा पवित्र परम्परा से है परन्तु पुराणों के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि इति श्रुति आदि से तात्पर्य पवित्र परम्परा से न होकर लौकिक परम्परा से है अपने मत के समर्थन में पार्जीटर महोदय ने कहा है कि जिन विषयों के सम्बन्ध में इनका प्रयोग हुआ है वे वैदिक ग्रन्थों में नहीं हैं। अंशतः हम इस मत को सही अवश्य मान सकते हैं परन्तु समग्र रूप में इसे संतोषजनक नहीं माना जा सकता है।

प्राचीन ग्रन्थों में पुराण का सम्बन्ध इतिहास से इतना सन्निकट है कि दोनों सम्मिलित रूप से 'इतिहास–पुराण' नाम से अनेक स्थानों पर उल्लिखित किये गये हैं। इतिहास की व्युत्पत्ति है– इति (इस प्रकार से) ह (निश्चयेन) आस (था, वर्तमान था) अर्थात् प्राचीन काल में निश्चय रूप से हाने वाली घटना इतिहास के द्वारा निर्दिष्ट की जाती थी। इस प्रकार इतिहास का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ प्राचीनकाल में वास्तवरूप में घटित होने वाली घटना का घोतक है। अथर्ववेद तथा ब्राम्हण ग्रन्थों में यह शब्द पुराण से भिन्न स्वतन्त्र रूप में इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पुराणों में आगे चलकर इतिहास शब्द का प्रयोग हम इसी रूप में पाते हैं इससे स्पष्ट है कि काल्पनिक कथा या आख्यान को 'पुराण' नाम से और वास्तविक घटना को 'इतिहास' नाम से पुकारते थे। [67] यही पुराण तथा इतिहास के प्राचीन अर्थो में विभेद सीमा है।

हरिवंश-खिल अथवा पुराणः-

महाभारत के खिलपर्व के रूप में हरिवंश सर्वमान्य है। महाभारत के प्रारम्भ में पर्वसंग्रह पर्व के अन्तर्गत हरिवंश का महाभारत से यह सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है। हरिवंश

के दो पर्व—हरिवंश पर्व तथा विष्णुपर्व महाभारत के अन्तिम दो पर्वों में माने गये हैं। इन दो पर्वों को परम अद्भुत खिल कहा गया है यथा—

"हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम्।

भविष्यत् पर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेबाद्भुतं महत्।।"[68]

पर्वसंग्रह पर्व के अन्य पाठ में हरिवंश के विष्णुपर्व की भी गणना हुयी हैं। इस स्थल पर विष्णु पर्व के अन्तर्गत कृष्ण के चरित्र का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।[69]

महाभारत के उपरोक्त विवरणों से महाभारत और हरिवंश पुराण का निकट कासम्बन्ध सिद्ध होता है। हरिवंश से महाभारत का सम्बन्ध हरिवंश में मिलने वाले प्रमाणों से भी सिद्ध होता है। हरिवंश के प्रारम्भिक अध्याय में महाभारत को श्रेष्ठ बतलाया गया है। इस स्थल पर भारत और भारत कथा के निर्माता तथा श्रोता की प्रशंसा की गयी है।[70] महाभारत की प्रशंसा के बाद हरिवंश के माहात्म्य का वर्णन हुआ है।[71] शौनक ऋषि कुशल श्रोता के रूप में सौति से 'भारत' का आख्यान सुनने के बाद वृष्णि अन्धकों के विषय में प्रकाश डालने की प्रार्थना करते हैं। द्वितीय श्रोता के रूप में जनमेजय वैशम्पायन से महाभारत के सुनने के बाद वृष्णि और अन्धकों के चरित्र को सुनने की इच्छा प्रकट करते हैं।[72] हरिवंश के भविष्य पर्व में शौनक ऋषि हरिवंश तथा अन्य अनेक पर्वों को सुनने के कारण अपने को सौभाग्यशाली मानते हैं। महाभारत और हरिवंश पुराण के ये मिलते जुलते आख्यान यह सिद्ध करते हैं कि महाभारत तथा हरिवंश पुराण का निकट का सम्बध है।

हरिवंश के वर्तमान रूप का अनुशीलन करने पर इसे केवल खिल ही नहीं कहा जा सकता क्योंकि हरिवंश में पुराण पंचलक्षण पूर्णता के साथ मिलते हैं। पंचलक्षण के सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित हरिवंश के सृष्टि सम्बन्धी वृतान्तों, राजवंश वर्णनों तथा विविध आख्यान और उपाख्यानों में मिलते हैं अतः पुराण पंचलक्षण का अनुसरण करने के कारण पुराण की समस्त सामग्री हरिवंश में विद्यमान है।

पुराण पंच लक्षणों का पालन करने के कारण हरिवंश के अनेक स्थल अन्य पुराणों के इसी प्रकार के स्थलों से समानता रखते हैं। पौराणिक सामग्री का प्रधानता को देखते हुये हरिवंश का विकास एक पुराण के रूप में हुआ ज्ञात होता है। सुप्रसिद्ध विद्वान विन्टरनित्स

ने हरिवंश के पुराण होने का प्रमाण ब्रम्ह, पद्य, विष्णु, भागवत और वायु पुराण के उन विशेष प्रसंगों के आधार पर दिया है जो हरिवंश के इन्हीं खण्डों से समानता रखते हैं। इस सन्दर्भ में उनका कथन है[73]

" The fact that the Harivansa sls absolutely and entirely a Purana is also shown by the numerous, often literally indentical comcidences with Passages in several of the most important Puranas (Brahma, Padma, Visnu, Bhagavata and especially the Vayu Pur and)."

स्वतन्त्र वैष्णव पुराण के रूप में हरिवंश से अनेक विद्वान परिचित हैं।सुप्रसिद्ध विद्वान फरक्यूहर ने अपने ग्रन्थ में हरिवंश की गणना महापुराणों में की हैं। उनके अनुसार पुराण पंच-लक्षण के पालन तथा मौलिक पुराण होने के कारण हरिवंश बीसवाँ महापुराण माना जाना चाहिये। उन्हीं के शब्दों में–

" But the actual number of existing works recognised as Purana is 20: for the Harivansa, which forms the conclusion of the Mahabharat is one of the earliest and greatest of the Puranas and must be reckoned as such."[74]

उत्तरकालीन अनेक ग्रन्थों में हरिवंश को प्रामाणिक वैष्णव ग्रन्थ के रूप में स्वीकार कर लिया गया है अग्निपुराण में प्राचीन मान्य ग्रन्थो की सूची के अन्तर्गत रामायण, महाभारण तथा पुराणों के साथ हरिवंश का नामोल्लेख है यथा–

"सर्वे मत्स्यावताराधा गीता रामायणं त्विह।

हरिवंशो भारतं च नवसर्गाः प्रदर्शिताः।

आगमों वैष्णवो गीतः पूजा दीक्षा प्रतिष्ठया।।"[75]

गरूड़ पुराण में महाभारत तथा हरिवंश का कथासार मिलता है।[76] इस आधार पर कह सकते हैं कि गरूड़ पुराण के काल तक महाभारत की भॉति हरिवंश का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित हो चुका था, वह महाभारत के केवल खिल के रूप में नहीं रह गया था।

रामायण और महाभारत से भिन्न रूप में हरिवंश के उल्लेख से अग्नि पुराण के काल तक स्वतन्त्र वैष्णव पुराण के रूप में हरिवंश की प्रसिद्धि का पता चलता है। ज्ञात होता

है कि उत्तरकाल में हरिवंश वैष्णव पुराण के रूप में स्वीकार कर लिया गया था।

इस प्रकार विभिन्न मतों की समीक्षा करने पर दो निष्कर्ष निकलते है। पहले निष्कर्ष के अनुसार हरिवंश महाभारत का अन्तरंग भाग है। द्वितीय निष्कर्ष के परिणामस्वरूप खिल हरिवंश एक सम्पूर्ण वैष्णव पुराण के रूप में दिखलाई देता है। हरिवंश में पुराण पंचलक्षणों के साथ पुराणों से समानता रखने वाली कुछ स्मृति सामग्री भी मिलती है। इसी कारण खिलपर्व होने पर भी हरिवंश का विकास एक स्वतन्त्र पुराण के रूप में हुआ है।

महाभारत के खिल पर्व के रूप में हरिवंश :-

हरिवंश महाभारत ग्रन्थ का ही अन्तिम पर्व है। आदि पर्व के अनुक्रमणिकाध्याय में महाभारत को सौ पर्वों वाला ग्रन्थ बतलाया गया है, इसके अन्तिम तीन पर्व इस हरिवंश में सम्मिलित हैं जैसे वेदविहित सोमयाग उपनिषदों के बिना पूर्ण सम्पन्न नहीं होता वैसे ही महाभारत पारायण भी हरिवंश परायण के बिना पूर्ण नहीं होता। किन्तु हरिवंश का परायण श्रीमद्भगवद् गीता आदि की तरह स्वतन्त्र भी किया जाता है। इस प्रकार हरिवंश पुराण 'खिल संज्ञितम' आदि पर्व के आधार पर हरिवंश पुराण तथा हरिवंश पर्व इन दोनों ही नामों से विख्यात है।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित प्रमाणों से भी हरिवंश महाभारत का खिल सिद्ध होता है। ये प्रमाण हरिवंश (चित्रशाला संस्करण) के प्रास्ताविक में हरिवंश को महाभारत का खिल सूचित करने के लिये दिये गये हैं।[77] इन प्रमाणों को निम्नलिखित आठ भागों में बाँट दिया गया है।

1. महाभारत के पर्व संग्रह पर्व में सौ पर्वों के अन्तर्गत हरिवंश का समावेश।
2. पर्वसंग्रहपर्व में 79वें श्लोक के अन्तर्गत 'हरिवंशस्य हरिवंशकथने भविष्य कथने च तात्पर्यम' का उल्लेख।
3. हरिवंश के उपक्रमाध्याय में शौनक के द्वारा सौति से भारती कथा को सुनने के बाद वृष्णि अन्धकों के चरित्र को सुनने की इच्छा।
4. हरिवंश पर्व में बीसवें अध्याय के अन्तर्गत 'यथा ते कथितं पूर्वं या राजर्षिसप्तम्' के द्वारा ययाति के चरित्र की महाभारत में उपस्थिति।

5. हरिवंश पर्व के 32वें अध्याय में अदृश्यवाणी का कथन 'त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला' के द्वारा महाभारत में शकुन्तला के उपाख्यान की ओर संकेत।

6. हरिवंशपर्व के 54वें अध्याय में 'मित्रस्य धनदस्य' के द्वारा मित्रांशत्व के रूप में कणिक मुनि का उल्लेख। यह उल्लेख आदिपर्व में जम्बूक कथा के वक्ता कणिक मुनि की पूर्वस्थिति की ओर संकेत करता है।

7. भविष्य पर्व की समाप्ति में 132वें अध्याय के अन्तर्गत महाभारत—श्रवण फल का वर्णन। महाभारत में यद्यपि स्वर्णारोहण पर्व अन्तिम हैं किन्तु सौ पर्वों की गणना में हरिवंश के समावेश से महाभारत को हरिवंश तक मानना पड़ता है।

8. महाभारत के अनुशासनपर्व में कृष्ण के कैलाशगमन का संकेत संक्षिप्त रूप में किया गया है। हरिवंश के भविष्य पर्व में इसी वृतान्त का विस्तार देखा जा सकता है। हरिवंश के प्रस्ताविक मेंवर्णित महाभारत तथा हरिवंश की एकता को सूचित करने वाले ये सिद्धान्त महत्वपूर्ण हैं।

महाभारत तथाहरिवंश में परस्पर सम्बन्ध को स्थापित करने वाले इन ग्रन्थों के आन्तरिक प्रमाण ही हरिवंश को महाभारत का खिल सूचित नहीं करते अपितु विविध वृतान्तों और पौराणिक प्रसंगों की दृष्टि से भी महाभारत तथा हरिवंश में परस्पर सम्बन्ध दिखलाई देता है। यह उल्लेखनीय है कि महाभारत में वर्णित कुछ वृतान्त हरिवंश में सम्भवतः पुनःरावृत्ति के भय से जानबूझकर छोड़ दिये गये हैं। महाभारत में द्वारकावासी यादवों के विनाश का विस्तृत विवरण मौसलपर्व मे मिलता है।[78] हरिवंश में कृष्णचरित्र को प्रधानता देने पर भी द्वारका के विनाश से सम्बद्ध यह वृतान्त उपेक्षित है। द्वारका के विनाश के प्रसंग की ओर हरिवंश पुराण के विष्णु पर्व के 102 वें अध्याय में संकेत मात्र हुआ है यहाँ पराद्वारका के विनाश की घटना भावी रूप में वर्णित की गयी है। यथा :—

"कृष्णों भोगवतीं रम्यामृषिकान्तां महायशाः।
द्वारकामात्मसात्कृत्वा समुद्रं गमयिष्यति।।"[79]

द्वारका नगरी में विनाश का यह पूर्वकथन महाभारत के वनपर्व में अक्षरशः इसी रूप में मिलता है यथा—

"तां च भोगवतीं पुण्यामृषिकान्तां जनार्दन।

द्वारका मात्मसात् कृत्वा समुद्रं गमयिष्यसि।।"[80]

द्वारका के विनाश के वृतान्त को भावी घटना के रूप में लिखने के कारण महाभारत के वनपर्व का यह प्रसंग मौसलपर्व से पूर्वकालीन ज्ञात होता है। सम्भवतः वनपर्व में भावी घटना के रूप में केवल संकेत करने के उपरान्त मौसलपर्व में इसी घटना का विशद वर्णन हुआ है। द्वारका के वृतान्त की आवृत्ति के भय से ही सम्भवतः हरिवंश में यह वृतान्त उपेक्षित है।

महाभारत तथा हरिवंश के उपरोक्त साम्यों के अतिरिक्त कुछ विषयों में परस्पर सम्बन्ध नहीं दिखलाई देता । उदाहरणार्थ नहुष के पुत्र ययाति का चरित्र महाभारत तथा हरिवंश में समान रूप से व्यापकता के साथ मिलता है। द्वारका नगरी के विनाश से सम्बद्ध वृतान्त में यदि आवृत्ति का निराकरण किया गया है तो ययातिं के वृतान्त में भी यह प्रवृत्ति होनी चाहिये किन्तु ययाति के वृतान्त का महाभारत तथा हरिवंश में विस्तृत वर्णन आवृत्ति के भय की सम्भावना को मिटा देता है। ययाति का वृतान्त महाभारत तथा हरिवंश में विस्तार के साथ ही नहीं मिलता वरन् इस वृतान्त क अन्तर्गत कुछ श्लोक महाभारत, हरिवंश तथा अन्य पुराणों में अक्षरशः समानता रखते है। उदाहरणार्थ ययाति की वृद्धावस्था मे उसकी अनन्त कामतृष्णा मानसिक भावावेश के रूप में उसकों एक तत्वपूर्ण बात कहने के लिये बाध्य करती है। इच्छा उपभोग से कभी शान्त नहीं होती। हविष् के डालने पर अग्नि की भॉति वह बढ़ती जाती है यथा–

"न जातु कामः कामानाभुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।।"[81]

अनेक पुराण, महाभारत और हरिवंश में ययाति के चरित्र के साथ इस श्लोक की उपस्थिति पौराणिक ययाति चरित्र की एक ही परम्परा की ओर संकेत करती है।

इतिहास पुराण में ययाति के चरित्र की व्यापकता का कारण इस चरित्र में ही निहित है। ययाति का चरित्र अत्यन्त प्राचीन है। सुप्रसिद्ध विद्वान विण्टरनित्स ने इस चरित्र की

प्राचीनता सूचित करने के लिये पतंजलि के सूत्रों की ओर संकेत किया है। उनके मतानुसार–

"The Yayati legend for instance is surely at least as early as Patanjali, who teaches the formation of the world 'Yayatika' he who knows the yayati legend in th Mahabhasya."[82]

अर्थात् पतंजलि ने 'यायातिक' के द्वारा 'ययाति के वृतान्त से सम्बद्ध' अर्थ दिया है ज्ञात होता है कि ययाति का वृतान्त लगभग इसी रूप में पतंजलि के काल में प्रचलित हो गया था। पतंजलि के पूर्व ययाति का नाम नहीं मिलता किन्तु संभवतः पतंजलि के पूर्वकाल में ययाति का वृतान्त जनसाधारण के लिये ज्ञात हो चुका था।

अनेक उत्तरकालीन प्रमाणों के आधार पर महाभारत तथा हरिवंश के सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त होता है। सुप्रसिद्ध विद्वान आनन्दवर्धन ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में हरिवंश को महाभारत का उपसंहार पर्व माना है।

ध्वन्यालोक के इस स्थल पर हरिवंश में शान्तरस का प्राधान्य बतलाया गया है। यथा–

''सत्यं शान्तस्यैव रसस्यांगिस्वं महाभारते मोक्षस्य च सर्वपुरूषार्थेभ्यः प्राधान्यम्।' .... अयं च निमूढरम जीयाऽर्थो महाभारतावसाने हरिवंश वर्णनेन समाप्तिं विदधता कविवेधसा कृष्णद्वैपायनेन सम्यक् स्फुटीकृतः।''[83]

विद्वानों ने आनन्द वर्धन का काल नवीं शताब्दी माना है।[84] इससे ज्ञात होता है कि नवीं शताब्दी तक हरिवंश को महाभारत के महत्वपूर्ण अंग के रूप में माना जाता था।

सुप्रसिद्ध विद्वान् हाजरा ने अपने ग्रन्थ में महाभारत तथा हरिवंश की एकता के प्रवर्तक महत्वपूर्ण सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है उनके अनुसार, नीलकण्ठ ने महाभारत (वंशवासी संस्करण) के अन्त में कहा है कि 'भगवन्केन विधिना' वाक्य से प्रारम्भ होने वाली स्वर्गारोहण पर्व की दानविधि वस्तुतः हरिवंश में मिलती है। किन्तु महाभारत के पाठकों को प्रोत्साहित करने के लिये दान तथा श्रवण–माहात्म्य इस पर्व में रख दिया गया है।''[85]

महाभारत में दान तथा श्रवण माहात्म्य के विषय का हरिवंश से ग्रहण महाभारत तथा हरिवंश की एकता को प्रतिपादन करता है। इसी प्रकार महाभारत तथा हरिवंश के अन्तर्गत

प्रमाणों और विषयों कोप्रस्तुत करने की विधि के द्वारा हरिवंश और महाभारत के परस्पर सम्बन्ध की सूचना मिलती है। उपरोक्त विभिन्न मतों के आधार पर हम कह सकते हें कि निर्विवाद रूप में हरिवंश महाभारत का खिलपर्व है।

अष्टादश पुराणों के मध्य हरिवंश का परिगणन :-

परम्परागत 18 पुराण हैं। संस्कृत साहित्य में 18 की संख्या बड़ी पवित्र, व्यापक और गौरवशाली मानी जाती है। महाभारत के पर्वों की संख्या 18 है। भगवद्गीता के अध्यायों की संख्या 18 है। तथा भागवत पुराण के श्लोकों की संख्या भी 18 हजार है। परम्परागत 18 पुराणों में हरिवंश पुराण का उल्लेख एक पुराण के रूप में नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में यह एक विचारणीय प्रश्न है कि हरिवंश पुराण की प्राचीन भारतीय साहित्य में क्या स्थिति है? हरिवंश पुराण का उल्लेख महाभारत के परिशिष्ट या खिल के रूप में प्रायः मिलता है। किन्तु इसमें पुराण के पंचलक्षणों का भी समावेश मिलता है। हरिवंश के पुराण पंचलक्षण में सर्ग (सृष्टि) का विषय ही प्रमुख है और इसी विषय का विकास और व्यापकता दिखलाने के लिये इसमें इतर चार लक्षण प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित को भी समाविष्ट किया गया है। पुराणों की अष्टादश संख्या भी इसी सृष्टि तत्व से सम्बन्ध रखती है।

अष्टादश पुराणों की सूची का जो क्रम बतलाया गया है वह सर्वसम्मत न होने पर भी बहुसम्मत तो अवश्य है ही। अब प्रश्न यह है कि इन पुराणों का इसी क्रम से निर्देश क्यों है? क्या इसका कोई ऐतिहासिक कारण है? अथवा यह क्रम केवल मनमाने ढंग से ही रखा गया है? इस सम्बन्ध में पुराणविद् विद्वानों का मत है कि यह किसी ऐतिहासिक कारण का फल न होकर वर्ण्य–विषय को लक्ष्य में रखकर ही सम्पन्न किया गया है। यद्यपि पुराणों के वर्ण्य विषय अनेक हैं परन्तु पुराणों के विषय की दृष्टि से यह निर्देश क्रम उचित तथा सुसंगत प्रतीत होता है।

पुराणों का प्रधान विषय सर्ग या सृष्टि है। किस प्रकार मूल तत्व से सृष्टि की उत्पत्ति हुई? किस प्रकार उसका विकास हुआ? किस प्रकार से नाना वंशों का उदय हुआ तथा उनमें अनेक गौरवशाली व्यक्तियों ने अपने अनुकरणीय महत्वपूर्ण चरित्रों का प्रदर्शन किया? अन्ततः अन्त में सृष्टि के मूलतत्व में विलीन होने से प्रलय हो गयी। सृष्टि की यही प्रवाहमान

धारा है। विश्व का आदि सर्ग और पर्यवसान है प्रतिसर्ग। इन दोनों छोरों के बीच में मन्वन्तर, वंश तथा वंशानुचरित की धारा प्रवाहित होती है। पुराणों के पंचलक्षण का यही आधार अथवा संगति है। फलतः सृष्टि तत्व का प्रतिपादन ही पुराणों का मुख्य विषय है। हरिवंश पुराण में भी यही पंचलक्षण भली–भाँति उपस्थित मिलते हैं। इस दृष्टि से पुराणों के अष्टादश क्रम में हरिवंश का परिगणन न करना उचित प्रतीत नहीं होता।

मत्स्य पुराण में पुराणों का विभाजन गुणों के आधार पर किया गया है जैसे सात्विक पुराण, राजस पुराण तथा तामस पुराण। सात्विक पुराणों में विष्णु का माहात्म्य वर्णित है । राजस पुराणों में ब्रम्हा का तथा तामस पुराणों में शिव का माहात्म्य वर्णित है। यथा–

"सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिक हरेः।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रम्हणों विदुः।।
तद्वदग्नेश्चमाहात्म्य तामसेषु शिवस्य च।
सड़ीकणेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगधते।।"[86]

पद्य पुराण में सात्विक पुराणों में निम्न पुराणों की गणना की गयी है– विष्णु पुराण, नारद पुराण, भागवत पुराण, गरूड़ पुराण, पद्य पुराण तथा वाराह पुराण। गरूड़ पुराण इससे भी एक पग आगे बढ़कर सात्विक पुराणों के भीतर तीन प्रकार का विभाग मानता है–

1. सत्वाधम– मत्स्य पुराण तथा कूर्मपुराण।
2. सात्विक मध्यम– वायु पुराण
3. सात्विक उत्तम– विष्णु पुराण, भागवत पुराण तथा गरूड़ पुराण।

मत्स्य पुराण का यह त्रिविध विभाजन भी अष्टादश पुराणों के आधार पर हुआ है। हरिवंश पुराण के पुराणों की अष्टादश संख्या में सम्मिलित न होने के कारण उसे सात्विक, राजस, तामस, किस श्रेणी में रखा जाये। यह विचारणीय है।

पुराणों का वर्गीकरण अष्टादश पुराणों के आधारपर किया गया है। पुराण के पंचलक्षण को आधार मानकर प्राचीन तथा प्राचीनतर–ये दो विभाग किये गये हैं। इस विभाजन के अनुसार वायु पुराण, ब्रम्हाण्ड पुराण, मत्स्य पुराण और विष्णु पुराण प्राचीन पुराण है शेष अन्य पुराणों को प्राचीनतर वर्ग में समझना चाहिये। अष्टादश पुराणों का देवताओं के विचार से भी

वर्गीकरण किया गया है। पद्म पुराण के अनुसार–मत्स्य पुराण, कूर्म पुराण, लिङ. पुराण, शिव पुराण, स्कन्द पुराण तथा अग्नि पुराण ये छः पुराण तामस हैं। ब्रम्हाण्ड पुराण, ब्रम्हावैवर्त पुराण, मार्कण्डेय पुराण, भविष्य पुराण, वामन पुराण और ब्रम्हा पुराण–ये छः राजस पुराण हैं तथा नारद पुराण, विष्णुपुराण, गरूड़ पुराण, पद्म पुराण वाराह पुराण और भागवत पुराण ये छः सात्विक पुराण है। विष्णु को सात्विक, ब्रम्हा को राजस तथा शिव का तामस देव मानकर यह वर्गीकरण तामस, राजस तथा सात्विक पुराणों की समान संख्या मानकर किया गया है।[87] लेकिन पुराणों का इस प्रकार कावर्गीकरण सर्वमान्य नहीं है।

पुराणों की निर्दिष्ट पुराण सूची में चतुर्थ पुराण के रूप में किस पुराण की गणना की जाय, इस विषय में पुराणविद् एकमत नहीं है। वस्तुतः पुराणों की बहुल संख्या 'शिवपुराण' को चतुर्थ पुराण मानने के पक्ष में है जबकि पुराणों की अल्प संख्या 'वायु पुराण' को यह आदरणीय स्थान देने का आग्रह करती है। कूर्म पुराण, पद्म पुराण, ब्रम्हवैवर्त पुराण, भागवत पुराण, मार्कण्डेय पुराण, लिड़ पुराण, वाराह पुराण तथा विष्णुपुराण, शिव पुराण को ही चतुर्थ महापुराण मानने के पक्षधर है जबकि देवी भागवत, नारद पुराण, मत्सय पुराण, वायुपुराण के पक्ष में अपना मत देने हैं। लेकिन ऐसे विषय में बहुमत का कोई मूल्य नहीं है। प्रामाणिकता का निर्णय बहुमत की कसौटी से करना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता। दोनों पुराण आकार–प्रकार, वर्ण्य–विषय में नितान्त भिन्नता रखते है।

इस प्रकार शिव पुराण तथा वायुपुराण में से किसे चतुर्थ पुराण माना जायें। यह विवाद ग्रस्त है क्योंकि पुराणों की संख्या 18 होने के कारण यह नियम विरूद्ध है। सम्भवतः इसीलिये सुप्रसिद्ध विद्वान फरक्यूहर ने पुराणों की संख्या बीस मानने का आग्रह किया है।[88] फरक्यूहर महोदय ने शिव पुराण तथा वायु पुराण के अतिरिक्त हरिवंश पुराण को पुराणों के भीतर अन्तर्भुक्त कर पुराणों की कुल संख्या बीस मानी है। लेकिन उनके इस मत के लिये न तो सम्प्रदाय का और न ही किसी ग्रन्थ का कोई आधार नहीं है। इसलिये चौथे पुराण के लिये पहले दोनों पुराणों के समस्त लक्षणों को एकत्र करना चाहिये फिर जिसके साथ लक्षण सुसंगत बैंठे उसे चतुर्थ पुराण माना जाना चाहिये। इस आधार पर दोनों पुराणों की तुलना करने पर वायु पुराण ही प्राचीन तथा निश्चित रूप से महापुराण है जबकि शिव पुराण अर्वाचीन और तान्त्रिकता

से मण्डित उपपुराण है।

संस्कृत साहित्य में पुराणों की परम्परागत संख्या यद्यपि 18 मिलती है, किन्तु इससे भी अधिक संख्या में पुराण मिलते हैं, इसलिये इनको पुराण और उपपुराण दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। हरिवंश पुराण, प्राचीनता, पौराणिक सामग्री की प्रधानता, पुराण पंचक्षण तथा वर्ण्य विषय के प्रतिपादन के आधार पर पूर्ण पुराण सिद्ध होता है। पुराणों की संख्या में परिगणित न होने पर भी अनेक ग्रन्थो में हरिवंश को प्रामाणिक वैष्णव ग्रन्थ या स्वतन्त्र वैष्णव पुराण के रूप में स्वीकार किया गया है। भगवद्भक्ति तथा कथानक की दृष्टि से हरिवंश पुराण का बड़ा महत्व है। भगवान श्री कृष्ण से सम्बद्ध तथा अन्यान्य अगणित कथायें इसमें ऐसी है, जो अन्यत्र नहीं मिलती।

हरिवंश का प्रतिपाद्य विषय :-

महाभारत का खिल पर्व होने के कारण हरिवंश की आलोचना अब प्रसंग प्राप्त है। हरिवंश में श्लोकों की संख्या 16374 है जो श्रीमद्भागवत की श्लोक संख्या से कुछ ही अधिक है। सुप्रसिद्ध विद्वान विण्टरनित्स के कथनानुसार यूनानी कवि होमर के दोनों महाकाव्यों 'इलियड' और 'ओडिसी' की सम्मिलित पद्य संख्या से भी हरिवंश के श्लोकों की संख्या अधिक है परन्तु यह एक लेखक की रचना न होकर अनेक लेखकों के संयुक्त प्रयास का फल है। हरिवंश का अन्तिम पर्व (ग्रन्थ का तृतीय भाग) तो परिशिष्ट भूत हरिवंश का भी परिशिष्ट है और काल क्रम में सबसे पीछे का निर्मित भाग है।

हरिवंश में तीन पर्व या खण्ड हैं, जिनका प्रतिपाद्य विषय निम्नवत है।

(क) हरिवंश पर्व-

इस पर्व में हरि (कृष्ण) के वंश वृष्णि अन्धक की कथा विस्तार से दी गयी है, और इस आदिम पर्व के आधार पर पूरे ग्रन्थ का नामकरण किया गया है। इसमें आरम्भ में सृष्टि का वर्णन है। ध्रुव के वर्णन के अनन्तर राजा पृथु की कथा विस्तार से दी गयी है। सूर्यवंशीय राजाओं के प्रसंग में विश्वामित्र तथा वसिष्ठ का भी आख्यान वर्णित है। प्रसंग से हटकर प्रेतकल्प (अन्त्येष्टि एवं श्राद्ध) का वर्णन नौ अध्यायों में (अध्याय 16 से 24) विस्तार से किया गया है और इसी के अन्तर्गत 21वें अध्याय में पशुओं की बोली को समझने बूझने वाले ब्रम्हदत्त की कथा दी

गई है। चन्द्रवंशीय राजाओं के वर्णन के अवसर पर राजा पुरूरवा और उर्वशी का प्रख्यात वैदिक आख्यान प्राचीन शैली तथा भाषा में निबद्ध होकर शतपथ ब्राम्हण के आख्यान से समानता रखता है। नहुष, ययाति तथा यदु के वर्णन के पश्चात विष्णु की अनेक स्तुतियाँ प्रस्तुत की गयी हैं जो एक प्रकार से कृष्ण के पूर्व दैवी इतिहास का परिचय देती है।

(ख) विष्णु पर्व :-

यह समग्र ग्रन्थ का अतिशय विस्तृत तथा महनीय भाग है। इसमें कृष्ण की विविध लीलाओं का, विशेषतः बाललीलाओंका, बड़ा ही साड़ोपाड़ रूचिर विवरण दिया गया है। श्रीमद्भागवत के वर्णन से तुलना करने पर अनेक स्थलों पर पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है। कहीं–2 अन्य घटनायें भी दी गयी है। कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के जन्म, शंबर द्वारा हरण, समुद्र से प्राप्ति तथा मायावती के साथ विवाह आदि प्रख्यात कथाओं का यहाँ उल्लेख है परन्तु असुरों के राजा वज्नाभ की दुहिता प्रभावती के साथ प्रघुम्न का विवाह और वह भी नितान्त नाटकीय ढ़ग से, एकदम नूतन तथा पर्याप्त रूपेण रोचक है।[89] इसी प्रकार प्रख्यात रासलीला का हल्लीसक नृत्य के रूप में निर्देश किसी प्राचीन युग की स्मृति दिलाता है। इस पर्व के अन्त में अनिरूद्र का विवाह बाणासुर की कन्या ऊषा के साथ बड़े उमंग और उत्साह से वर्णित है और इससे पूर्व 'हरिहरात्मक स्तव' द्वारा शिव और विष्णु की एक ही अभिन्न देवता के रूप में सुन्दर स्तुति की गयी है।[90] इस पर्व में विषय की एकता और वर्णन की संगति से प्रतीत होता है कि प्राचीन युग में 'श्रीकृष्ण चरित काव्य' के साथ यह अंश सम्बन्ध रखता है।

(ग) भविष्य पर्व :-

यह भाग विविध वृतान्तों का पौराणिक शैली में परस्पर असम्बद्ध संकलन है। इस पर्व का नामकरण प्रथम अध्याय के नाम पर है, जहाँ भविष्य में होने वाली घटनाओं का संकेत किया गया है। जनमेजय द्वारा विहित यज्ञों का वर्णन बड़े सुन्दर ढ़ग से किया गया है। विष्णु के शूकर, नृसिंह तथा वामन अवतारों के वर्णन के अनन्तर–शिवपूजा तथा विष्णु पूजा के समन्वय की दिशा दिखाई गई है। शिव के दो उपासक हंस तथा डिम्भक की कथा विस्तार से है जिन्हें कृष्ण ने पराजित किया था। महाभारत के माहात्म्य वर्णन के पश्चात समग्र हरिवंश का ध्येय हरि की स्तुति में प्रदर्शित किया गया है–

"आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते।"

हरिवंश के प्रणेता :-

हरिवंश महाभारत का खिलपर्व है। महाभारत के प्रारम्भ में इसके प्रमाण मिलते हैं। महाभारत के आदिपर्व में पर्वसग्रह पर्व के अन्तर्गत खिल हरिवंश का उल्लेख हुआ है।[91] इसी प्रकार हरिवंश के प्रारम्भ तथा अन्त में महाभारत से सम्बन्ध का कथन है।[92] महाभारत तथा हरिवंश के इन अन्तर्गत कथनों के द्वारा खिल के रूप में हरिवंश का महाभारत से सम्बन्ध सूचित होता है। इस आधार पर हम कह सकते है। कि महाभारत के रचयिता ही हरिवंश के भी स्वीयता हैं। स्वयं हरिवंश पुराण (गीताप्रेस, गोरखपुर) के आवरण पृष्ठ पर "श्रीमन्महर्षि वेदव्यास प्रणीत महाभारत खिलभाग हरिवंश" अंकित है। इससे भी हरिवंश के रचयिता वेदव्यास सिद्ध होते हैं।

कुछ विद्वानों के मतानुसार व्यास या वेद व्यास किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं अपितु वह एक पदवी है अथवा अधिकार का नाम है। पं0 गिरधर शर्मा के अनुसार "जब जो ऋषि, मुनि वेद संहिता का विभाजन या पुराण का संक्षेप कर ले वहीं उस समय का व्यास या वेदव्यास कहा जाता है। महर्षि वेदव्यास के पहले भी 27 व्यास हो चुके हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं–[93]

1. ब्रम्हा	2. प्रजापति	3. शुक्राचार्य	4. बृहस्पति	5. सूर्य
6. यम	7. इन्द्र	8. वसिष्ठ	9. सारस्वत	10. त्रिधामा
11. त्रिशिख	12. भरद्वाज	13. अन्तरिक्ष	14. वर्णी	15. त्रम्यारूण
16. धनन्जय	17. ऋतुन्जय	18. जय	19. भरद्वाज	20. गौतम
21. हर्यात्मा	22. वाजश्रवा	23. सोमशुष्मायण तृणबिन्दु		24. भार्गव ऋक्ष (बाल्मीकि)
25. शक्ति	26. पराशर	27. जातुकर्ण तथा		28. कृष्ण द्वैपायन

कृष्ण द्वैपायन ही वेदव्यास के नाम से जाने जाते हैं। वे निषादराज की पुत्री सत्यवती के गर्भ से पराशर मुनि के वीर्य से उत्पन्न हुये थे। उनका जन्म यमुना के एक द्वीप में हुआ था इसलिये वे द्वैपायन के नाम से प्रसिद्ध थे। उनका शरीर कृष्णवर्ण का था। और इसी से वे कृष्ण या कृष्ण मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुये। दोनों को मिलाने से उनका पूरा नाम

कृष्णद्वैपायन था। वेदों का विभाजन करने के कारण वे 'वेद व्यास' पूरे नाम से और अधिकतर व्यास जैसे छोटे नाम से पुकारे जाते थे। उनके अगाध पाण्डित्य तथा अलौकिक प्रतिभा का वर्णन करना सरल कार्य नहीं है। कौरव–पाण्डवों के इतिहास से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध इसलिये हैं कि वे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर क जन्मदाता ही न थे, प्रत्युत पाण्डवों को विपत्ति के समय सर्वदा धैर्य बँधाते रहे। कौरवों को युद्ध से विरत करने के लिये उन्होने कुछ उठा नहीं रखा, परन्तु दुर्बुद्ध कौरवों ने उनके उपदेशों को एक नहीं सुना। उन्होने तीन वर्षों तक सतत् परिश्रम कर महाभारत जैसे महान ग्रन्थ का प्रणयन किया–

"त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णाद्वैपायनों मुनिः।
महाभारतमाख्यांन कृतवानिदमुत्तमम्।।"[94]

सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य बलदेव उपाध्याय का मत है कि 18 पुराणों के प्रणयन का श्रेय भी व्यास को जाता है।[95] पुराण के प्रवचन करने का काम 'सूत' का ही था। महाभारत तथा पुराणों में सूत प्रवक्ता के रूप में चित्रित किये गये हैं जिनके पास जाकर ऋषियों ने पौराणिक विषयों की जिज्ञासा की और जिन्होने उनके प्रश्नों का समाधान सन्तोषजनक रूप से किया। व्यास के शिष्य लोमहर्षण या रोमहर्षण ब्राम्हण जाति के थे। उनके नामकरण का कारण यह था कि अपने पौराणिक प्रवचनों के द्वारा वे श्रोताओं को आनन्दित किया करते थे जिससे उनके रोगटे खड़े हो जाते थे। पुराणों का कथन है कि वेन के पुत्र महाराज पृथु के यज्ञ में सूत अग्निकुण्ड से उतपन्न हुये थे। अतः अग्निकुण्ड सूत होने के कारण वे संक्षेप में 'सूत' नाम से अभिहित किये गये थे। वायु पुराण में इस उत्पत्ति का बड़ा प्रामाणिक वर्णन प्राप्त होता है।[96] सूत लोमहर्षण के पुत्र भी पुराणेतिहास के महान व्याख्याता थे, उनका नाम था सौति उग्रश्रवा और इन्होने ही महाराज जनमेजय को 'हरिवंश' सुनाया था। इसका प्रमाण हमें हरिवंश पुराण में मिल जाता है जहाँ शौनक सूत पुत्र उग्रश्रवा (लोमहर्षण) से महाभारत की कथा सुनने के बाद वृष्णि तथा अन्धक वंश के वीरों के जन्म–कर्म की कथा सुनाने का आग्रह करते है। इसके उत्तर में सूत पुत्र उग्रश्रवा जी, शौनक जी से बताते हैं, कि यहीं प्रश्न जनमेजय ने व्यास के धर्मवेत्ता शिष्य वैशम्पायन जी से किया था जिसके उत्तर में वैशम्पायन ने जनमेजय की कथा सुनाई।[97] हरिवंश

पुराण में तीन पर्व (हरिवंश पर्व, विष्णु पर्व तथा भविष्यपर्व) हैं।

हरिवंश का रचनाकाल :-

हरिवंश महाभारत का खिलपर्व है। महाभारत के शतसहस्त्र (100000) श्लोकों की संख्या हरिवंश के स्वरूप तथा काल के विषय में महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करती है। महाभारत के एक लाख श्लोक अट्ठारह पर्वों के साथ हरिवंश का भी समावेश करते हैं। महाभारत शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम हमें आश्वलायन गृह्मसूत्र में मिलता है इसके पहले के ग्रन्थों में इसे 'जय' अथवा 'भारत' नाम से पुकारा गया है। इस आधार पर हम कह सकते हैं, कि गृहसूत्रों के काल तक महाभारत का वर्तमान रूप लगभग निश्चित हो चुका था।

प्राचीन ग्रन्थों में महाभारत का उल्लेख और हरिवंश के नाम का अभाव यह सिद्ध करते है कि महाभारत का खिल होने के कारण हरिवंश सम्भवतः प्रारम्भ में स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखता था लेकिन कालान्तर में हरिवंश के मूल आख्यान तथा उपाख्यानों के साथ पौराणिक अर्वाचीन सामग्री का समावेश हरिवंश के आकार की वृद्धि करता है। वैष्णव, शैव तथा शाक्त परम्परायें एवं व्रत–माहात्म्य हरिवंश की अर्वाचीन पौराणिक सामग्री को प्रस्तुत करते हैं। उत्तरकाल में खिल–हरिवंश का विकास निश्चय ही एक स्वतन्त्र पुराण के रूप में हुआ।

पुराणों के आन्तरिक तथा बाह्य प्रमाण, लेखकों के मत तथा पुराणों का तुलनात्मक अनुशीलन पौराणिक अध्ययन के प्रमाणिक आधार हैं, अतः हरिवंश का कालनिर्णय भी इन चार बातों को ध्यान में रखते हुये किया जा सकता है। पुराण के अन्तर्वर्ती होने के कारण अन्तः साक्ष्य प्रमाण सर्वप्रथम विवेचन के विषय है। इन प्रमाणों की संख्या हरिवंश में यद्यपि बहुत कम है किन्तु हरिवंश क कालनिर्णय में परम सहायक होने के कारण यह प्रमाण सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। हरिवंश में दीनारक का उल्लेंख अन्तः साक्ष्य प्रमाणों में से एक है। दीनार का प्रयोग हरिवंश में इन्द्र के द्वारा द्वारकावासियों के प्रति भेजे गये उपहार के लिये हुआ है–

"माथुराणां च सर्वेषां भागा दीनारका दश।"[98]

दीनार प्रथम तथा द्वितीय शताब्दियों में भारत मेंप्रचलित होने वाले स्वर्ण के सिक्के हैं। इस आधार पर विद्वानों ने हरिवंश का काल चतुर्थ शताब्दी में निश्चित किया है।[99]

हरिवंश के भविष्य पर्व में परीक्षित तथा व्यास के वार्तालाप के प्रसंग में एक अन्य

प्रमाण मिलता है। व्यास अश्वमेध यज्ञ के लिये उद्यत परीक्षित को रोककर भविष्य में इस यज्ञ के कर्ता का नाम बतलाते है। कश्यपवंशी किसी ब्राम्हण सेनानी को कलिकाल में इस यज्ञ का उद्वारक बतलाया गया है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार राय चौधरी ने इस यज्ञ के प्रवर्तक ब्राम्हण सेनानी को शुंग राजा पुष्यमित्र कहा है।[100] ऐतिहासिक प्रमाण पुष्य–मित्र के अश्वमेद्य यज्ञ को प्रमाणिक सिद्ध करते हैं। पुष्यमित्र का जीवन काल द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व माना जाता है साथ ही हरिवंश के अन्तर्गत परीक्षित तथा व्यास के संवाद में औद्भिज्ज सेनानी को भावी व्यक्ति के रूप में माना गया है। कालिकाल में औद्भिज्ज सेनानी के द्वारा अश्वमेद्य यज्ञ के प्रत्याहरण की ओर संकेत का अभिप्राय सम्भवतः परीक्षित के काल से पुष्यमित्र की दूरी को सूचित करना है। इस प्रमाण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि हरिवंश की रचना द्वितीय शताब्दी से पहले हो चुकी थी।

हरिवंश में स्मृति साहित्य की न्यूनता इस पुराण को स्मृतिकालीन साहित्य के प्रारम्भिक काल का निश्चित करती है। लगभग द्वितीय से तृतीय शताब्दी का काल स्मृति साहित्य का प्रारम्भिक काल है। अतः हरिवंश की सामाजिक पृष्ठभूमि तृतीय शताब्दी के मध्यकाल का चित्र प्रस्तुत करती है। हरिवंश में विदेशी जातियों का वर्णन पुराणों की परम्परा के अनुसार मिलता है। हरिवंश की विदेशी जातियों में यवन, पहलव, दरद तथा तुषारों का उल्लेख है।[101] लेकिन पुराणों में वर्णित विदेशी जातियों में हूण जाति का उल्लेख हरिवंश में नहीं मिलता है। हूणों का भारत पर आक्रमण शक, पहलव तथा तुषारों के बहुत बाद में माना जाता है। हूणों का भारत में प्रथम आक्रमण छठी शताब्दी में हुआ था। हूणों के अर्वाचीन होने के कारण हरिवंश में इनसे अपरिचय स्वाभाविक है। हरिवंश का काल हूणों से पूर्ववर्ती होने के कारण पाँचवी शताब्दी से पूर्व माना जा सकता है।

हरिवंश के अन्तः साक्ष्य प्रमाणों के आधारपर निश्चित की गयी काल की अवधि हरिवंश के कालनिर्णय में नवीन प्रकाश डालती है। अन्तः साक्ष्य प्रमाणों के आधार पर निश्चित किया गया। हरिवंश का काल विद्वानों के द्वारा निश्चित हरिवंश के काल चतुर्थ शताब्दी से लगभग एक शताब्दीपूर्व निर्धारित होता है। अनेक विद्वानों के द्वारा हरिवंश के कालनिर्णय सम्बन्धी मतों की अपेक्षा हरिवंश के अन्तः साक्ष्य प्रमाण अधिक विश्वसनीय हैं। आन्तरिक प्रमाण हरिवंश का

काल तृतीय शताब्दी के लगभग निश्चित करते हैं।

हरिवंश के बहिर्गत–प्रमाण अन्तः साक्ष्य प्रमाणों से कम महत्वपूर्ण नहीं है। हरिवंश के काल का ज्ञान पुराणों, विविध शिलालेखों और प्राचीन ग्रन्थों से होता है। पुराणों के काल ज्ञान के लिये उत्तरकालीन संग्रहग्रन्थ परम सहायक सिद्ध हुये है, संग्रह ग्रन्थों में अनेक ग्रन्थ हरिवंश से परिचित हैं यह संग्रहग्रन्थ हरिवंश के व्यापक प्रचार काल के बहुत काल उपरान्त के हैं। ऐसे ग्रन्थों में सर्वप्रथम गदाधर कृत 'गदाधर पद्वति' का उल्लेख किया जा सकता है। गदाधर ने 'गदाधर पद्वति' नामक ग्रन्थ में हरिवंश का उल्लेख किया है। 'गदाधर पद्धति' के कालसार भाग में द्वादशी व्रत के बाद पारण विधि के लिये हरिवंश के दो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।[102] इसी प्रकार कमलाकर भट्ट ने अपने गन्थ 'निर्णयसिन्धु' में एकादशी तिथि के निरूपण के अक्सर पर हरिवंश से उदाहरण लिये हैं।[103] वैद्यनाथ ने अपने ग्रन्थ 'स्मृतिमुक्ताफल' में हरिवंश से परिचय की सूचना देते हैं।[104] गोविन्दानन्द अपने ग्रन्थ 'दानक्रियाकौमुदी' में हरिवंश से दो बार उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।[105] इसी प्रकार अमृतनाथ झा ने 'कृत्यसार समुच्चय' में तथा गौउपाद ने 'उत्तरभाष्यगीता' में हरिवंश से उदाहरण प्रस्तुत किये है।[106]

बहिःसाक्ष्य प्रमाणों में शिलालेखों का भी महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु इस प्रकार के शिलालेखों की संख्या बहुत कम है। 462 ईस्वी का एक शिलालेखों महाभारत को 'शतसाहस्त्री संहिता' के रूप में स्वीकार करता है।[107] महाभारत के शतसहस्त्र श्लोकों के अन्तर्गत अठारह पर्वों के अतिरिक्त हरिवंश का भी समावेश हो जाता है। इस शिलालेख का काल पाँचवी शताब्दी स्वीकार कर लेने पर कम से कम तृतीय शताब्दी तक महाभारत के साथ हरिवंश के भी वर्तमान रूप के आविर्भाव का परिचय मिलता है।

हरिवंश के विषय में पुराणों के बहिर्गत–प्रमाण स्वतन्त्र विशेषता रखते हैं। अठारह पुराणों में से केवल अग्निपुराण में हरिवंश का स्पष्ट उल्लेख आता है। हरिवंश की गणना यहाँ पर प्राचीन प्रसिद्ध ग्रन्थों की सूची में की गयी हैं। गीता, रामायण, महाभारत तथा आगम ग्रन्थों के साथ हरिवंश को भी प्रसिद्ध ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया गया है। यथा–

"आग्नेये हिपुराणेऽस्मिन् सर्वविद्याः प्रदर्शिता।

सर्वेमत्स्यावताराधा गीता रामायणं त्विह।।

हरिवंशो भारतं च नवसर्गाः प्रदर्शिताः।

आगमो वैष्णवो गीतः पूजा दीक्षा प्रतिष्ठया।।''[108]

अग्नि पुराण के एक पूरे अध्याय में हरिवंश का साररूप से वर्णन हुआ है। अग्निपुराण का यह अध्याय प्रत्येक दृष्टि से वर्तमान हरिवंश से समानता रखता है। कृष्ण चरित्र की जो विशेषतायें हरिवंश में मिलती हैं अग्नि पुराण में उनका अनुसरण किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि अग्निपुराण पूर्वकाल में हरिवंश के वर्तमान रूप से परिचित हो चुका था।

वज्रसूची और अग्नि पुराण के प्रमाण हरिवंश के बहिर्गत प्रमाणों में महत्वपर्ण हैं। वज्रसूची और अग्निपुराण के आधार पर हरिवंश पर्व का काल द्वितीय शताब्दी में निश्चित हो जाता है। हरिवंश का हरिवंशपर्व इस पुराण के अन्य पर्वों से बहुत पूर्ववर्ती है। हरिवंश पर्व की वंशावली की वायुपुराण तथा ब्रम्हापुराण से समानता तथा स्मृति सम्बन्धी सामग्री का अभाव इस पर्व की प्राचीनता को पुष्ट करते हैं। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि वज्र सूची तथा अग्नि पुराण के द्वारा द्वितीय शताब्दी में हरिवंश का कालनिर्णय केवल हरिवंशपर्व के लिये ही समीचीन है इस पुराण के अन्य भागों के लिये नहीं। अतः बहिर्गत प्रमाणों के आधार पर हरिवंश पर्व का काल द्वितीय शताब्दी के लगभग निश्चित होता है।

पुराणों के कालनिर्णय में विद्वानों ने विविध विचार प्रस्तुत किये है। विद्वानों के यह विचार किसी पुराण के काल की सीमा निर्धारित कर देते हैं। अधिकांश पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वान हरिवंश का काल चतुर्थ शताब्दी निश्चित करते हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान आर0सी0हाजरा ने हरिवंश को महाभारत का खिल मानकर उसका काल चतुर्थ शताब्दी निश्चित किया हैं।[109] हाजरा हरिवंश के कृष्णचरित में कृष्ण तथा गोपिकाओं की विलासक्रीड़ा की प्रवृत्ति के आधार पर हरिवंश को विष्णु पुराण का उत्तरकालीन पुराण स्वीकार करते हैं, जबकि हॉपकिन्स ने भी हरिवंश का काल चतुर्थ शताब्दी निश्चित किया है।[110] उन्होने कुछ तर्कों के आधार पर हरिवंश को महाभारत से उत्तरकालीन माना है उनके अनुसार हरिवंश में नाटक का विकसित रूप दिखायी देता है किन्तु महाभारत में नाटक के सम्पूर्ण विकसित रूप का अभाव है। पाश्चात्य विद्वानों में श्री किरफेल ने हरिवंश की प्राचीनता सप्रमाण सिद्ध की है। उनके अनुसार हरिवंश पर्व का वंशवर्णन अन्य सभी पुराणों में मौलिकतम होने के कारण महत्वपूर्ण है।[111] किरफेल द्वारा

प्रस्तुत हरिवंश की वंशावली के मौलिकता विषयक कथनों के आधार पर हरिवंश पर्व का काल द्वितीय शताब्दी के लगभग निश्चित होता है। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध विद्वान फरक्यूहर ने अपने ग्रन्थ में हरिवंश की प्राचीनता को स्वीकार किया है। अठारह महापुराणों में हरिवंश की अनुपस्थिति उनके अनुसार समीचीन नहीं है। पंचलक्षणों तथा पुराणगत अर्वाचीन विषयों के आधार पर हरिवंश को एक सम्पर्ण पुराण बताकर इसको बीसवॉ महापुराण माना है।[112] वे हरिवंश को भागवत सम्प्रदाय का प्रवर्तक पुराण मानते है। हरिवंश में दीनारों का उल्लेख भी कालज्ञान के लिये एक महत्वपूर्ण आधार माना जाता है। दीनारों का भारत में प्रचार काल द्वितीय शताब्दी के लगभग निश्चित किया गया है।[113] अतः इस आधार पर हरिवंश द्वितीय–तृतीय शताब्दी का ग्रन्थ सिद्ध होता है।

इस प्रकार हरिवंश के आन्तरिक तथा बहिर्गत प्रमाण, लेखकों के मत तथा पुराणों के तुलनात्मक अध्ययन से हरिवंश के काल की निश्चित रूपरेखा बन जाती है। हरिवंश के विष्णु पर्व तथा भविष्य पर्व का काल तृतीय शताब्दी के लगभग है। हरिवंश के हरिवंश पर्व का काल विष्णु पर्व तथा भविष्य पर्व से पूर्व कालीन है। अश्वघोष कृत व्रजसूची और हरिवंश पर्व के राजवंशो की प्रामाणिकता के आधार पर हरिवंशपर्व का काल द्वितीय शताब्दी के लगभग निश्चित होता है।

हरिवंश की धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्ता :–

हरिवंश का धार्मिक महत्व सर्वत्र प्रख्यात है। सन्तान के इच्छुक व्यक्तियों के लिये हरिवंश का विधिवत श्रवण का विधान लोक प्रचलित है। शपथ खाने के लिये पुरूषों के हाथ पर हरिवंश की पोथी रखने का प्रचलन नेपाल में उसी प्रकार है जिस प्रकार किसी मुसलमान के हाथ पर कुरान रखने का। श्रीकृष्ण के चरित्र के तुलनात्मक अध्ययन के लिये हरिवंश के विष्णुपर्व का परिशीलन नितान्त आवश्यक है। हरिवंश वैष्णव पुराण है। विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण की भाँति हरिवंश में कृष्ण का विशद चरित्र हरिवंश पर्व और भविष्यपर्व में विष्णु की महिमा का प्राधान्य हरिवंश को वैष्णव पुराण सिद्ध करते है। हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण और भागवत पुराण के अन्तर्गत वैष्णव धर्म का प्राधान्य होते हुये भी वैष्णव भक्ति की अलग–अलग प्रवृत्तियाँ दिखलायी देती हैं। हरिवंश में वैष्णव – धर्म अपने प्रारम्भिक रूप में है जबकि विष्णु पुराण और

भागवत पुराण में यही धर्म अधिक विकसित हो गया है। यद्यपि हरिवंश एक वैष्णव पुराण है किन्तु हरिवंश के अन्तर्गत शैव और वैष्णव मतों को समान घोषित करने वाले अनेक स्थल धार्मिक समन्वय के प्रयास की सूचना देते हैं। उदाहणार्थ :– हरिवंश के भविष्यपर्व के अन्तर्गत कृष्ण की कैलासयात्रा के प्रसंग में कृष्ण के द्वारा शिव की स्तुति का वर्णन है इस स्तुति में कृष्ण, शिव से अपने अपराधों को क्षमा करने की प्रार्थना करते है।[114] इसके बाद शिव कृष्ण की स्तुति करते हैं इस स्तुति में शिव विष्णु को सांख्य, योग और ब्रम्हमय बताने के साथ ही उनकी विविध संज्ञाओं की व्युत्पत्ति करते हैं।115 स्तुति के अन्त में शिव के द्वारा विष्णु और शिव में अभेद की स्थापना हुई है। शिव के अतिरिक्त हरिवंश का देवी विषयक वृतान्त शक्ति–प्रभाव की ओर संकेत करता है। देवी के दो विभिन्न स्वरूपों का समन्वय हरिवंश में सर्वव्यापिनी मातृशक्ति के रूप में हुआ है। शक्ति का पहला स्वरूप कृष्ण की भगिनी एकानंशा और योगमाया में मिलता है।[116] और दूसरा रूप शिव की सहचरी भवानी में।[117] प्रद्युम्न और अनिरूद्ध के द्वारा आर्या के स्तवन तथा कंस के एकानंशा को मारने के प्रयास में दुर्गा और योगमाया का मिश्रित रूप दिखलाई देता है। विष्णु, शिव, दुर्गा के अतिरिक्त हरिवंश में अवैदिक बौद्ध धर्म का उल्लेख महत्वपूर्ण है। हरिवंश में बौद्ध धर्म के प्रति घृणा के भाव की अभिव्यक्ति हुयी है। इस प्रकार हम कह सकते है कि हरिवंश पुराण की धार्मिक महत्ता बहुत अधिक है। इस सन्दर्भ में स्वयं हरिवंश पुराण का कथन है कि हरिवंश पुराण सुन लेने पर शरीर वाणी और मनके द्वारा उपार्जित सारे पापों का उसी प्रकार नाश हो जाता है जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार का। साथ ही अठारह पुराणों के श्रवण से जो फल प्राप्त होता है उसे विष्णुभक्त पुरूष केवल हरिवंश सुनकर प्राप्त कर लेता है इसमें संशय नहीं है–

"अष्टादशपुराणांनां श्रवणाद् यत् फलं भवेत्।
तत् फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः।।"[118]

जहाँ एक ओर हरिवंश की धार्मिक महत्ता इतनी अधिक है वहीं दूसरी ओर उसकी ऐतिहासिक महत्ता भी अत्यधिक है। हरिवंश के प्राचीन राजवंशों की विविध पुराणों के इन्ही राजवंशों से तुलना करने पर हरिवंश के राजवंशो की प्रामाणिकता का परिचय मिलता है। काशी–वंश हरिवंश का महत्वपूर्ण राजवंश है इस राजवंश में प्रतर्दन से निकली हुयी राजाओं की

दो शाखाओं का स्पष्ट वर्णन है।[119] जबकि इसी राजवंश को वायुपुराण, विष्णुपुराण, भागवतपुराण और मत्स्य पुराण अस्पष्ट रूप में प्रस्तुत करते है।[120] हरिवंश का दूसरा महत्वपूर्ण राजवंश परीक्षित के बाद अजपार्श्व नामक राजा तक है।[121] जबकि यह राजवंश वायु पुराण, विष्णुपुराण, भागवतपुराण और मत्स्य पुराण में बिलकुल भिन्न और विस्तृत रूप में मिलता है।[122] यद्यपि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि हरिवंश का पाठ प्रामाणिक है अथवा अन्य पुराणों का। किन्तु इन सभी पुराणों से भिन्न हरिवंश के वंशों का सुव्यवस्थित और स्पष्ट रूप हरिवंश पुराण की वंशावलियों को विश्वसनीय सूचित करता है अन्य पुराणों की भाँति हरिवंश पुराण के विविध विषयों में ऐतिहासिक तत्व महत्वपूर्ण हैं। पुराण पंचलक्षण के अन्तर्गत वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित हरिवंश पुराण के ऐतिहासिक अध्ययन के लिये प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करते हैं। इस आधार पर हम कह सकते है कि हरिवंश पुराण की ऐतिहासिक महत्ता बहुत अधिक है।

हरिवंश का सांस्कृतिक पक्ष :-

हरिवंश पुराण की धार्मिक तथा ऐतिहासिक महत्ता के साथ–2 उसका सांस्कृतिक पक्ष भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। हरिवंश से हमें तत्कालीन समाज जैसे वर्ण, आश्रम, संस्कार, वेशभूषा, आभूषण, खानपान, रहन सहन, रीति रिवाज, अंध विश्वास, शिक्षा स्त्रियों की स्थिति आदि के बारे मे विस्तृत रूप में जानकारी प्राप्त होती है। सामाजिक पक्ष के अतिरिक्त हरिवंश पुराण में ललित कलाओं पर विचार प्रकट किये गये हैं। हरिवंश के महत्वपूर्ण कुछ कला सम्बन्धी तत्व पुराणों और ग्रन्थों में अनुपस्थित हैं। कृष्ण के द्वारा आविष्कृत 'छालिक्यगेय' और भद्र नामक नट की सहायता से प्रस्तुत दो नाटकों का प्रसंग हरिवंश में महत्वपूर्ण है। छालिक्य विविध वाघों के साथ गाया जाने वाला हावभाव पूर्ण संगीत है।[123] यह किसी भी पुराण में नहीं मिलता। भद्र नट का प्रसंग भारतीय नाटक के जन्म और विकास पर प्रकाश डालता है। कृष्ण के यज्ञ में भद्र नट के द्वारा प्रस्तुत संगीतपूर्ण अभिनय पाश्चातय विद्वानों के द्वारा वर्णित मुग्धाभिनय का सूचक है। यही मुग्धाभिनय प्रघुम्न, साम्ब, गद और भद्र नट के द्वारा अभिनीत नाटक 'रामायण' और 'कौबेर रम्भाभिसार' में अपनी परिष्कृत अवस्था में मिलता है।[124] अतः मुगधाभिनय से क्रमशः नाटक का पूर्ण विकास हरिवंश में दिखलाई देता है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है, कि हरिवंश का यह नाट्यतत्व महाभारत तथा पुराणों में ही अनुपस्थित नहीं है।

वरन् नाट्यशास्त्र तक में इस नाट्यतत्व से सम्बद्ध कोई भी सामग्री नहीं मिलती। हरिवंश से नृत्य, संगीत तथा नाटक सम्बन्धी सामग्री के अतिरिक्त वास्तुकला के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इन विषयों के अतिरक्त हरिवंश में पुराणों के सांख्य तथा योगसम्बन्धी विचार विस्तृत रूप में मिलते है। हरिवंश में पद्यपुराण की भॉति विष्णु के पौष्करावतार को महत्व मिलता है। पौष्करावतार से सम्बन्धित एकार्णव का प्रसंग भी हरिवंश में मिलता है। एकार्णव में विष्णु के द्वारा मधुकैट्भ के वध का वर्णन है।[125] हरिवंश के 'सर्ग' तथा 'प्रतिसर्ग' में भारत के सुव्यवस्थित दर्शन से पूर्वकालीन अवस्था मिलती है। हरिवंश में सांख्य विषयक विचार उत्तरकालीन 'सांख्यकारिका' से पहले के हैं जबकि विष्णुपुराण के सांख्य–विवेचन के प्रसंग में 'बाधा' शब्द को 'सांख्यकारिका' की अट्ठाईस बाधाओं में एक मानने के कारण 'सांख्यकारिका' से प्रभावित स्वीकार करना पड़ता है। हरिवंश के दर्शन सम्बन्धी विचार विष्णु पुराण, भागवत पुराण, पद्य पुराण, तथा कुर्मपुराण के दर्शन सम्बन्धी विचारो से प्रारम्भिक हैं। इस प्रकार हम देखते है कि हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक पक्ष भी बहुत महत्वपूर्ण है।

हरिवंश में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री :-

हरिवंश पुराण के विविध विषयों में इतिहास–तत्व महत्वपूर्ण है। पुराण पंचलक्षण के अन्तर्गत 'वंश' 'मन्वन्तर' तथा 'वंशानुचरित' पुराणों के ऐतिहासिक अध्ययन के लिये प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करते हैं। वंश के अन्तर्गत प्राचीन राजाओं की विस्तृत वंशावलियॉ प्राप्त होती हैं। मन्वन्तर में युगो के काल का निर्धारण किया गया है। वंशानुचरित मे किसी राजा के जीवन से सम्बद्ध वृतान्तों का वर्णन प्राप्त होता है। वंशवर्णन के प्रसंग में किसी महान् राजा के चरित्र का गान गाथाओं के द्वारा किया गया है। हरिवंश पुराण की ये गाथायें अभिलेखों की प्रशस्तियों की भॉति राजाओं के व्यक्तित्व और चरित्र का सूक्ष्म परिचय देती है। हरिवंश पुराण के वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित तथा गाथाओं के द्वारा उसकी ऐतिहासिक प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है।

पुराणों के गम्भीर अध्ययन के द्वारा प्रामाणिक वंशवृत्तों की वास्तविकता अनेक विद्वानों के द्वारा स्वीकृत हो चुकी है। इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध विद्वान वी0ए0स्मिथ का कथन है

126__

"Moetern Europem writers have been included to disparage unduly the

authority of the Puranic lists, but closer study finds in them much more genuine and valuable historical tradition. For in stance the Visnu Puran gives the out line of the history of the Maurya dynasty with a near approach to accuracy and the Radcliffe manuscript of the Matsya Puran is evually trustworthy for the Andhra hitory."

पुराणों के.द्वारा भारतीय इतिहास के आन्ध्र, वाकाटक, भारशिव और गुप्तवंशो का इतिहास स्पष्ट हो जाता है। अतः पुराणों में इतिहास के अध्ययन के लिये बहुमूल्य सामग्री है। राजवशों की अधिकता के कारण हरिवंश में वंशावलियों का अध्ययन महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वायु पुराण, ब्रम्हाण्ड पुराण ब्रम्हापुराण तथा कुछ अंश तक मत्स्य पुराण से तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा इन सभी पुराणों में हरिवंश के राजवंशों का स्थान निर्धारित किया जा सकता है। हरिवंश पुराण में राजवंशों के वर्णन के साथ वंशावलियों में उपलब्ध कुछ ऐतिहासिक विशेषताओं की ओर भी संकेत किया गया है। हरिवंश में राजवंशों का वर्णन अन्य पुराणों के वंशवर्णन से भिन्न है। हरिवंश की वंशावली जनमेजय के बाद समाप्त हो जाती है। जबकि वायु पुराण, विष्णु पुराण तथा मत्स्य पुराण की वंशावलियॉ जनमेजय के बाद कलियुग के राजाओं का वंशक्रम भी प्रस्तुत करती है। हरिवंश के वंशक्रम में राजाओं के राज्यकाल का उल्लेख नहीं है। जबकि वायु पुराण, विष्णु पुराण तथा मत्स्य पुराण में राजाओं के राज्यकाल का स्पष्ट उल्लेख है।[127] हरिवंश के वंशवर्णन की ये विशेषताये इस पुराण की ऐतिहासिक सामग्री में नवीन तत्वों का समावेश करती हैं। हरिवंश में इक्ष्वाकु वंश, अजमीढ़ वंश, अननेस वंश, काशी राजवंश, पूरूवंश—कक्षेयु वंश—अंगवंश, मगध राजवंश, तुर्वसुवंश—पूरूवंश, यदुवंश, वृष्णिवंश, सात्वत वंश, शुंगवंश आदि वंशों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण ऐतिहसिक सामग्री प्राप्त होती है।

यह उल्लेखनीय है, कि पुराणों के अन्तर्गत क्षत्रिय वंश परम्परा के साथ ही ब्राम्हण वंश—परम्परायें मिलती हैं। हरिवंश के अन्तर्गत अनेक ब्राम्हण वंश श्रंखलाबद्ध रूप में कुछ वंशानुगत घटनाओं पर प्रकाश डालते हैं। अन्य ब्राम्हण वश ब्रम्ह क्षत्रों के परस्पर सम्बन्ध की ओर संकेत करते है। जबकि इनसे भिन्न ऋषिवंश किन्ही राजवंशों से सुदीर्घकाल तक सम्बन्ध रहने के कारण क्षत्रियवंश—परम्परा के अन्तरंग भाग हो गये है। हरिवंश में वसिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, भार्गव, आदि ब्राम्हण तथा ऋषियों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है।

हरिवंश में प्राप्त अध्ययन-विषयीभूत विषयवस्तु का ऐतिहासिक दृष्टि से पर्यालोचन :-

यद्यपि हरिवंश महाभारत के खिल के रूप में सर्वत्र विख्यात है, लेकिन यदि हम उसका गहन विवेचन करें तो उसमें पुराणों के लक्षण भी दिखाई देते है। इस आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाभारत कोखिल होने पर भी हरिवंश का विकास एक स्वतन्त्र पुराण के रूप में हुआ है। पुराण प्राचीन भारत के सामाजिक अध्ययन के लिये प्रामाणिक स्त्रोत हैं इनकी इस विशेषता का परिचय पुराण लक्षण से मिल जाता हैं। पुराणों के पंचलक्षण सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित सामाजिक जीवन से अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है। यही बात हरिवंश पुराण के विषय में भी लागू होती है। हरिवंश पुराण में पंचलक्षणों के अन्तर्गत विविध वृतान्त–आख्यान, उपाख्यान और गाथाओं में समाज की विभिन्न अवस्थाओं के दर्शन होते है। हरिवंश पुराण के इन विविध वृतान्तों से हमें वर्ण, आश्रम, संस्कार, वेशभूषा, आभूषण, खान–पान, रहन–सहन, रीति–रिवाज, अंध विश्वास, शिक्षा, एंव स्त्रियों की स्थिति आदि विभिन्न सामाजिक पहलुओं के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

भारतीय धर्म के संग्रह ग्रन्थ होने के कारण पुराण भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। हरिवंश पुराण में हमें शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन तथा बौद्ध आदि अनेकों धार्मिक विचार मिलते हैं। हरिवंश पुराण के अन्तर्गत धार्मिक प्रवृत्तियों का अध्ययन भारतीय धर्म और उस धर्म से समाज के सम्बन्ध को दिखाने में सहायक प्रतीत होता है। इस दृष्टि से भी हरिवंश पुराण में वर्णित विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों का सांगोपॉग अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है।

हरिवंश पुराण के विविध विषयों में ऐतिहासिक तत्व बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। पुराण पंचलक्षण के अन्तर्गत वंश मन्वन्तर तथा वंशानुचरित हरिवंश पुराण के ऐतिहासिक अध्ययन के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते है हरिवंश पुराण में वंश के अन्तर्गत प्राचीन राजाओं की विस्तृत वंशावलियॉ है। मन्वन्तर में युगों के काल का निर्धारण किया गया है तथा वंशानुचरित के अन्तर्गत विभिन्न राजाओं के जीवन से सम्बद्ध वृतान्तों का वर्णन किया गया है। हरिवंश पुराण में वंशवर्णन के प्रसंग में राजाओं के चरित्र का गान किसी–किसी स्थान पर गाथाओं के द्वारा किया गया है। हरिवंश पुराण की ये गाथायें अभिलेखों की प्रशस्तियों की

भाँति राजाओं के व्यक्तित्व और चरित्र का सूक्ष्म परिचय देती है। हरिवंश पुराण के वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित तथा गाथाओं के द्वारा उसकी ऐतिहासिक प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है। हरिवंश पुराण में इक्ष्वाकु वंश, अजमीढ़ वंश, काशी का राजवंश, मगध राजवंश, पुरूवंश , यदु वंश आदि वंशो का विस्तृत एवं प्रामाणिक इतिहास प्राप्त होता है। इन ऐतिहासिक तत्वों के साथ ही साथ विभिन्न सांस्कृतिक परम्परायें भी हमें हरिवंश पुराण से प्राप्त होती है।

हरिवंश पुराण में हमें ललित कलाओं के साक्ष्य कृष्ण चरित्र में मिलते है। हरिवंश–कालीन संस्कृति के परिणामस्वरूप कृष्णचरित्र के अन्तर्गत कुछ मौलिक प्रसंग ध्यान देने योग्य हैं। कृष्ण कथा में रास का प्रसंग इनमें प्रमुख है। यद्यपि रास सभी पुराणों के कृष्ण चरित्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है। हरिवंश में भी रास एक महत्वपूर्ण विषय है। हरिवंश में रास के लिये 'हल्लीसक' शब्द का प्रयोग हुआ है। रास के लिये 'हल्लीसक' शब्द का प्रयोग हरिवंश के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुराण में नहीं हुआ है। यह नृत्य दो–दो गोपिकाओं के द्वारा मण्डल बनाकर कृष्णचरित्र के गान के साथ होता है।[128] कृष्ण गोपिकाओं के मण्डल के बीच में शोभित होते हैं। हरिवंश का हल्लीसक वैष्णव पुराणों के रास का प्रारम्भिक रूप प्रतीत होता है।

इसी प्रकार हरिवंश के कृष्ण चरित्र में छालिक्य गान्धर्व नामक वाद्यमिश्रित संगीत एक महत्वपूर्ण प्रसंग है। जलक्रीड़ा के बाद कृष्ण, सत्यभामा, नारद और अर्जुन के साथ अप्सराओं के सम्मिलित वाद्य और संगीत का वर्णन।[129] यह वाद्यमिश्रित संगीत अन्य सभी वैष्णव पुराणों के कृष्ण चरित्र में अनुपस्थित है। इसी प्रकार हरिवंश में कृष्ण के अश्वमेध यज्ञ के प्रसंग में 'नट' की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ 'भद्र' नामक नट की निपुणता से प्रभावित ऋषि उसे कोई वर माँगने की अनुमति देते है। भद्र नट समस्त पृथ्वी में अप्रतिहत रूप से विचरण करने तथा अवध्य होने का वर मॉगता है।[130] ऋषियों के वरदान से निर्भय इस नट को समस्त पृथ्वी में भ्रमण करते हुये का गया है। हरिवंश में वर्णित नट की उत्पत्ति का यह प्रसंग भारतीय नाट्यकला के उद्गम पर प्रकाश डालता है।

हरिवंश पुराण में हास्य–विनोदपूर्ण अभिनय का उत्कृष्ट उदाहरण बाणासुर के आख्यान में मिलता है। यहाँ शिव–पार्वती, शिव के गण, अप्सराओं तथा उषा को क्रीड़ाओं में

तत्पर चित्रित किया गया है। चित्र लेखा नामक अप्सरा पार्वती का वेश धारण कर शिव को मनाने का प्रहसन करती है। चित्रलेखा का अभिनय पार्वती तथा सभी अप्सराओं के लिये हास्य का परम कारण बन जाता है। बाणासुर के वृतान्त में यह प्रहसन तथा भद्र नट का नाट्य अभिनय मिश्रित नृत्य मुग्धाभिनय का एक रूप जान पड़ते है।

हरिवंश में वास्तुकला से सम्बन्धित साक्ष्य भी मिलते हैं। इस कला में मानव के दैनिक क्रिया कलापों तथा विचारधाराओं का प्रतिरूप दिखलाई देता है। हरिवंश पुराण में वर्णित गृह निर्माण कला में तत्कालीन समाज की समृद्धि तथा बौद्धिक विकास का परिचय मिलता है। सभी पुराण अट्टालिकाओं तथा हर्म्यो के उच्च कलात्मक स्वरूप का परिचय देते है। हरिवंश के अन्तर्गत 'द्वारवती' के निर्माण का प्रयास भारतीय वास्तुकला के उत्कृष्ट स्वरूप का परिचायक है। द्वारवती में नगर का निर्माण रोहिणी नक्षत्र में शुभ दिन होता है।[131] शुभ मुहूर्त के निश्चित हो जाने पर शिल्पी तथा सूत्रधारी स्थपतियों को आमन्त्रित किया जाता है। यहाँ पर शिल्पियों के द्वारा गृह–निर्माण के प्रारम्भ में ब्रम्हा, अग्नि, इन्द्र तथा दृषदोलूखल के लिये स्थानों का विधान है। इन देवताओं के अतिरिक्त शद्धक्ष, ऐन्द्र, भल्लाट तथा पुष्पदन्त के लिये चार द्वारों की स्थापना का उल्लेख है।[132] इससे वास्तुशास्त्र के विकास तथा तत्सम्बन्धि देवताओं का विवरण प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त हरिवंश के अनेक स्थल विश्रृंखलित रूप में वास्तुकला सम्बन्धी सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

हरिवंश पुराण में दार्शनिक विचारधारा दर्शनग्रन्थों से अलग अपना अस्तित्व बनाये रखने के कारण एक स्वतन्त्र स्थान रखती है। हरिवंश पुराण के भविष्य पर्व के अन्तर्गत सात से बत्तीसवें अध्याय तक आदि सृष्टि का और प्रकृति–पुरूषात्मक विष्णु के स्वरूप का चिन्तन है। इस स्थल में सांख्य और योग के विषयों पर अलग–2 विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

इस प्रकार समग्र रूप में हरिवंश पुराण में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलती है। ऐतिहासिक एंव सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से हरिवंश एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. महाभारत, आदि पर्व।

2. नारदीय पुराण, 2.24.17.

3. ऋग्वेद, 3.54.9:3.58.6:10.130.6.

4. वही, 9.99.4

5. अथर्ववेद, 11.7.4

6. उपाध्याय, बलदेव, पुराण–विमर्श, तृतीय संस्करण, वाराणसी, 1987, पृष्ठ, 10.

7. अथर्ववेद, 11.8.7.

8. शतपथ ब्राम्हण, 14.3.3.13.

9. बृहदारण्यक उपनिषद्, 2.4.11.

10. छान्दोग्य उपनिषद्, 7.1.2.

11. मत्स्यपुराण, 53.4–7.

12. गौतम धर्मसूत्र, 11.19.

13. छान्दोग्य उपनिषद, 7.1.2.

14. अथर्ववेद, 11.7.24.

15. तिलक, लोकमान्य बाल गंगाधर, गीतारहस्य, पृष्ठ 566.

16. उपाध्याय, बलदेव, पुराण विमर्श, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 537.

17. वही, पृष्ठ 539.

18. द्रष्टव्य–इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग 7, कलकत्ता, 1931, पृष्ठ 370–71 में 'दी एज आव दी विष्णुपुराण' शीर्षक टिप्पणी.

19. द्रष्टव्य–उपाध्याय, बलदेव, भागवत सम्प्रदाय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ 151–53.

20. उपाध्याय, बलदेव, पुराण विमर्श, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 550.

21. द्रष्टव्य–मिराशी का लेख " A Lower limit for the date of the Devi-

mahatmya Purana Val 1, No.4, P.P.181-86."

22. उपाध्याय, बलदेव, पुराण विमर्श, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 551.

23. वही, पृष्ठ 552.

24. वही, पृष्ठ 553.

25. वही, पृष्ठ 556.

26. वही, पृष्ठ 558.

27. वही, पृष्ठ 559.

28. वही, पृष्ठ 560.

29. वही, पृष्ठ 562.

30. वही, पृष्ठ 563.

31. वही, पृष्ठ 566.

32. वही, पृष्ठ 567.

33. द्रष्टव्य–इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, कलकत्ता जिल्द 6, 1930,पृष्ठ 553–60.

34. Roy, S.N. Date of the Brahmanda Purana (Purana, Vol No.2, July 1963) P.P. 305-19.

35. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, दशम संस्करण, वाराणसी, 1978, पृष्ठ 83.

36. वहीं.

37. सूर्यकान्त, संस्कृत वाङ्.ग्मय का इतिहास, पृष्ठ135.

38. फरक्यूहर, जे0एन0,एन आउटलाइन आफ द रेलिजियस लिटरेचर आफ इंडिया, आक्सफोर्ड 1920, पृष्ठ 136.

39. विन्टर नित्स, एम0, हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर भाग–I, कलकत्ता, 1937, पृष्ठ 454.

40. हापकिन्स, एफ0डब्लू, द ग्रेट एपिक आफ इंडिया, न्यू हावेल, 1920, पृष्ठ 387.

41. विन्टर नित्स, एम0 पूर्वोद्धत, पृष्ठ 443.

42. यही लक्षण किंचित् पाठभेद से या ऐक्सरूपेण निम्नपुराणों में प्राप्त होता है–विष्णु

पुराण, 3.624:मार्कण्डेय पुराण, 134.13:अग्नि पुराण, 1.14:भविष्य पुराण, 2.5: ब्रम्हवैवर्त, 133.6: वाराह पुराण 2.4:स्कन्द पुराण–प्रभासखण्ड, 2.84, कूर्मपुराण–पूर्वार्ध, 1.12:मत्स्य पुराण, 53.64: गरूड़ पुराण–आचार काण्ड, 2.28:ब्रम्हाण्ड पुराण–प्रक्रियापाद, 1.38:. शिव पुराण–वायुवीयसंहिता, 1.41:

43. भागवत पुराण, 12.7.11.
44. विष्णु पुराण, 1.2.25.
45. भागवत पुराण, 12.7.17.
46. वही, 12.7.16.
47. वही, 12.7.15.
48. वही, 12.7.16.
49. वही, 2.10.1–7:12.7.8.
50. वही, 12.7.9.
51. वही, 12.7.13.
52. वही, 12.7.18.
53. वही, 2.10.1.
54. हरिवंश पुराण, 1.1:3.
55. शिव पुराण, वायवीय, 1.12.18.
56. ब्रम्ह पुराण, 231.1–233.75:विष्णु पुराण, 6.3.1–7,10.4 वायुपुराण, 100.132–102.135:भागवत पुराण, 12.4:मार्कण्डेय पुराण, 46.1–44:कूर्मपुराण, 2.45.4–46.65: गरुड़ पुराण 1,215, 4–217, 17: ब्राह्मण्ड पुराण, 3.1.128–3, 113:, हरिवंश पुरण, भविष्यपर्व, 9, 2–4.
57. स्मिथ, बी0ए0, दि0 अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया आक्सफोर्ड, पृष्ठ 1024: पटेल, डी0आर0 कल्चर हिस्ट्री फ्रास दि वायुपुरण पृष्ठ, 2.
58. सूर्य सिद्धान्त 1.18–19.
59. विष्णु पुराण 3.1: 3.2 भागवत पुराण, 8.13.

60. विण्टरब्रित्स, एम0 पूर्वोद्धत, पृष्ठ 454.

61. पाणिनिसूत्र,4.3.23.

62. यास्क निरुक्त, 3.19.

63. वायु पुराण, 1.203.

64. पदमपुराण, 5.2.53.

65. ब्रह्माण्ड पुराण, 1.1.173.

66. पार्जीटर एफ0ई0 दि डाइनेस्टीज आफ दि कलिएज (दि पुराण टेक्ट आफ), आक्सफोर्ड, 1913, पृष्ठ 19—20.

67. मत्स्य पुराण, 72.6.

68. महाभारत, 1.2.69 सुकथड़ंकर संस्कारण.

69. वहीं. 1.2 अधिकपाठ.

70. हरिवंश पुराण, 1.1 2—4.

71. वहीं, 1.1. 5—7.

72. वहीं, 1.1. 12—16.

73. विन्टरनित्स, एम0, पूर्वोद्वत, पृष्ठ 454.

74. फरक्यूहर, जे0एन0, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 136.

75. अग्नि पुराण, 383, 52—53.

76. गरुड़ पुराण, 144.

77. हरिवंश, (चित्रशाला संस्कारण) प्रास्तविक, पृष्ठ 2—3.

78. महाभारत, 16. 2—15.

79. हरिवंश पुराण, 2. 102. 32.

80. महाभारत, 3.12. 34—35.

81. हरिवंश पुराण, 1,30,38: महाभारत. 1.60. 51—53:भागवत पुराण 9.19.13—17: मत्स्य पुराण. 34.10:, विष्णु पुराण, 4.10.23.

82. विण्टरनित्स, एम0, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 469.

83. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, पृष्ठ 425–26.

84. चौधरी, टी0 हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पंचम संस्कारण, कलकत्ता, पृष्ठ 150.

85. हाजरा, आर0सी0, पुराणिक रिकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्ट्म्स, ढाका, 1940 पृष्ठ 3.

86. मत्स्य पुराण, अध्याय 53.

87. पद्य पुराण, उत्तर खण्ड, 163, 81–84.

88. फरक्यूहर, जे0एन0, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 139.

89. हरिवंश पुराण, विष्णुपर्व, अध्याय 150.

90. वहीं, अध्याय 184.

91. महाभारत, 1,2, 256–57 अधिक पाठ (पी0पी0एस0 शास्त्री संस्करण)

92. हरिवंश पुराण, 1,1,2–7: 5,12,–17: 3: 132. 90–94.

93. विष्णु पुराण, 3:3:7–18: देवी. भागवत, 1.3.24–35.

94. महाभारत, आदिपर्व, 66.32.

95. उपाध्याय, बलदेव, पुराण विमर्श, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 66.

96. वायु पुराण, 1.33.34.

97. हरिवंश पुराण, 1,13–27.

98. वहीं, 2.55.50.

99. मजुमदार, आर0सी0, जर्नल, आफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन, 1907. पृष्ठ 409 कीथ, ए0बी0 जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1907, पृष्ठ 681:, हाजरा, आर0सी0, पूर्वोद्धत पृष्ठ 23: फरक्यूहर, जे0एन0 पूर्वोद्धत, पृष्ठ 143.

100. राय चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री आफ ऐंशियन्ट इण्डिया, पृष्ठ 363–66.

101. हरिवंश पुराण, 1,13,30, 34:, 1,14 3–4 12, 16–18.

102. गदाधर, राजगुरु, गदाधरपद्वति, पृष्ठ 105–51.

103. भट्ट, कमलाकार, निर्णयसिन्धु, जिल्द1, पृष्ठ 139.

104. बैद्यनाथ, स्मृति मुक्ताफल, पृष्ठ 832.

105. गोविन्दानन्द, दानक्रिया कौमुदी, पृष्ठ 139 तथा 169.

106. झा, अमृतनाथ, कृत्यसारसमुच्चय, पृष्ठ 50–51 गौउपाद, उत्तरभाष्यगीता, पृष्ठ 68।

107. जर्नल आफ रोयल एसियाटिक सोसाइटी, लन्दन, 1908, पृष्ठ 529.

108. अग्निपुराण 353, 52–53.

109. हाजरा, आर0सी0, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 23.

110. हापकिन्स, एफ0डब्लू, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 55.

111. जर्नल आफ वेंकटेश्वर ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, तिरुपतिः भाग–8, नं0 1, पृष्ठ 29.

112. फरक्यूहर, जे0एन0 पूर्वोद्वत, पृष्ठ 139.

113. सीवेल, जर्नल आफ रायल एसियाटिक सोसाइटी, लन्दन, 1904, पृष्ठ 591–617.

114. हरिवंश पुराण, 3.87.13–38.

115. वहीं, 3.88. 18–59.

116. वहीं, 2,3 1–32 2,4 36–45.

117. वहीं, 2, 107. 6–13:, 2.120. 6–33.

118. वहीं, 3, 135,3.

119. वहीं, 1,29, 29–34, 72–82.

120. वायु पुराण, उत्तर. 30. 64–75: ब्रह्माण्ड पुराण, उपो0: 67:67–79: विष्णु पुराण, 4.8. 12–21: भागवत पुराण, 9.17. 2–9.

121. हरिवंश पुराण, 3.1. 3–16.

122. ब्रह्म पुराण, 13.123–128: वायु पुराण, अनु, 37. 248–252: मत्स्य पुराण, 50.63–80: विष्णु पुराण, 4:21:1–8.

123. हरिवंश पुराण, 2,89, 66–83: 2. 93. 24.

124. वहीं,2.93.

125. वहीं,3.27.

126. स्मिथ, बी0ए0, द्वि अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, चतुर्थ संस्कारण आक्सफोर्ड, 1924 पृष्ठ 10.

127. वायु पुराण, उ0 अनु0 37, 255—56, 37.291—418: विष्णु पुराण, 4.21—24: मत्स्य पुराण, 50, 69—70.

128. हरिवंश पुराण, 2,20, 25.

129. वहीं, 2, 89, 66—83.

130. वहीं, 2,91, 26—27, 29—32, 26.

131. वहीं,2,58,3.

132. वहीं, 2, 58, 16—18.

द्वितीय अध्याय

- ❖ पुराण–लक्षण की दृष्टि से हरिवंश
- ❖ अन्य पुराणों के साथ हरिवंश का साम्य एवं वैषम्य

1. प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से
2. धर्म निरूपण की दृष्टि से
3. संस्कृति की दृष्टि से
4. ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से
5. पौराणिक प्रयोजनों की दृष्टि से हरिवंश पुराण तथा अन्य पुराण

हरिवंश पुराण एवं अन्य पुराणों की तुलनात्मक समीक्षा

पुराणों की संख्या 18 निर्विवाद रूप में सभी विद्वानों द्वारा स्वीकार की गई है। किन्तु इन अठारह पुराणों में भी एकरूपता नहीं मिलती संस्कृत साहित्य में 18 की संख्या बड़ी पवित्र व्यापक और गौरवशाली मानी जाती है। महाभारत के पर्वों की संख्या 18 है। भगवत् गीता के अध्यायों की संख्या भी 18 है तथा श्रीमद् भागवत के श्लोकों की संख्या भी 18 हजार है। इस प्रकार सभी महत्वपूर्व ग्रन्थों का सम्बन्ध 18 की संख्या से रहा है। चूंकि पुराण भी भारतीय जनमानस के परम् पवित्र ग्रन्थ है अतः पुराणों की संख्या भी सर्व सम्मति से 18 ही मानी गयी है। ये अठारह पुराण निम्नलिखित है– ब्रह्म पुराण, पदम् पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण लिंग पुराण, वाराह पुराण, स्कन्द पुराण, वामन पुराण, कूर्मपुराण मत्स्य पुराण, गरूड़पुराण तथा ब्रह्मण्ड पुराण।

इस संदर्भ यह उल्लेखनीय है कि ऊपर जिस क्रम में 18 पुराणों के नामों को गिनाया गया है। उस क्रम का भी रहस्य है। पुराण विद् विद्वानों का मत है, कि पुराणों का क्रम किसी ऐतिहासिक कारण का फल न होकर वर्ण्य विषय को लक्ष्य मे रखकर ही सम्पन्न किया गया है। पुराण का प्रधान लक्ष्य सर्ग था सृष्टि है– किस प्रकार मूलतत्व से सृष्टि का निर्माण हुआ, उसका विकास हुआ, अनेक वंशों का उदय हुआ तथा उनमें अनेक गौरवशाली व्यक्तियों ने अपने महत्व सम्पन्न चरित्र का प्रदर्शन किया तथा अन्त में सृष्टि के मूल तत्व में विलीन होने से प्रलय हो गई। सृष्टि की यही प्रवाहमान धारा है। विश्व का आदि है सर्ग और पर्यवसान है प्रतिसर्ग। इन दोनों छोरों के बीच में मन्वन्तर, वंश तथा वंशानुचरित की धारा प्रवाहित होती है। पुराणों के पंचलक्षण का यही रहस्य है। इस प्रकार सृष्टि तत्व का प्रतिपादन ही पुराण का मुख्य तात्पर्य या अभिप्राय भली–भाँति माना जा सकता है।

जहाँ तक हरिवंश का प्रश्न है तो उसके आन्तरिक एवं बाह्य साक्ष्य दो प्रकार

के मतों का प्रतिपादन करते हैं। हरिवंश के तथा महाभारत के आन्तरिक प्रमाण हरिवंश को महाभारत का खिल सूचित करते हैं। किन्तु महाभारत का खिल होते हुये भी हरिवंश स्वरूपतः एक पुराण है जो स्वतंत्र रूप में विकसित हुआ है। पुराणों के सभी लक्षण इसमें विद्यमान हैं इसके साथ–साथ इसकी अपनी विशेषतायें भी हैं।

पुराण लक्षण की दृष्टि से हरिवंश तथा अन्य पुराण-

पुराणों के पांच लक्षण माने गये हैं ये लक्षण हैं सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित । सर्ग से तात्पर्य जगत् की तथा उसके नाना पदार्थों की उत्पत्ति अथवा सृष्टि से है। प्रतिसर्ग से तात्पर्य प्रलय अर्थात् सृष्टि के विनाश से हैं। ब्रह्म जी के द्वारा जितने राजाओं की सृष्टि हुई उनकी भूत भविष्य तथा वर्तमान कालीन संतान परम्परा को 'वंश' नाम से पुकारते हैं। पुराण के अनुसार सृष्टि के विभिन्न काल–मान का घोतक शब्द 'मन्वन्तर' है। तथा वंशों में उत्पन्न हुये वंशधरों का तथा मूलपुरूष राजाओं का विशिष्ट विवरण जिसमें वर्णित होता है वह वंशानुचरित कहलाता है।

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पुराण पंचलक्षणों का कड़ाई से पालन सभी प्रारम्भिक पुराणों में किया गया है जबकि कुछ अर्वाचीन पुराणों में पुराण लक्षण का पालन नहीं किया गया हैं ऐसे पुराणों में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, ब्रहन्नारदीय पुराण तथा ब्रहद्धर्म पुराण के नाम उल्लेखनीय है। पुराण पंच लक्षण का पालन करने वाले पुराणों में हरिवंश, ब्रह्मपुराण, वायुपुराण, ब्रह्मण्ड पुराण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण तथा भागवत पुराण प्रमुख है।

हरिवंश में पुराणों के पांचों लक्षण पूर्णता के साथ मिलते हैं। पुराणों के पंचलक्षण के सर्ग, प्रतिसर्ग , वंश मन्वन्तर तथा वंशानुचरित का उल्लेख हरिवंश के सृष्टि सम्बन्धी विविध वृतान्तों, राजवंश वर्णन तथा विविध आख्यान और उपाख्यानों में मिलते है। हरिवंश में वर्णित ययाति के आख्यान के कुछ श्लोक तो अन्य पुराणों से अक्षरणः समानता रखते हैं। ययाति की वृद्धावस्था में उसकी अनन्त काम तृष्णा मानसिक भावावेश के रूप में उसको एक तत्वपूर्ण बात कहने के लिये बाध्य करती है– " इच्छा उपभोग से कभी शान्त नहीं होती है। हविष के डालने पर अग्नि की भाँति वह बढ़ती ही जाती है।[1] अनेक पुराण, महाभारत और हरिवंश में ययाति के चरित्र के साथ इस श्लोक की उपस्थिति पौराणिक ययाति चरित्र की एक ही परम्परा

की ओर संकेत करती है।

पुराण पंचलक्षणों का पालन करने के कारण हरिवशं के अनेक स्थल अन्य पुराणों के इसी प्रकार के स्थलों से समानता रखते हैं। हरिवंश में पौराणिक सामग्री की प्रधानता के आधार पर कहा जा सकता है कि हरिवंश का विकास एक पुराण के रूप में हुआ है। इतना ही नहीं पुराण पंचलक्षण के सर्ग प्रतिसर्ग के अनुरूप हरिवंश में जगत् की सृष्टि तथा प्रलय सम्बन्धी विचार मिलते हैं। वंश तथा मन्वन्तर के अनुरूप राजाओं तथा मन्वन्तरों का विवरण भी मिलता है। वंशानुचरित के अनुसार राजाओं तथा ऋषियों के विविध आख्यान मिलते हैं। पुराण पंचलक्षण के अतिरिक्त हरिवशं के अनेक वृतान्त पौराणिक प्रसंगों से समानता रखते हैं। अन्य पुराणों में उत्तर काल में जोड़े गये साम्प्रदायिक प्रसंग भी हरिवंश में मिलते हैं। हरिवंश में वैष्णव, शैव तथा शाक्य विचार धारायें इसी प्रकार के उत्तर कालीन साम्प्रदायिक स्थल हैं।

प्रतिपाद्य विषय के दृष्टि से हरिवंश का अन्य पुराणों के साथ साम्य एवं वैषम्य-

हरिवंश तथा अन्य पुराणों का महत्वपूर्ण प्रतिपाद्य विषय कृष्ण के स्वरूप का विवेचन है। कृष्ण का स्वरूप भारतीय संस्कृति और साहित्य का एक प्राचीन विषय हैं। हरिवंश के विष्णु पर्व कृष्ण की बाल्यावस्था से लेकर द्वारका में उनके राज्यकाल तक का विस्तृत मिलता है। हरिवंश के भविष्य पर्व में भी कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध अनेक वृतान्त मिलते हैं।

हरिवंश का कृष्ण चरित्र अन्य वैष्णव–पुराणों के कृष्ण चरित्र से विशेषता रखता है। इस पुराण का कृष्ण चरित्र अन्य वैष्णव–पुराणों के कृष्ण चरित्र से प्रारम्भिक है। विष्णु पुराण, भागवत पुराण और पद्म पुराण में मिलने वाले कृष्ण चरित्र के अनेक वृतान्त हरिवंश में नहीं है। विष्णु पुराण [2] का वेणुगीत तथा भागवत पुराण [3] के वेणुगीत और माखन लीला हरिवंश में नहीं हैं। हरिवंश में रास का प्रसंग "हल्लीस' के नाम से अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। [4] रास का स्वरूप विष्णु पुराण, भागवत पुराण, पद्मपुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण में क्रमशः विस्तृत होता गया है। [5] ब्रह्मपुराण, विष्णु पुराण, भागवत पुराण तथा पद्म पुराण में द्वारका के विनाश और कृष्ण के परलोक गमन का प्रसंग है।[6] हरिवंश में द्वारका के विनाश तथा कृष्ण के परलोक–गमन का यह वृतान्त भावी घटना के रूप में केवल दो श्लोकों में वर्णित किया गया है। [7] सम्भवतः महाभारत, मौशलपर्व में प्रस्तुत द्वारका के विनाश के प्रसंग की आवृत्ति के भय

से हरिवंश में यह प्रसंग पूर्णरूप से छोड़ दिया गया है।

हरिवंश के कृष्ण चरित्र में कुछ नवीन तत्वों का समावेश अन्य पुराणों से इस पुराण के कृष्ण चरित्र की विशेषता का कारण है। हरिवंश में छालिक्य गेय नामक वाद्यमिश्रित संगीत तथा अभिनय किसी भी अन्य पुराण के कृष्ण चरित्र में नहीं मिलता है। हरिवंश का अन्य महत्वपूर्ण प्रसंग पिण्डारकतीर्थ में यादवों और अन्तःपुर की समस्त रानियों के साथ कृष्ण की जलक्रीड़ा का वर्णन है जो अन्य सभी पुराणों में अनुपस्थित है। [8] यद्यपि भागवत पुराण के एक स्थल पर कृष्ण की जलक्रीड़ा का प्रसंग मिलता है, किन्तु यह जलक्रीड़ा विषय सामग्री और शैली की दृष्टि से हरिवंश के छालिक्य (जलक्रीड़ा के प्रसंग) से समानता न रखकर संस्कृत काव्यों के जलक्रीड़ा वर्णन से समानता रखती है।[9] हरिवंश का तीसरा महत्वपूर्ण प्रसंग ब्रजनाथ का वृतान्त हैं। यहां पर प्रधुम्न के, वज्रनाभ नामक दैत्य की कन्या प्रभावती के साथ विवाह का वर्णन हुआ है। इस स्थल में भद्रनामक नट तथा 'रामायण' और 'रम्भाभिसार कौबेर' नामक दो नाटकों के अभिनय का प्रसंग भारतीय नाट्यशास्त्र का एक गंभीर विषय है।[10] सुप्रसिद्ध विद्वान भी हर्टेल तथा कीथ ने हरिवंश के इस प्रसंग से ही संस्कृत नाटकों का सूत्रपात माना है। हरिवंश के इस स्थल में जिस प्रकार के नाटकों का वर्णन हुआ है, उनसे हरिवंश कालीन अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि की अभिनव–कला का बोध होता है।

हरिवंश में कृष्ण चरित्र के अन्तर्गत कृष्ण के अत्यन्त प्राचीन व्यक्त्वि पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। यहां पर कृष्ण के लिये प्रयुक्त 'सूर्य' 'सूर्य पुत्र' तथा जयोतिषां पति विशेषण [11] छान्दोग्य उपनिषद [12] और गीता [13] के कृष्ण से हरिवंश के कृष्ण में सम्बन्ध स्थापित करते हैं। छान्दोग्य उपनिषद में वर्णित देवकी पुत्र कृष्ण तथा महाभारत और पुराणों के वासुदेव–कृष्ण की एकता के विषय में विद्वानों में विवाद है। अनेक पाश्चात्य विद्वान् घोर आगिरस के शिष्य देवकी पुत्र कृष्ण को पुराणों में सांदीपनि के शिष्य वासुदेव–कृष्ण से भिन्न मानते हैं। [14] विण्टर नित्स पाण्डवों के सलाहकार कृष्ण पौराणिक कृष्ण, गीता के उपदेशक कृष्ण तथा गोपाल कृष्ण को विभिन्न व्यक्ति मानते हैं। जबकि भारतीय विचार धारा के अनुसार कृष्ण के इस संदेश को महत्व नहीं देती। इस विचारधारा के अनुसार कृष्ण के अनेक स्वरूपों का समावेश एक कृष्ण में हुआ है। प्रारम्भिक पुराणों में कृष्ण का अंशावतार उत्तरकालीन पुराणों में

सोलह कलाओं से युक्त पूवार्वतार हो गया है। कृष्ण चरित्र के विभिन्न स्वरूपों का समन्वय ही उत्तर काल में उनके पूर्णावतार रूप को जन्म देता है। उपनिषद, महाभारत, गीता तथा हरिवंश में कृष्ण का विकासशील व्यक्तित्व विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण में परिपूर्णतम हो गया है।[15] इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कृष्ण के लिये 'सूर्यपुत्र' तथा 'ज्योतिषां पति' आदि विशेषण अन्य वैष्णव पुराणों में नहीं मिलते। केवल हरिवंश में इन विशेषणों की उपस्थिति हरिवंश के कृष्ण चरित्र की विशेषता को सूचित करती है।

वैष्णव पुराणों में कृष्ण चरित्र के तुलनात्मक अध्ययन के लिये कृष्ण के जन्म से लेकर पृथ्वी–परित्याग तक के वृतान्त के अनुशीलन की आवश्यकता होती है। अतः हरिवंश और अन्य पुराणों के कृष्ण चरित्र की संक्षिप्त रूपरेखा निम्नवत् है–

हरिवंश-

प्रायः सभी पुराणों में कृष्ण चरित्र का प्रारम्भ विष्णु की स्तुति तथा कृष्ण के वैष्णव स्वरूप पर प्रकाश डालने के उपरान्त होता है। हरिवंश में भार से पीड़ित वसुन्धरा के दुःख का दूर करने क लिये ब्रह्म नारायणाश्रम में प्रवेश करते हैं।[16] ब्रह्म की स्तुति के द्वारा योगनिद्रा का परित्याग कर के विष्णु पृथ्वी की करूणा–कथा सुनते हैं।[17] ब्रह्म विष्णु को वसुदेव के घर में अवतरित होने की सलाह देते हैं। [18]

हरिवंश, 2.12 में कालियदमन का वृतान्त है, किन्तु नागपत्नियों के द्वारा कृष्ण की स्तुति का उल्लेख नहीं है।

हरिवंश, 2.20–21 में रासलीला का संक्षिप्त वर्णन है। शारदी ज्योत्सना को देखकर कृष्ण गोपिकाओं के साथ विविध क्रीड़ाएं करते हैं।

हरिवंश, 2.26 में अक्रूर के द्वारा जल के अन्तर्गत कृष्ण और अनन्त के ध्यान का उल्लेख है उनकी स्तुति का नहीं।

हरिवंश, 2.27–30 में कंश धनुर्भंग, कुवलयापीडमारण, चाणूर तथा मुष्टिक वध में प्रसंग में कंस के विशाल प्रेक्षागार का वर्णन है। अन्य पुराणों में मथुरा के इस प्रेक्षागार का उल्लेख नहीं है। कृष्ण के द्वारा कंस का वध करने पर वसुदेव और देवकी की स्तुति का विवरण हरिवंश में है जब कि अन्य पुराणों में इसका अभाव है।

हरिवंश 2.46 में बलराम के गोकुल गमन का वर्णन है। बलराम के लिये गोपाल बालक वारूणी तथा विविध वस्त्रा भूषण लाते हैं।

हरिवंश 2.47–60 में रूक्मिणी हरण का वृतान्त है। इस वृतान्त के साथ जरासन्ध, सुनीथ, शाल्व तथा दन्तवक्त आदि की मंत्रणा, रूक्मिणी स्वयंवर में विध्न, शाल्व का कालयवन के पास कृष्ण के विरुद्ध लड़ने के लिये गमन, कृष्ण का द्वारवती प्रमाण तथा कालयवन का वध आदि घटनाओं का वर्णन है।

हरिवंश 2.57 में कालयवन का वृतान्त है। गार्ग्य मुनि के नियोग के द्वारा गोपाली का वेष धारण करने वाली अप्सरा से कालयवन की उत्पत्ति होती है। कृष्ण को कालयवन के पास एक कालासर्प भेजते हुये चित्रित किया गया है। कालयवन को कृष्णसर्प से युक्त घट में चींटियाँ डालकर कृष्ण के पास वापस भेजते हुयें कहा गया हैं। अनेकों चींटियो द्वारा खाये गये उस भीषण सर्प को देखकर कृष्ण भय से मथुरा का परित्याग कर द्वारका में राज्य स्थापित कर लेते हैं।

पारिजातहरण का वृतान्त हरिवंश 2.64–75 में विस्तृत रूप में मिलता है। अध्याय 64 के पारिजातहरण के कथानक की आवृत्ति 65–75 अध्यायों में हुई है। हरिवंश 2.88.89 में छालिक्य क्रीड़ा का वर्णन है। कृष्ण अपनी समस्त रानियों तथा बलराम, प्रधुम्न, अनिरूद्ध और यादवों को लेकर समुद्र के तट में विविध क्रीड़ायें करते हैं।

हरिवंश 2.91.–97 मे वज्रनाभ का वृतान्त है। प्रधुम्न अपनी नाट्यकला से व्रजपुरवासियों को मुग्ध करके प्रभावती नामक वज्रनाभ की कन्या से विवाह करते हैं।

हरिवंश 2.104–108 में प्रधुम्नहरण का वृतान्त चार अध्यायों में विस्तृत रूप से वर्णित है। शम्बर प्रद्युम्न का हरण करके उन्हें मायावती को दे देता है। बालक का पोषण करके उसमें आसक्त मायावती उसे अपने पुत्र न होने के प्रमाण देती है। स्वयं को शम्बर के द्वारा हरण किया हुआ जानकर प्रधुम्न वैष्णवास्त्र के द्वारा शम्बर का वध कर देते हैं।

हरिवश्श 2.116–128 में बाणासुर का आख्यान है। पार्वती के वरदान के अनुसार स्वप्न में ऊषा का मिलन अनिरूद्ध से होता है तथा अनिरूद्ध को स्वप्न में ऊषा के दर्शन होते हैं। चित्रलेखा की सहायता सें उषा का संयोग अनिरुद्ध से होता है।

हरिवंश 3.74–101 में पौण्ड्रक का वृतान्त है। कृष्ण के बदरिकाश्रम जाने पर पौण्ड्रक द्वारका पर आक्रमण करता है (हरिवंश3.93.6–25)। तप करके बदरिकाश्रम से लौटने पर कृष्ण पौण्ड्रक का वध कर देते हैं (हरिवंश 3.100–101) हरिवंश 3.76–90 में कृष्ण के कैलाश गमन, बदरिकाश्रम में उनकी तपस्या, उनको शिव आदि देवताओं के दर्शन तथा कृष्ण और शिव की परस्पर स्तुति का प्रसंग है।

हरिवंश 2.102.31–35 में कृष्ण के स्वर्गगमन तथा द्वारकानगरी के समुद्र में निमज्जन का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है। द्वारका के समुद्र में डूबने का उल्लेख केवल दो श्लोकों के द्वारा हुआ है।

ब्रह्म पुराण-

ब्रह्मपुराण 180 में कृष्णावतार के पूर्व व्यास के द्वारा विष्णु स्तुति मे चतुर्व्यूहात्मक, निर्गुण, शाश्वत और पुराण विष्णु की स्तुति है।

ब्रह्मपुराण 181 में पृथ्वी की करूण पुकार सुनकर विष्णु अपने सिर से एक काला तथा सफेद बाल निकालकर डाल देते हैं। यह दोनों केश पृथ्वी में राम और कृष्ण के रूप में अवतरित होते हैं।

ब्रह्मपुराण 182.7.–8 में कृष्ण के जन्म के पूर्व देतवाओं के द्वारा देवकी की स्तुति का वर्णन है। 182.14–18 में वसुदेव तथा देवकी नवजात कृष्ण की स्तुति करते हैं।

ब्रह्मपुराण 184.42–52 में गोकुल को छोड़कर वृन्दावन में जाने का कारण गोकुल में होने वाला शकट भंग, पूतना वध तथा यमला र्जुन का पतन आदि बतलाया गया है। गोकुल से ग्वालों के निवास को हटाने का प्रस्ताव कृष्ण नहीं, वरन् नन्द गोपाल तथा गोकुल के वृद्धजन रखते हैं।

ब्रह्मपुराण 185 में कालियदमन के प्रसंग में नागपत्नियों के द्वारा कृष्ण की स्तुति का वर्णन है।

ब्रह्म पुराण 189 में गोपीकाओं के साथ कृष्ण की रासक्रीड़ा का वर्णन है। इसमें कृष्ण को न पाने पर यमुनातट में उनके गुणों के गीत गाने वाली गोपिकाओं का उल्लेख है।

192 में गोपिकायें कृष्ण के मथुरागमन के अवसर पर विलाप करती हुई चित्रित की गई है। इसी अध्याय के 48–58 श्लोकों में जल के भीतर अक्रूर के द्वारा चतुर्व्यहात्मक वासुदेव की स्तुति का उल्लेख है।

ब्रह्मपुराण 193.80–90 में कृष्ण के द्वारा कंस वध के बाद वासुदेव की स्तुति का वर्णन है। 195.1–2, 10–11 में जरासन्ध का प्रसंग हरिवंश 2–34. 5–6 से समानता रखता है।

बलराम के गोकुल गमन का वृतान्त ब्रह्मपुराण 198.67 में है। वरूण की स्त्री वारूणी, वरूण के आदेश के कदम्ब वृक्ष की शाखा में निवास करती है। बलराम वारूणी का पान करते हैं। लक्ष्मी बलराम के लिये अवतंसोत्पल, कुण्डल, वरूण द्वारा प्रेषित माला तथा नीलवस्त्र लाती हैं (ब्रह्मपुराण 1980. 15–16)

ब्रह्मपुराण 199 में रुक्मिणी का विवाह राक्षस विवाह के नाम से वर्णित है।

ब्रह्मपुराण 196.4 में कालयवन का उल्लेख है कालयवन के गार्ग्य मुनि के नियोग के द्वारा यवन की स्त्री से उत्पन्न बतलाया गया है। काले सर्प और प्रत्युत्तर में चींटियां भेजने वाले हरिवंश के रहस्यमय वृतान्त का उल्लेख यहां पर नहीं हैं।

ब्रह्मपुराण 203 में पारिजातहरण की घटना है। कृष्ण प्रागज्योतिषपुर से अदिति के कुण्डलों को लेकर स्वर्ग गये। वहां पर पारिजात वृक्ष के लिये इन्द्र और कृष्ण का युद्ध हुआ। विजयी होकर कृष्ण पारिजात वृक्ष ले आये।

ब्रह्मपुराण 200 में प्रद्युम्न हरण के वृतान्त के अन्तर्गत प्रद्युम्न को जल में फेंकने का उल्लेख है। मछली के उदर से निकले हुये प्रद्युम्न को मायावती पालती है। नारद मायावती को प्रद्युम्न के तथा उसके स्वरुप से परिचित कराते हैं।

ब्रह्मपुराण 209 में बलराम को द्विविद नामक वानर का हन्ता कहा गया है।

ब्रह्मपुराण 210–212 में कृष्ण के स्वर्गगमन का वृतान्त हरिवंश से अधिक विशद रुप में मिलता है।

विष्णु पुराण :-

विष्णु पुराण 5.1 में कृष्णावतार के पूर्व का वृतान्त ब्रह्मपुराण 181 से समानता रखता है। 5.2 तथा 3 में देवताओं के द्वारा देवकी की स्तुति का वर्णन है। 5.5 में पूतना को

राक्षस–स्त्री के वेश में प्रस्तुत किया गया है विष्णु पुराण का यह प्रसंग ब्रह्मपुराण से समानता रखता है। 5.13 में रासलीला का वर्णन है। ब्रह्मपुराण से समानता रखने पर भी इस रासलीला के अन्तर्गत विशिष्ट गोपी में राधा के व्यक्तित्व का प्रारम्भिक रुप मिलता है।

कंसवध का प्रसंग विष्णु पुराण 5.20 में ब्रह्मपुराण से समानता रखता है। कालयवन के प्रसंग में विष्णु पुराण 5.23 में मुचुकुन्द के द्वारा कृष्ण की स्मृति का वर्णन है। 5. 22 में जससन्ध के द्वारा कृष्ण पर आठ बार आक्रमण करने का उल्लेख है।

विष्णु पुराण 5.25 में उल्लिखित वारुणी और बलराम का वृतान्त ब्रह्मपुराण 198 का अनुसरण करता है। यहां पर वारुणी को वरुण की स्त्री कहा गया है। 5.27 में शम्बर के द्वारा प्रद्युम्न का वृतान्त ब्रह्मपुराण 200 से पर्याप्त समानता रखता हैं विष्णु पुराण के वृतान्त की विशेषता यह है कि इसमें प्रद्युम्न को शम्बर पर आठ बार आक्रमण करते हुये बतलाया गया हैं।

नरकवध का प्रसंग विष्णु पुराण में तीन अध्यायों में वर्णित है। 4.29.31 यह प्रसंग ब्रह्मपुराण 202–203 से समानता रखता है। विष्णु पुराण 5.33 में बाणासुर का आख्यान ब्रह्मपुराण 205–206 से समानता रखता है।

पौण्ड्रक युद्ध का वृतान्त विष्णु पुराण 5.34 में ब्रह्मपुराण 207 के आधार पर दिखलाई देता है। ब्रह्मपुराण 209 की भाँति विष्णु पुराण 5.36 में बलराम को द्विविद का हन्ता कहा गया हैं। विष्णु पुराण 5.37 में द्वारका नगरी के जलमग्न होने तथा कृष्ण के मानवदेह त्याग का वृतान्त ब्रह्मपुराण 210–212 से समानता रखता है।

देवी भागवत :-

देवी 4.19 में विष्णु स्वयं को देवी के अधीन बनाकर पृथ्वी की रक्षा के लिये उनकी स्तुति करते हैं।

देवी भागवत 4.3 में कश्यप और अदिति का बसुदेव और देवकी के रुप में अवतार का कारण दिति और वरुण का सम्मिलित शाप कहा गया है। वरुण के शाप का वृतान्त हरिवंश 1.55.21–36 में इसी रुप में मिलता है। देवीभागवत 4.2–3 में अदिति और सुरसा को देवकी और रोहिणी के रुप में अवतारित होते हुये बतलाया गया है।

देवी भागवत 4.21 में प्रथम पुत्र के जन्म होने पर देवकी के द्वारा उस बालक

को कंस को न देने के लिये प्रार्थना करने का उल्लेख है। बालक के कर्मो की गति पर विश्वास करते हुये वसुदेव वह बालक कंस को देते हैं। करुणावंश कंस उस बालक को नहीं मारता। नारद की प्रेरण से कंस उस बालक का वध कर देता हैं।

देवी भागवत 4.23 में बड़े संक्षिप्त रुप में कृष्णजन्म, कृष्ण के गोकुल गमन तथा गोकुल में विविध असुरों का वध करते हुये कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन है। 4.24 में नन्द के घर कृष्ण की उपस्थिति की सूचना नारद के द्वारा दी गयी है। 4.24.18 में कृष्ण पर जरासन्ध के सत्रह आक्रमणों का उल्लेख है।

देवी भागवत 4.24 में शम्बर के द्वारा प्रद्युम्न के हरण किये जाने पर कृष्ण के विलाप का वर्णन है। उनके द्वारा देवी की आराधना किये जाने पर देवी सोलहवें वर्ष शत्रु का वध करके कृष्ण की प्रद्युम्न से भेंट की सूचना देती हैं।

देवी भागवत 4.25 में पुत्र की प्राप्ति के लिये जाम्बवती की प्रार्थना के अनुसार कृष्ण के तप का वर्णन है। पार्वती कृष्ण को अनेक पुत्रों के लाभ का वर देती है। इसी अध्याय में कृष्ण के स्वर्गगमन तथा द्वारका के नाश का वृतान्त पार्वती के मुख से भविष्य की घटना के रुप में मिलता है।

भागवत पुराण :-

भागवत पुराण 10.1.18 में पृथ्वी को गौ के रुप में ब्रह्मा के पास जाते हुये वर्णित किया गया है। 10.2.25–40 में कृष्णजन्म के पूर्व ब्रह्मा और शिव आदि देवताओं को कारावास–गमन तथा हरि की स्तृति का वर्णन है। इस स्तृति के बाद देवताओं के द्वारा देवकी की स्तृति का प्रसंग है। 10.3 में कृष्णजन्म के उपरान्त वसुदेव और देवकी की स्तुति का उल्लेख है। 10.3.11 में कृष्ण जन्म के कारण हर्षातिरेक से वसुदेव ब्राह्मणों को 10,000 गायें देने का संकल्प करते हैं।

भागवत पुराण 10.6 में पूतना को अत्यन्त रुपवती स्त्री के रुप में चित्रित किया गया है। 10.8–10 में कृष्ण की बाल लीलाओं के अन्तर्गत माखनलीला और यमलार्जुन भंग का वर्णन है। 10.11 में ब्रज से वृन्दावन जाने का वृतान्त ब्रह्म पुराण से समानता रखता है। भागवत

पुराण 10.24–27 में गोवर्धनधारण के वृतान्त के अन्तर्गत इन्द्र के साथ आकर सुरभि अपने दुग्ध से कृष्ण का अभिषेक करती है। रामलीला का वर्णन भगवत पुराण 10.29–33 में अत्यन्त विस्तृत हो गया है। विष्णु पुराण में राधा को अस्पष्ट व्यक्तित्व यहाँ पर अधिक स्पष्ट हो गया है।

भागवत पुराण 10.50 में कृष्ण के साथ जरासन्ध के सत्रह युद्धों का वर्णन है। 10.50 में म्लेच्छो से युक्त कालयवन की सेना के योद्धाओं की संख्या तीन करोड़ कही गयी है। 10,52–54 में रुक्मिणी हरण के प्रसंग में विवाद के पूर्ण रुक्मिणी का कृष्ण को एक पत्र भेजने का उल्लेख है। इसके द्वारा रुक्मिणी कृष्ण को प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट करती है। 10.55 में प्रद्युम्न हरण का वृतान्त ब्रह्मपुराण की परम्परा का अनुसरण करता है। 11.1–30 में कृष्ण के स्वर्गगमन का वर्णन है। यह वृतान्त भी ब्रह्मपुराण और विष्ण पुराण के इसी प्रसंग से समानता रखता है। 10.67 में बलराम को द्विविद वानर का हन्ता कहा गया है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण :-

ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीकृष्ण 7 में वसुदेव को देवीमीढ़ तथा मारिषा का पुत्र कहा गया है। इसी अध्याय में पूर्वजन्म में किये गये वसुदेव तथा देवकी के तप का उल्लेख हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्री कृष्ण 10 में यमलार्जुन के नलकूबर कहा गया हैं। मृत्यु के उपरान्त पूतना को पार्षदों के द्वारा ले जाने का उल्लेख हैं।

ब्रह्मवैवर्त, पुराण, श्रीकृष्ण 16 में वृन्दावन के प्रसंग के अन्तर्गत कृष्ण गोकुलवासियों को रात के समय वन देवताओं की पूजा करने का आदेश देते हैं। पूजा के फलस्वरुप गोपों को वृन्दावन में पूर्व निर्मित सुन्दर नगरी मिलती हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुरण, श्रीकृष्ण 28 में रासलीला का वर्णन भागवत के रास से समानता रखता है। राधा तथा उनकी सहस्त्रों सखियों का उल्लेख ब्रह्मवैवर्त पुराण के रासमण्डल की विशेषता है।

ब्रह्मवैवर्त श्री कृष्ण 63 में कृष्ण के मथुरागमन के पूर्व कंस के दुःस्वप्न का उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्त पुराण श्री कृष्ण 71 में गोकुलगमन के पूर्व अक्रूर के सुन्दर स्वप्न का वर्णन है। ब्रह्मवैवर्त राज, श्री कृष्ण 73–91 में कृष्ण नन्द को समझाकर गोकुल भेजते हैं। श्रीकृष्ण 91–101 में कृष्ण के यज्ञोपवीत संस्कार का वर्णन है।

ब्रह्मावैवर्त पुरण श्रीकृष्ण 114 में उषा के प्रसंग में अनिरुद्ध का स्वप्न में उषा के दर्शन करते हुये कहा गया है। उषा और अनिरुद्ध के विवाह में कृष्ण सहायक के रुप में प्रस्तुत किये गये हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्ण 127 61–82 में कृष्ण गोकुल में रासमण्डल की अक्षयता को सिद्ध करके देहत्याग करते हैं।

पद्म पुराण :-

पद्मपुराण उत्तर 272 में वसुदेव और देवकी की कृष्ण के प्रति स्तृति तथा वर्षा में वसुदेव के गोकुल गमन का वृतान्त भागवत से समानता रखता है। इस प्रसंग में भागवत की भांति कृष्ण के नवनीतहरणा तथा अनेक असुरों के वध का वर्णन है। इसी अध्याय में अक्रूर गोकुल आकर नन्द यशोदा तथा वहां के निवासियों को कृष्ण के विष्णुरुप से परिचित कराते हैं।

पद्मपुराण उत्तर 273 में कृष्ण और बलराम के उपनयन संस्कार का उल्लेख है। इसी अध्याय में द्वारकागमन का प्रसंग है। सोते हुये मथुरावासियों को कृष्ण द्वारका पहुंचा देते हैं। दूसरे दिन लोग जब स्वयं को स्वर्णमय भवनों में पाते हैं तो उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है। उत्तर 276 में नरकवध के प्रसंग में कृष्ण का नरकासुर को वर देने का उल्लेख है। नरकासुर अपनी मृत्यु के दिन मंगल स्नान करने वालो का व्याधिरहित होने का वर मांगता है।

पारिजात का वृतान्त पद्मपुराण उत्तर 276 में ब्रह्मपुराण, विष्णु पुराण तथा भागवत पुरण से भिन्न रुप में मिलता है। अपने सम्मुख शची को पारिजात कुसुम लगाते देखकर सत्यभाषा के मन में पारिजात वृक्ष को पाने की उत्कट इच्छा के फलस्वरुप कृष्ण पारिजत वृक्ष को उखाड़कर ले आते हैं। पद्मपुराण उत्तर 277 में वाणसुर के आख्यान में मोहनास्त्र के द्वारा कृष्ण का शिव को मोहित कर देने का उल्लेख है। पार्वती की स्तुति से कृष्ण मोहनास्त्र का संहरण करते हैं।

पद्मपुराण उत्तर 278 में पौण्ड्रक वासुदेव को काशिराज कहा गया है। कृष्ण ने युद्ध करके इसका मस्तक काशी नगरी में डाल दिया। यह देखकर दण्डपाणि नामक उसके पुत्र ने शिव के तप के प्रभाव से प्राप्त एक कृत्या कृष्ण के विनाश के लिये भेजी। कृष्ण के चक्र ने कृत्या के साथ काशी को भी भस्म कर दिया। पद्म पुराण, उत्तर 279 में भीम के द्वारा

जरासन्ध का वध, कृष्ण के द्वारा गोप–गोपिकाओं का तारण, कृष्ण–सुदामा मिलन, कृष्ण की सलाह से कुरुक्षेत्र में पाण्डवों की विजय तथा द्वारका के विनाश का संक्षिप्त वर्णन है।

पद्मपुराण, पाताल, 69–83 में रासलीला का विशद् वर्णन है यहां पर वृन्दावन, गोप, गोपिकाओं, यमुना तथा वहां के पशु–पक्षियों को अत्यन्त आध्यत्मिक आवरण में प्रस्तुत किया गया है।

अग्नि पुराण :-

अग्नि पुराण 13 में कृष्णाचरित्र का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त रुप में हुआ है। इस पुराण का संक्षिप्त 'हरिवंश वर्णन' हरिवंश के कृष्ण चरित्र से बहुत समानता रखता है।

इस प्रकार हरिवंश पुराण तथा अन्य पुराणों की तुलनात्मक समीक्षा करने के उपरान्त हम निष्कर्ष रुप में कह सकते हैं कि कृष्णसम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण तत्वों को प्रस्तुत करने के कारण हरिवंश के कृष्णचरित्र का विशेष स्थान है। हरिंवश का कृष्णचरित्र अनेक पुराणों के कृष्णाचरित्र की पृष्ठभूमि है। अतः हरिवंश में कृष्णचरित तथा विष्णुभाक्ति का प्रारम्भिक रुप देखा जा सकता है। हरिवंश के अनेक प्रसंग समस्त साहित्यों में कृष्ण के अस्पष्ट चरित्र को आलोकित करते हैं। अन्य वैष्णव पुराणों से भिन्न हरिवंश की यह विशेषता इस पुराण के कृष्ण चरित्र को महत्व देती है।

धर्म निरुपण की दृष्टि से हरिवंश का अन्य पुराणों के साथ साम्य एवं वैषम्य :-

भारतीय धर्म के संग्रह ग्रन्थ होने के कारण पुराण भारतीय संस्कृति के प्रतीक है। पुराणों में शैव, वैष्णव, शक्त जैन तथा बौद्ध आदि अनेकों धार्मिक विचार मिलते हैं। पुराणों के अन्तर्गत धार्मिक प्रवृत्तियों का अध्ययन भारतीय धर्म और उस धर्म से समाज के सम्बन्ध को दिखाने में सहायक होता है।

हरिवंश वैष्णव पुराण है। सुप्रसिद्ध विद्वानों ने जिनमें विन्टरनित्स, आर०सी० हाजरा, हेमचन्द्र राय चौधरी आदि प्रमुख है।[19] हरिवंश को वैष्णव धर्म के प्रमुख पुराणों में एक माना है। हरिवंश के विष्णु पर्व में कृष्ण के चरित्र का विशद वर्णन है। हरिवंश के अन्य पर्वो की तुलना में यह पर्व सबसे बड़ा है। इसी प्रकार विष्णु पुराण में पंचम अंश अत्यन्त विस्तृत रुप में कृष्णा चरित्र का वर्णन है। भागवत पुराण का दशम स्कन्ध कृष्णाचरित्र का विशाल और

भावपूर्ण चित्रण करता है। विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण की भांति हरिवंश में कृष्ण का विशद चरित्र तथा हरिवंश पर्व और भविष्य पर्व में विष्णु की महिमा का प्राधान्य हरिवंश को वैष्णव पुराण सिद्ध करते हैं।

किन्तु इसके बावजूद हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण और भागवत पुराण के अन्तर्गत वैष्णव धर्म का प्राधान्य होते हुये भी वैष्णव भक्ति की अलग–अलग प्रवृत्तियां दिखलाई देती हैं हरिवंश पुराण में वैष्णव धर्म अपने प्रारम्भिक रुप में है। विष्णु पुराण और भागवत पुराण में यही धर्म अधिक विकसित हो गया हैं। अतः विष्णु पुराण और भागवत पुराण वैष्णव धर्म की पूर्व विकसित और हरिवंश की तुलना में उत्तरकालीन धार्मिक विचारधारा का परिचय देते हैं।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पौराणिक पंचलक्षणों को महत्व देने वाले पुराणों में साम्प्रदायिक प्रभाव कम मात्रा में दिखलाई देता है। हरिवंश पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, मत्स्य पुराण, वायु पुराण तथा ब्रह्मपुराण उत्तरकालीन साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों से बहुत कम प्रभावित ज्ञात होते हैं। इन पुराणों में जो भी साम्प्रदायिक अंश दिखलाई देते हैं, वे तुलात्मक दृष्टि से प्रारम्भिक है।[20]

विष्णु पुराण में सांख्य, योग तथा वेदान्त के दार्शनिक विचारों से मिश्रित विष्णु का व्यक्तित्व हरिवंश के विष्णु से अधिक व्यापक हो गया है। हरिवंश [21] की भांति यहां पर भी विष्णु को सांख्य पुरुषरुप माना गया है और चौबीस तत्व उसी पुरुष से उद्भूत बतलाये गये हैं।[22] अन्य स्थल में विष्णु को ब्रह्ममय समस्त पराशक्तियों में प्रधान और क्षराक्षमय कहा गया है।[23] कण्डुरचित ब्रह्मपर नामक स्तोत्र सुनने के लिये इच्छुक प्रचेताओं को सोम यह स्तुति सुनाते हैं–

"ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ।
ब्रह्मव्ययं नित्यमजं स विष्णुर पक्षयाधैर खिलैरसंगि ।।"[24]

यह स्त्रोत विष्णु के परब्रह्म पर प्रकाश डालता है। विष्णु पुराण में पृथ्वी और ब्रह्म के द्वारा विष्णु की स्तुतियां उनके रामायण, शब्दब्रह्म, अविकारी सर्वव्याप्त, व्याताव्यात और समष्टि और व्यष्टि रूप को प्रस्तुत करती है।[25] विष्णु पुराण में यद्यपि पंचरात्र के चतुर्व्यूह का अभाव है, किन्तु भगवद् भक्ति विकास के पथ पर यह पुराण हरिवंश पुराण से बहुत आगे निकल गया है।

विष्णु भक्ति के साथ सांख्य और योग के सिद्धान्तों का विकसित रूप भागवत पुराण में मिलता है। भागवत् पुराण के अंतिम दो स्कन्ध वैष्णव धर्म के अन्तर्गत योग और सांख्य का विवेचन करते हैं। सांख्य और योग सम्बन्धी विचार भागवत पुराण में कोई विशेषता नहीं रखते। इस पुराण में योग के तीन रूप प्रस्तुत किये गये हैं। ये तीन रूप हैं– क्रिया योग, ज्ञान योग और भक्ति योग। भागवत पुराण के ग्यारहवे स्कन्ध के उनतीसवें अध्याय में भक्ति योग की महिमा का वर्णन है। इस योग का जनसाधारण के लिये सुलभ और परममंगलम कहा गया है।[26] अन्य समस्त अध्याय में भी भक्ति योग का विशद विवेचन भागवत काल में भगवद् भक्ति की प्रमुखता की ओर संकेत करता है।

वैष्णव पुराणों में पांचरात्र परम्परा धार्मिक विकास की रूप रेखा प्रस्तुत करती है। महाभारत के शान्तिपर्व के नारायणीय भाग में पांचरात्र के व्यापक सिद्धान्तों के दर्शन होते हैं।[27] यहां पर उल्लेखनीय है कि अन्य पुराणों में यह प्रमुख स्थान ग्रहण करने वाले पांचरात्र का एक स्थल को छोड़कर [28] (जो वाद में जोड़ा गया ज्ञात होता है) हरिवंश में पूर्ण अभाव है। हरिवंश से विपरीत पांचरात्र के सिद्धान्त अनेक पुराणों में मिलते हैं। ब्रह्मपुराण से लेकर पद्मपुराण तक में चतुर्व्यूह की परम्परा का पालन दृष्टि गोचर होता है। देवी भागवत् अग्नि पुराण तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण को छोड़कर अन्य सभी वैष्णव पुराणों में अक्रूर के द्वारा स्तुति प्रंसग में चतुर्व्यूह का उल्लेख है।[29] ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा देवी भागवत में चतुर्व्यूह के अनुल्लेख का कारण इन दोनों पुराणों में कृष्ण कथा की भिन्न परम्परा है। अग्नि पुराण में चतुर्व्यूह का अभाव हरिवंश के कृष्ण चरित्र के अनुकरण मात्र का परिचय देता है।

पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड़ में पौष्कर प्रादुर्भाव के महत्व की ओर संकेत है।[30] हरिवंश की भांति यहां भी विष्णु की नाभि से कमल की उत्पत्ति, उसमें ब्रह्म का तप, उनके द्वारा सृष्टि निर्माण और मधुकैटभ के वृतान्त का वर्णन है। ब्रह्म से अधिष्ठित विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल के प्रत्येक भाग की समता समस्त ब्रह्मण्ड से की गयी है। ब्रह्म और कमल से युक्त विष्णु का अधिवास एकार्णव है। विष्णु समस्त सृष्टि को स्वंय में अन्तर्भूत करके बालरूप से एकार्णव में स्थित वृक्ष की एक शाखा में निवास करते हैं। इसी प्रसंग में मार्कण्डेय मुनि के द्वारा उनके उदर के अन्तर्गत समस्त लोकों में भ्रमण तथा उनकी महिमा के ज्ञान का वर्णन है।[31]

पुराणों में बुद्धावतार के विभिन्न रूप दिखलाई देते हैं। प्राचीन कहे जाने वाले प्रायः सभी पुराण बौद्ध धर्म को अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं। महाभारत सभापर्व में विष्णु के आठ अवतारों के अन्तर्गत बुद्ध का नाम नहीं है।[32] विष्णु पुराण के अवतारों की सूची में भी बुद्ध के नाम का अभाव है।[33] देवी भागवत में विष्णु के सात अवतारों के अन्तर्गत बुद्ध का कोई उल्लेख नहीं है।[34] ब्रह्म में विष्णु के नौ अवतार पौष्कर, वाराह, नृसिंह , वामन, दत्तात्रेय, जामदग्न्य , राम दाशरथि, कृष्ण और कल्कि का वर्णन है।[35] किन्तु बुद्ध का नामोल्लेख नहीं है।

कुछ पुराणों तथा उपपुराणों में विष्णु के अवतारों के अन्तर्गत बुद्ध का उल्लेख मिलता है। भागवतपुराण के अन्तर्गत चौबीस अवतारों में बुद्ध का नामोल्लेख है।[36] वाराह पुराण में दस अवतारो की सूची के अन्तर्गत बुद्ध का नाम नवां है। यथा–

"मत्स्य कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।

रामे रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्कीति ते दशा।"[37]

बृहद्धर्म पुराण में बुद्ध की गणना विष्णु के अवतारों के अन्तर्गत की गयी है। किन्तु उनके प्रति आदर का भाव नहीं है। बुद्ध के यहां पर लोकविमोहन के लिये उत्पन्न माना गया है।[38]

उत्तरकालीन पुराणों में शाक्त विचारधारा के साथ गणेश, सूर्य, गंगा आदि देवताओं का समन्वय हुआ है। सभी सम्प्रदायों को लोकप्रचलित के रुप स्वीकार करने के कारण यह पुराणेविविध परम्पराओं बृहत्कोष के समान ज्ञात होते हैं। अग्नि पुराण, गरुड़ पुराण तथा मार्कण्डेय पुराण इसी प्रकार के पुराण है।[39] अर्वाचीन पुराणों में गंगा का माहात्म्य विकसित अवस्था का परिचायक है। इन पुराणों में गंगा को पतितपावनी नदी के अतिरिक्त परम वरदायिनी देवी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ प्रस्तुत किया गया है। बृहद्धर्मपुराण में गंगा को ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश से पूजित कहकर गंगा के माहात्म्य को बढ़ा दिया गया है। यथा–

"नमस्ते देवदेवेशि गंगे त्रिपथगामिनि।

त्रिलोचने श्वेतरुपे ब्रह्म विष्णु शिवार्चित।"[40]

जबकि हरिवंश में वैष्णव, शैव तथा शक्त विचारों के अतिरिक्त सूर्य,गणेश गंगातुलसी आदि की पूजा तथा माहात्म्य पूर्ण रुप से अनुपस्थित है। इसी प्रकार प्रारम्भिक पुराणों

में तीर्थ–माहात्म्य भारत के प्रमुख तीर्थों के वर्णन तक ही सीमित है। प्रभास, पिण्डारक, पुष्कर और नैमिष पुराणों के तीर्थ–माहात्म्य के अन्तर्गत प्रारम्भिक तीर्थ ज्ञात होते हैं।[41]

हरिवंश में पुण्यकव्रत ही स्मृति–सामग्री का एकमात्र प्रतिनिधित्व करता है। इस ब्रत की महिमा का प्रतिपादन पार्वती के मुख से हुआ है। पार्वती, शची और अरुन्धती के अनुकरणा रुप में इस व्रत को मर्त्युलोक में करने वाली सर्वप्रथम स्त्री सत्यभाग बतलायी गयी है। पारिजात हरण का लम्बा बृतान्त इस प्रसंग के अन्तर्गत मिलता है।[42] पारिजातहरण कुछ परिवर्तित रुप में अनेक वैष्णव पुराणों में मिलता है।[43] लेकिन पुण्यकव्रत अन्य पुराणों में नहीं मिलता। ब्रह्मपुराण जो प्रायः अनेक स्थलों में हरिवंश का अनुकरण करता है, पुण्यकव्रत के विषय में मौन है।[44]

पुराण पुण्यकव्रत के किसी भी रुप को प्रस्तुत नहीं करते। विष्णु पुराण के अन्तर्गत पारिजात के प्रसंग की हरिवंश से समानता होने पर भी पुण्यकव्रत का कोई उल्लेख नहीं है।[45] भागवत पुराण के अन्तर्गत भी इस प्रसंग में पुण्यकव्रत का कोई चिन्ह नहीं मिलता।[46]

संस्कृतिक की दृष्टि से हरिवंश का अन्य पुराणों के साथ साम्य एंव वैषम्य :-

पुराण भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से चली आने वाली पौराणिक संहिताओं में तत्कालीन संस्कृति के दर्शन होते हैं। संस्कृति की सीमा विस्तृत हैं। इसके अन्तर्गत मानव के बौद्धिक तथा कलात्मक विकास से सम्बद्ध सभी विषय आ जाते हैं। इस आधार पर संस्कृति के अन्तर्गत लगभग सभी पौराणिक विषयों का समावेश हो जाता है। पुराणों के सभी प्रसगो में किसी न किसी रुप से साहित्य कला दर्शन और विज्ञान से निकटतम का सम्बन्ध है। इस प्रकार पुराणो के समस्त वृतान्त भारतीय संस्कृति का प्रतिनधित्व करते हैं। इसके अतिरिक्त व्यावहारिक जीवन से सम्बद्ध अनेक विषयों के अतिरिक्त तत्कालीन ललित कलाओं में संस्कृति का स्वरुप विशेषता के साथ मिलता है। इसमें जन सामान्य की कलात्मक अभिरुचि संस्कृति का महत्वपूर्ण चित्र प्रस्तुत करती है।

हरिवंश के महत्वपूर्ण कुछ कला–सम्बन्धी तत्व पुराणों और अन्य ग्रन्थों में अनुपस्थित है। कृष्ण के द्वारा अविष्कृत 'छालिक्यगेय' और भद्र नामक नट की सहायता से प्रस्तुत दो नाटकों के प्रसंग हरिवंश में महत्वपूर्ण है। छालिंक्य विविध वाद्यों के साथ गाया जाने

वाला हाव–भाव पूर्ण संगीत है।[47] यह किसी भी अन्य पुराण में नही मिलता। भद्र नट का प्रसंग भारतीय नाटक के जन्म और विकास पर प्रकाश डालता है। कृष्ण के यज्ञ में भ्रद नट के द्वारा प्रस्तुत संगीतपूर्ण अभिनय पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा वर्णित मुग्धाभिनय का सूचक है। यही मुग्धाभिनय प्रद्युम्न साम्ब गद और भद्र नट के द्वारा अभिनीत नाटक रामायण और कौबेर रम्भाभिसार में अपनी परिष्कृत अवस्था में मिलता है।[48] अतः मुग्धाभिनय से क्रमशः नाटक का पूर्ण विकास हरिवंश में दिखलाई देता है। हरिवंश का यह नाट्यतत्व महाभारत तथा पुराणों में ही अनुपस्थित नहीं है वरन् नाट्यशास्त्र तक में इस नाट्यतत्व से सम्बद्ध कोई भी सामग्री नहीं मिलती।

हरिवंश के अन्तर्गत नृत्य तथा नाट्य सम्बन्धी सामग्री का वास्तविक अनुशीलन अन्य पुराणो के साथ तुलानत्मक अध्यायन से होता है। वैष्णव पुराणों में कृष्ण चरित्र के अन्तर्गत रास अपनी विशेषता रखता है। प्रत्येक पुराण के रास में विभिन्न संस्कृतियों का प्रभाव दिलखाई देता है। हरिवंश के हल्लीसक में भारतीय सांस्कृति का प्राचीन तथा अविकृत रुप मिलता है। हरिवंश में रास का प्रसंग संक्षिप्त है। कृष्ण के विरह में मुक्ति पाने वाली गोपिका और राधा के अभाव के कारण यह प्रारम्भिक ज्ञात होता है।

ब्रह्मपुराण में रास हरिवंश की प्रवृत्ति का अनुसरण करता है, किन्तु इस रास में हरिवंश के रास से कुछ विकसित तत्व मिलते हैं। ब्रह्मपुराण के रास के अन्तर्गत कृष्ण के वेणु के स्वर को सुनकर विस्मित गोपिकाओं की मनोदशा का वर्णन है। यहां पर उस गोपिका का भी उल्लेख है जो गुरुजनों के बाहर होने के कारण कृष्ण के पास न जा सकी तथा वहीं पर स्थित होकर कृष्ण का ध्यान करती रही गयी।[49] ब्रह्मपुराण के यह तत्व विष्णु पुराण और भागवत पुराण के इसी प्रकार के तत्वों के बीजरुप हैं। हरिवंश में इन तत्वों का पूर्ण अभाव है।

विष्णु पुराण में रास ब्रह्मपुराण के रास से कुछ विकसित अवस्था को प्रस्तुत करता है। वेणुगीत विष्णुपुराण के रास की विशेषता है।[50] भागवत पुराण में यही रास नृत्य 'महारास' कहा गया है। महारास में रास के सभी तत्व विस्तार के साथ मिलते हैं। चन्द्रमा, यमुनातट तथा नृत्य के समय गोपिकाओं के अंगों का सौन्दर्य इस रास में विष्णु पुराण से अधिक सूक्ष्मता से वर्णित किया गया है। रास का प्रारम्भ यहां पर उद्‌यमान चन्द्र की क्रमशः

विस्तीर्ण होती हुई आह्लादिनी रश्मियों के साथ हुआ है।[51] महारास में कृष्ण के चारो और शोभित गोपिकायें मेघ के समीप विद्युत की भांति मानी गयी है।[52] हरिवंश की भाँति यहाँ पर रास की विधि का स्पष्ट वर्णन नहीं है। किन्तु गोपिकाओं के बीच में एक कृष्ण के कथन से हरिवंश में वर्णित हल्लीसक का ज्ञान होता है। भागवत के रास में प्रकृति–चित्रण तथा रुप वर्णन का समन्वय इस प्रसंग के काव्य सौन्दर्य को बढ़ा देता है।

पद्मपुराण तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में रास की भिन्न प्रवृत्ति दिखलाई देती है। पद्मपुराण के पातालखण्ड में रास–मण्डली नृत्य का वाचक नहीं है। यहाँ पर राधा, कृष्ण और गोपिकाओं की विविध लीलाओं को ही रास कहा गया है।[53] रास का यही रुप ब्रह्मवैवर्त पुराण में मिलता है।[54] यहां पर यह उल्लेखनीय है कि पद्मपुराण और ब्रह्म वैवर्त पुराण में रास अपने प्रारम्भिक रुप से बहुत दूर हट गया है।

छालिक्य हरिवंश का अन्य अभिनय मिश्रित संगीत है। संगीत का यह प्रसंग हरिवंश के अतिरिक्त अन्य पुराण में अनुपस्थित है। भागवत पुराण में कृष्ण चारित्र के अन्तिम स्थल में जल क्रीड़ा का वर्णन है। यहाँ पर कृष्ण अपनी रानियों और पुरवासी यादवों के साथ सागर में जलक्रीड़ा के लिये प्रस्थित होते हैं। इस समय गन्धर्व मृदंग तथा पणवानक से तथा सूत मागध और वन्दी वीणा के द्वारा कृष्ण के चरित्र का गान करते है।[55] कृष्ण के साथ क्रीडा में मग्न द्वारवती की स्त्रियां हर्ष विभोर होकर प्रकृति के विभिन्न तत्वों से तादात्म्य स्थापित करती हैं। भागवत पुराण के अन्तर्गत जल क्रीड़ा का यह प्रसंग हरिवंश के छाक्यि से भिन्न है तथा संस्कृत काव्यों के जल क्रीड़ा वर्णन से समानता रखता है।

हरिवंश में पुण्यकव्रत ही स्मृति सामग्री का एकमात्र प्रतिनिधित्व करता है। इस व्रत की महिमा का प्रतिपादन पार्वती के मुख से हुआ है। पार्वती, शची और अरुन्धती के अनुकरण रुप में इस व्रत को मर्त्यलोक में करने वाली सर्वप्रथम स्त्री सत्यभामा बतलायी गयी है। परिजात हरण का लम्बा वृतान्त इस प्रसंग के अन्तर्गत मिलता है।[56] यद्यपि परिजातहरण का प्रसंग कुछ परिवर्तित रुप में अनेक वैष्णव पुराणों में मिलता है।[57] लेकिन पुण्यकव्रत का प्रसंग अन्य पुराणों में नहीं मिलता। ब्रह्म पुराण जो प्रायः अनेक स्थलों में हरिवंश का अनुकरण करता है, पुण्यकत व्रत के विषय में मौन है।[58] ब्रह्मपुराण में पुण्यक व्रत के स्थान पर सोलह सहस्त्र कन्याओं के

साथ कृष्ण के विवाह का वर्णन है। अतः पुण्ययकव्रत का यहाँ पर चिन्ह भी नहीं मिलता। इसी प्रकार अन्य पुराण भी पुण्यकव्रत के किसी भी रुप को प्रस्तुत नहीं करते। विष्णु पुराण के अन्तर्गत पारिजात के प्रसंग की हरिवंश से समानता होने पर भी पुण्यकव्रत का कोई उल्लेख नहीं है।[59] भागवत पुराण के अन्तर्गत भी इस प्रसंग में पुण्यकव्रत का कोई चिन्ह नहीं मिलता।[60] देवी भागवत के अन्तर्गत पारिजातहरण के प्रसंग में सत्यभामा द्वारा पारिजात वृक्ष से कृष्ण को बांधने का उल्लेख है।[61] हरिवंश के पुण्यकव्रत में सत्यभामा द्वारा पारिजात वृक्ष में बांधकर कृष्ण के नारद को दान दिये जाने का उल्लेख है।[62] पद्म पुराण उत्तरखण्ड में परिजातहरण के प्रंसग के अन्तर्गत सत्यभामा द्वारा नारद की तुला पुरुषदान देने का वर्णन है। सत्यभामा यहां पर पारिजात वृक्ष सहित कृष्ण को तोलकर नारद को देती हुई चित्रित की गयी है।[63] इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पद्मपुराण उत्तरखण्ड में पारिजातहरण के अन्तर्गत तुला–पुरुषदान हरिवंश के पुण्यकव्रत से बहुत समानता रखता है। पुण्यकव्रत और तुला पुरुषदान दोनों का उद्देश्य सौभाग्य–प्राप्ति है।[64]

हरिवंश में अनुलोभ और प्रतिलोभ दोनों ही प्रकार के विवाहों का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार के वर्णेतर विवाह में हरिवंश में 'ऋष्यन्तर विवाह कहा' गया है। ये विवाह तिरस्कार्य नहीं ज्ञात होते। अनेक स्थलों में ऋष्यन्तर विवाहों का तथा इसकी सन्तति का गौरव के साथ वर्णन इस बात का प्रमाण है। ऋष्यन्तर विवाह में नीच वर्ण की कन्या से विवाह का प्रचलन पर्याप्त मात्रा में दिखलाई देता है। हरिवंश में वर्णित ऋषियों की क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र सन्तान अनुलोम विवाह से उत्पन्न का परिचय देती है। विश्वामित्र के वंश के विवरण में उनके वंशज ऋषियों को 'ऋष्यन्तर विवाह' कहा गया है।[65] अन्य स्थल में शुनक नामक ऋषि के पुत्रों को शौनक कहा गया है। शौनकों के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी आते हैं।[66] चारों वर्णो के रुप में शौनकों का उल्लेख चार वर्ण की भिन्न–भिन्न स्त्रियों में ब्राह्मण ऋषि के विवाह की सूचना देता है। इसी प्रकार भार्गव वंश में अंगिरस के पुत्रों को तीन जातियों में जन्म लेते हुये कहा गया है।[67] अन्य स्थल में भार्गव वंशी अंगिरस के पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बतलाये गये हैं।[68]

हरिवंश में क्षत्रिय राजाओं के प्रतिलोभ विवाह का परिचय उनकी ब्राह्मण सन्तान

से मिलता है। उदाहरणार्थ–कण्व के पुत्र मेध्यातिथि की सन्तान को 'काण्वायन द्विज' कहा गया है।[69] इसी प्रकार बलि के पुत्रों के दो पक्ष मिलते हैं। पहला पक्ष क्षत्रियों का है। इन्हें 'बालेयक्षत्रिय' कहते हैं। दूसरा पक्ष ब्राह्मण पुत्रों का है ये 'बालेय ब्राह्मण कहे गये है।[70]

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हरिवंश में वर्णविषयक सामग्री दो प्रकार के समाजों की प्रवृत्ति का परिचय देती है राजवंशो में वर्णित अन्तर्जातीय सम्बन्धों के द्वारा तत्कालीन समाज में जातिगत उदारता के दर्शन होते हैं। जातिगत असंकीर्णता समाज की प्राचीन अवस्था की परिचायक है। कलिवर्णन में वर्णसंकर के प्रति घृणा जातिगत नियमों की कठोरता को सूचित करती है। वंशावलियों के वर्णन में वर्णसंकर वाली जो परम्परायें समाज में मान्य दिखलाई देती है, वही परम्परायें कलिवर्णन में अमान्य प्रथा घृणा स्पद पद समझी गयी हैं। अतः उत्तरकालीन समाज में वर्णो के नियमों की कठोरता का ज्ञान होता है। भारत में आकर बस जाने वाली विदेशी जातियों तथा अन्य असभ्य जातियों के उच्च जातियों में मिल जाने की आशंका यहाँ सदैव बनी रहती है। विदेशी शासकों तथा वेद–विरुद्ध मतावलम्बियों के जातिगत ऐक्य के सिद्धान्तों के प्रति पुराणों के कलिवर्णन में सभी जगह विरोध की भावना दिखलाई देती है। विदेशियों तथा वेद–विरुद्ध मतावम्बियों के द्वारा वर्णक्य के प्रयास को निरुत्साहित करने के लिये ही कदाचित इन्हें शूद्रों की कोटि में रखा गया है।[71]

पुराणो में शुद्रों तथा स्त्रियों के लिये बनाये गये विद्यान मनुस्मृति की अपेक्षा उदार है। भागवत पुराण शूद्रों के लिये द्विज–शुश्रषा के अतिरिक्त अन्य कर्तव्यों का उल्लेख करता हैं। वह कर्तव्य छः प्रकार के हैं– शौच, सेवा, अमन्त्रयज्ञ, अस्तेय, सत्य, और गो–ब्राह्मणों की रक्षा।[72] भागवत पुराण की भांति विष्णु पुराण की शूद्रों के प्रति उदार भाव रखता है। विष्णु पुराण में शुद्र को दान, पाकयज्ञ और पितृकार्य करने का अधिकार दिया गया है। यथा–

"दान च दद्यान्छूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च।

पिंयादिकं च तत्सर्व शूद्रः कुर्वीत तेन वै।।"[73]

पुराणों में स्त्रियों की निन्दा के साथ उनकी प्रशंसा से पूर्ण स्थल भी मिलते है। पुराणो में स्त्रियों को अविश्वसनीय बताने पर भी उन्हें ईर्ष्या का अपात्र कहा गया है।[74] अन्य स्थलों में पुराण स्त्रियों को आदर की पात्र कहते है, किन्तु केवल साध्वी स्त्रियों ही इस गौरव

की अधिकारिणी मानी गयी है।[75] स्त्रियों के उच्च आदर देने पर भी पुराण उनको वेदमन्त्र का अनधिकारी बतलाते हैं। पुराणों को सुनने का अधिकार शूद्र की भांति उनको भी नहीं है।[76] स्त्री और पुरूष में समानता का स्पष्ट उल्लेख बृहद्धर्म पुराण में केवल एक स्थल पर मिलता है। यहाँ पर धर्मशास्त्रों के आधार पर कन्या को पुत्र की भांति महत्वपूर्ण बतलाया गया है।[77] इस प्रकार पुराणों के अन्तर्गत स्त्री तथा शूद्रों के प्रति विविध विचार धारायें विभिन्न काल में इनके प्रति जनसाधारण के व्यवहार का परिचय देती हैं।

ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से हरिवंश का अन्य पुराणों के साथ साम्य एवं वैषम्य-

पुराणों के विविध विषयों में इतिहास तत्व महत्वपूर्ण है। पुराणपंच लक्षण के अन्तर्गत 'वंश' मन्वन्तर' तथा 'वंशानुचरित' पुराणों के ऐतिहासिक अध्ययन के लिये प्रभूत सामग्री प्रस्तुत करते हैं। 'वंश' के अन्तर्गत प्राचीन राजाओं की विस्तृत वंशावलियां हैं। 'मन्वन्तर ' में युगों के काल का निर्धारण किया गया है। 'वंशानुचरित' में किसी राजा के जीवन से सम्बद्ध वृतान्तों का वर्णन होता है। वंश वर्णन के प्रसंग में किसी महान् राजा के चरित्र का गान कभी–कभी संक्षेप में गाथाओं के द्वारा होता है। पुराणों की ये गाथायें अभिलेखों की प्रशस्तियों की भांति राजाओं के व्यक्तित्व और चरित्र का सूक्ष्म परिचय देती हैं। इस प्रकार पुराणों के वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित तथा गाथाओं के द्वारा उनकी ऐतिहासिक प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है। पुराणों के द्वारा भारतीय इतिहास के आन्ध्र, वाकाटक, भारशिव और गुप्त वंशों के विषय में महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हो जाती है। इस आधार पर भी हम कह सकते हैं कि पुराणों में इतिहास के अध्ययन के लिये बहुमूल्य सामग्री है।

पुराण लक्षण के अन्तर्गत आने के कारण वंशावलियां लगभग सभी प्रारम्भिक पुराणों में मिलती है। पुराण लक्षण का पालन न करने वाले अर्वाचीन पुराणों में वंशावलियों का स्थान प्रायः नगण्य है। ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रहन्नारदीय पुराण और वहद्‌ धर्मपुराण आदि इस कोटि में आते हैं। पुराण पंचलक्षण का पालन करने वाले पुराणों में हरिवंश पुराण, ब्रह्मपुराण, वायु पुराण, ब्रह्मण्ड पुराण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण तथा भागवत पुराण प्रमुख है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हरिवंश तथा ब्रह्मपुराण की वंशावलियां बहुत अधिक समानता रखती है। जबकि वायु पुराण तथा ब्रह्मण्ड पुराण की वंशावलियां हरिवंश तथा ब्रह्मपुराण से भिन्न परम्परा

को प्रस्तुत करती हैं। मत्स्य पुराण, वायु पुराण तथा ब्रह्मण्ड पुराण से अनुप्राणित ज्ञात होता है। भागवत पुराण तथा विष्णु पुराण राजाओं के वंश वृत्तों का चित्रण करते हुये भी वंश वृत्तों की दृष्टि से अधिक विश्वसनीय नहीं माने जा सकते। वंशावलियों की तुलना करने पर विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण की वंशावलियों में काल्पनिकता का अंश अधिक दिखलाई देता है। विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण की वंशावलियाँ हरिवंश , ब्रह्मपुराण , ब्रह्मण्ड पुराण, वायु पुराण तथा मत्स्य पुराण की वंशावलियों के बिगड़े पाठ को प्रस्तुत करती है। किन्तु गुप्त राजाओं की वंशावली को प्रस्तुत करने के कारण विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण भी ऐतिहासिक दृष्टि से मान्य पुराण हैं।

सुप्रसिद्ध विद्वान पार्जिटर ने वायु पुराण तथा ब्रह्मण्ड पुराण की वंशावलियों को प्रामाणिकतम स्त्रोत माना है। उन्हीं के शब्दों में–

This account of the origin of the Puranas is supparted by copious direct allusions to ancient tradition in the puranas, These might be cited from many puranas, but will be taken here chiefly from the vayu & Brahmanda which have the oldest version in such traditinol matters'[78]

इसी प्रकार के.पी. जायसवाल ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिस्ट्री आफ इंडिया' में पंचलक्षणों का पालन करने वाले पुराणों की ऐतिहासिक उपादेयता की ओर संकेत करते हुये उनमें वाकाटक तथा भारशिव राजपरम्परा के अध्ययन के लिये नवीन सामग्री दिखलाई है।[79] पंचलक्षणों का पालन करने वाले पुराणों में हरिवंश, ब्रह्म पुराण, मत्स्यपुराण, विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण भी आते हैं, किन्तु जायसवाल महोदय का संकेत यहाँ पर वायु पुराण की ऐतिहासिक सामग्री के लिये है। पुराणो की इस ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में भार शिव, वाकाटक तथा अन्य राजाओं का इतिहास अन्धकार मय ही रहता । इससे भी पुराणों की ऐतिहासिक महत्ता सिद्ध होती है।

वायु पुराण तथा ब्रह्मण्ड पुराण की परम्परा के बाद दूसरी प्रमाणिक ऐतिहासिक परम्परा हरिवंश तथा ब्रह्म पुराण की मानी गयी है।[80] इस श्रेणी में ब्रह्मपुराण, हरिवंश का अनुकरण करता हुआ दिखलाई देता है। दोनों पुराणों की वंशावलियों की तुलना करने पर इसका

कारण यह ज्ञात होता है कि ब्रह्म पुराण जहाँ एक अशुद्ध अथवा भ्रान्त मत प्रस्तुत करता है, वहाँ पर हरिवंश शुद्ध तथा निश्चित परम्परा का पोषक दिखलाई देता है। इसी कारण सुप्रसिद्ध विद्धान पार्जिटर ने अन्य अनेक पुराणों से तथा ब्रह्म पुराण से हरिवंश में दिये गये राजवंशों को अधिक प्रमाणिक माना है। इस संदर्भ मे पार्जिटर के विचार निम्नवत् हैं–

"The Harivansa is better than Brahma, for the latter has suffered through losses; thus it is manifestly incomplete in the North pancala genealogy and most copies of it omit the cedi Magadha dymasty descended from Kuru;" [81]

पुराणों की ऐतिहासिक सामग्री के क्षेत्र में सुप्रसिद्ध विद्धान किरफेल के विचार भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। किरफेल ने हरिवंश तथा ब्रह्म पुराण को ऐतिहासिक सामग्री के दृष्टि कोण से सर्वोच्च स्थान दिया है। उन्होंने पुराणों की प्राचीनता तथा अर्वाचीनता के अनुसार उनकी तीन श्रेणियाँ निर्धारित की है। ब्रह्म पुराण तथा हरिवंश इस प्रकार के पुराणों की प्रथम श्रेणी में आते हैं। वायुपुराण तथा ब्रह्मण्ड पुराण दूसरी श्रेणी के पुराण हैं। मत्स्य पुराण पुराणों की तीसरी श्रेणी में आता है। इन तीनों श्रेणियों में ब्रह्मपुराण तथा हरिवंश को किरफेल महोदय प्राचीनतम निश्चित करते हैं। इस सन्दर्भ में फिरफेल महोदय के विचारा निम्नवत् है–

"We find in the puranas these complete compositions of this lext, viz. That of the Brahma and the Harivansa. That of the Brahmanda and the Vayu, ant that of the Matsya. of the first named two compositions that of the Brahma and Harivansa is doutless the oldest, thus not of the Brahmanda- Vayu as Pargiter supposes" [82]

इस प्रकार किरफेल महोदय का यह कथन ब्रह्मपुराण तथा हरिवंश को वायु-पुराण तथा ब्रह्मण्ड पुराण के पाठ से निम्न सूचित करने वाले पार्जिटर के कथन का विरोध करता है। किरफेल महोदय का यह कथन हरिवंश तथा ब्रह्मपुराण के विषय में प्रामाणिक विचारों को प्रस्तुत करने के कारण पार्जिटर के कथन से अधिक विश्वसनीय ज्ञात होता है।

हरिवंश के प्रारम्भ से लेकर हरिवंश पर्व के उनतालीस अध्याय तक मान्वन्तरों तथा वंशों का वर्णन है। मन्वन्तर तथा वंशों के बीच विश्लेषणात्मक वृतान्तों के रूप में श्राद्धकल्प तथा राजाओं के चरित्रों के वृतान्त आ जाते हैं। श्राद्धकल्प और राजाओं के चरित्र चित्रण के

कारण राजवंश के वर्णन का क्रम टूट जाता है, किन्तु ' वंशानुचरित' शब्दार्थ के अनुसार वंश वर्णन के बीच में किसी राजा के चरित्र का वर्णन स्वाभाविक है।

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय,है कि हरिवंश में राजवंशों का वर्णन अन्य पुराणों के वंशवर्णन से भिन्न है। हरिवंश की वंशावली जनमेजय के बाद समाप्त हो जाती है। जबकि वायु पुराण, विष्णु पुराण तथा मत्स्य पुराण की वंशावलियाँ जनमेजय के बाद कलियुग के राजाओं का वंशक्रम भी प्रस्तुत करती है। हरिवंश के वंशक्रम में राजाओं के राज्यकाल का उल्लेख नहीं है जबकि वायु पुराण, विष्णु पुराण तथा मत्स्य पुराण में राजाओं के राज्य काल का स्पष्ट उल्लेख है। [83] इन पुराणों में भी राज्यकाल का उल्लेख केवल भविष्य कालीन राजाओ के वर्णन में हुआ है।

हरिवंश के वंशवर्णन की ये विशेषतायें इस पुराण की ऐतिहासिक सामग्री में नवीन तत्वों का समावेश करती हैं। हरिवंश के इस स्थल में जनमेजय के बाद के केवल तीसरी पीढ़ी के राजा अजपार्श्व से यह वंश समाप्त हो जाता है।[84] किन्तु ब्रह्मपुराण, वायु पुराण, मत्स्य पुराण तथा विष्णु पुराण, हरिवंश से भिन्न जनमेजय के बाद के राजाओं की एक लम्बी सूची देते हैं।[85] यहां पर हरिवंश अन्य पुराणों की प्रवृत्ति से भिन्न होने के कारण इन पुराणों से पूर्ववर्ती ज्ञात होता है। ब्रह्मण्ड पुराण तथा वायु पुराण परस्पर समानता रखने पर भी कुछ स्थलों में हरिवंश से भिन्न वंशावलियां देते हैं। उदाहरणार्थ–हरिवंश में काशी राजवंश के अन्तर्गत भर्ग तथा भार्गवों का स्पष्ट प्रसंग[86] ब्रह्मण्ड पुराण और वायु पुराण में अशुद्ध रूप में मिलता है।[87] वायु पुराण और विष्णु पुराण अतीत के राजवंश क्रम के वर्णन के बाद भविष्यकालीन राजाओं का वर्णन करते हैं। अतीत और भविष्य के बीच वर्तमान राजाओं के वर्णन से पुराणों के संग्रह काल पर थोड़ा बहुत प्रकाश पड़ता है। वायु पुराण में इक्ष्वाकुवंशी दिवाकर नामक राजा को 'वर्तमानकाल' में अयोध्या के शासक के रूप में माना गया है।[88] इसी प्रकर मगधवंशी राजाओं में सेनजित् वर्तमान राजा माना गया है। [89]

पौरव वंश परम्परा में अर्जुन के वंशज अधिसीमकृष्ण को वर्तमान कालीन राजा कहा गया है।[90] किन्तु इक्ष्वाकुवंशी दिवाकर, मगधवंशी सेनजित् और पौरव अधिसीमकृष्ण के एक ही काल में उल्लेख के आधार पर इन तीनों राजाओं की समकालीनता नहीं सिद्ध की जा

सकती। इन राजाओं के वंश का वर्णन करने वाले ये स्थल एक काल के न होने के कारण पूर्ववर्णित राजाओं की समकालीनता के पोषक नहीं हो सकते। अतः इन स्थलों में प्रयुक्त 'साम्प्रत' शब्द के द्वारा प्रत्येक स्थल के संग्रहकाल में जीवित राजा का ही ज्ञान होता है। हरिवंश में वर्तमान काल के राजा के उल्लेख का अभाव इस पुराण को अन्य पुराणों की साम्प्रत राजाओं के उल्लेख की परम्परा से भिन्न सूचित करता है। विष्णु पुराण में भी इक्ष्वाकु पौरव तथा मगध वंशी राजाओं की भविष्य कालीन वंशावली में क्रमशः दिवाकर, अधिसीमकृष्ण और सेनजित का नामोल्लेख है, किन्तु विष्णु पुराण में इन राजाओं को 'साम्प्रत' राजा नहीं कहा गया है।

इस प्रकार हरिवंश में राज्यकाल के उल्लेख का अभाव तथा वायु पुराण, विष्णु पुराण और मत्स्य पुराण में इनका स्पष्ट उल्लेख हरिवंश को वायु पुराण तथा मत्स्य पुराण की परम्परा से भिन्न कर देता है। भविष्य कालीन राजाओं के राज्यकाल का उल्लेख करके यह पुराण ऐतिहासिक क्षेत्र में बहुत प्रकाश डालते हैं। प्राग्बौद्ध इतिहास के प्रमाणिक स्त्रोतों के अभाव के कारण इतिहासज्ञ लोग इन पुराणों के तिथिक्रम को ही आधार मानते हैं।

इस प्रकार हरिवंश में वायु पुराण, ब्रह्मण्ड पुराण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण तथा भागवत पुराण की भांति कलियुग के राजाओं की लम्बी वंशावली नहीं मिलती, किन्तु प्राचीन राजाओं के वृत्तों को विशुद्ध रुप इस पुराण के वंशवर्णन की विशेषता है। इसके अतिरिक्त अन्य पुराणों से समानता रखते हुये भी हरिवंश की ऐतिहासिक परम्परायें अपनी विशेषता रखती है। हरिवंश के वंशक्रमों में भी वायुपुराण, ब्रह्मपुराण, मत्स्य पुराण तथा विष्णु पुराण के वंशक्रमों से भिन्न प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। वायु पुराण, ब्रह्मपुराण, मत्स्यपुराण तथा विष्णु पुराण में अतीत कालीन राजाओं के अतिरिक्त वर्तमान तथा भविष्य काल के राजाओं का लम्बा वंशक्रम भी मिलता है। परीक्षित के आगे की भविष्यकालीन वंशावली भारतीय सुव्यवस्थित इतिहास के प्राचीन राजाओं की निकटवर्ती होने के कारण अधिक महत्व रखती है, किन्तु हरिवंश में परीक्षित के उत्तराधिकारी राजाओं का बहुत छोटा और अन्य पुराणों से भिन्न वंशक्रम मिलता है। हरिवंश में परीक्षित के बाद के पांचवी पीढ़ी के राजा अजपार्श्व से इस वंश की समाप्ति हो जाती है।

हरिवंश के अन्तर्गत काशी राजवंश अन्य सभी पुराणों से भिन्न रुप में दिखलाई देता है। वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण प्रवर्तन के दो पुत्रों

(वत्स भार्ग) के विषय में अस्पष्ट दिखलाई देते हैं।[91] हरिवंश के प्रतर्दन के दो पुत्र–वत्स तथा भार्ग से चलने वाला वंशक्रम स्पष्ट रुप से मिलता है। प्रतर्दन के पहले पुत्र वत्स के दो पुत्रों से अलग–अलग वंशक्रम चलता है। वत्स का प्रथम पुत्र वत्सभूमि है। वत्स के द्वितीय पुत्र अलर्क से यह वंश आगे बढ़ता है। भर्ग इस वंश का अन्तिम राजा है। प्रतर्दन के द्वितीय पुत्र भार्ग के पुत्र भृगुभूमि से यह वंश समाप्त हो जाता है।[92] यह वंश सभी पुराणों के वंशों से अधिक सुसम्बद्ध होने के कारण सबसे अधिक प्रामाणिक ज्ञात होता है।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि सुप्रसिद्ध विद्वान किरफेल ने अपने अध्ययन में हरिवंश के वंशविषयक तत्वों की मौलिकता सप्रमाण सिद्ध की है। हरिवंश की मौलिकता की सूचना देने के लिये उन्होने ययाति के वृतान्त को उदाहरण के रुप में प्रस्तुत किया है। ययाति का वृतान्त ब्रह्मपुराण और हरिवंश में मूल रुप में मिलता है। इन दोनों पुराणों में ययाति का चरित्र अत्यन्त संक्षिप्त है।[93] ययाति का यही चरित्र वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण में कुछ विस्तृत हो गया है।[94] मत्स्य पुराण में यह चरित्र सबसे अधिक विस्तृत रुप में मिलता है।[95] ययति के चरित्र के द्वारा किरफेल महोदय ने ऐतिहासिक मूल तत्व में बाद में जोड़े गये भागों की जो क्रमागत रुपरेखा प्रस्तुत की है उससे इन सभी पुराणों की ऐतिहासिक विषय सामग्री की स्थिति का ज्ञान होता है।

पौराणिक प्रयोजनों की दृष्टि से हरिवंश तथा अन्य पुराण :-

यद्यपि हरिवंश महाभारत के खिलपर्व के रुप में सर्वमान्य है, किन्तु इसके वर्तमान रुप का अनुशीलन करने पर इसे केवल खिल ही नहीं कहा जा सकता। हरिवंश में पुराण पंचलक्षण पूर्णता के साथ मिलते हैं। पंचलक्षण के सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित हरिवंश के सृष्टि सम्बन्धी वृतान्तों, राजवंश वर्णनों तथा विविध आख्यान और उपाख्यानों में मिलते हैं। अतः पुराण पंचलक्षण का अनुसरण करने के कारण पुराण की समस्त सामग्री हरिवंश में विद्यमान है।

पुराण पंचलक्षणों का पालन करने के कारण हरिवंश के अनेक स्थल अन्य पुराणों के इसी प्रकार के स्थलों से समानता रखते हैं। पौराणिक सामग्री की प्रधानता को देखते हुये हरिवंश का विकास एक पुराण के रुप में हुआ ज्ञात होता है। सुप्रसिद्ध विद्वान विण्टरनित्स

ने हरिवंश के पुराण होने का प्रमाण ब्रह्म पुराण, पदम् पुराण, विष्णु पुराण, भागवत पुराण और वायु पुराण के उन विशेष प्रसंगों के आधार पर दिया है जो हरिवंश के इन्हीं खण्डों से समानता रखते हैं।[96]

स्वतन्त्र वैष्णव पुराण के रुप में हरिवंश से अनेक विद्वान परिचित है। सुप्रसिद्ध विद्वान फरक्युटर ने अपने ग्रन्थ में हरिवंश की गणना महापुराणों में की है। उनके अनुसार पुराण पंचलक्षण के पालन तथा मौलिक पुराण होने के कारण हरिवंश बीसवाँ महापुराण माना जाना चाहिये।[97]

उत्तरकालीन अनेक ग्रन्थों में हरिवंश को प्रामाणिक वैष्णव ग्रन्थ के रुप में स्वीकार कर लिया गया है। अग्निपुराण में प्राचीन मान्य ग्रन्थों की सूची के अन्तर्गत रामायण, महाभारत तथा पुराणों के साथ हरिवंश का नामोल्लेख मिलता है।[98]

इसी प्रकार गरुड़ पुराण में महाभारत तथा हरिवंश का संक्षिप्त कथासार मिलता है।[99] इससे सिद्ध होता है कि गरुड़ पुराण के काल तक महाभारत की भांति हरिवंश का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित हो चुका था। वह महाभारत के केवल खिल रुप में नहीं रह गया था।

पुराणलक्षण के अन्तर्गत आने के कारण वंशावलियाँ लगभग सभी प्रारम्भिक पुराणों में मिलती हैं। पुराणलक्षण का पालन न करने वाले अर्वाचीन पुराणों में वंशावलियों का स्थान प्रायः नगण्य है। पुराण–पंचलक्षण का पालन करने वाले पुराणों में हरिवंश, ब्रह्मपुराण, वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण तथा भागवत पुराण प्रमुख हैं। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हरिवंश तथा ब्रह्मपुराण की वंशावलियाँ बहुत अधिक समानता रखती है, जबकि वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण की वंशावली हरिवंश तथा ब्रह्म पुराण से भिन्न परम्परा को प्रस्तुत करती है। मत्स्य पुराण, वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण से अनुप्राणित ज्ञात होता है। भागवत पुराण तथा विष्णु पुराण राजाओं के वंशवृत्तों का चित्रण करते हुये भी वंशवृत्तों की दृष्टि से अधिक विश्वसनीय नहीं माने जा सकते। वंशावलियों की तुलना करने पर विष्णुपुराण तथा भागवत पुराण की वंशावलियों में काल्पनिकता का अंश अधिक दिखलाई देता है। इन दो पुराणों की वंशावलियाँ हरिवंश, ब्रह्म पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, वायु पुराण तथा मत्स्य पुराण की वंशालियों के बिगड़े पाठ को प्रस्तुत करती हैं, किन्तु गुप्त राजाओं की वंशावली को प्रस्तुत करने के कारण

विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण भी ऐतिहासिक दृष्टि से मान्य पुराण हैं।

जहाँ तक 18 पुराणों के वर्गीकरण का प्रश्न हैं तो अष्टादश पुराणों के वर्गीकरण अनेक प्रकार से किये गये हैं। भिन्न–भिन्न पुराणों ने इस विषय में भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण अपनाये हैं। पुराण के पंचलक्षण को आधार मानकर प्राचीन और प्राचीनोत्तर ये दो विभाग किये गये हैं इस विभाजन के अनुसार वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, मत्स्य पुराण और विष्णु पुराण प्राचीन पुराण ज्ञात होते हैं। क्योंकि इन चारों में पुराण के पाँचो विषय उचित मात्रा में वर्णित है। इनसे भिन्न पुराणों को प्राचीनोत्तर पुराणों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।[100] पुराणों का एक अन्य वर्गीकरण देवता के विचार या गुणों के अनुसार भी किया गया है। पदम्पुराण के अनुसार– ''मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द, अग्नि–ये छः पुराण तामस है। ब्राह्मण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्म ये छः राजस पुराण हैं तथा विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म और बाराह–ये छः सात्विक पुराण माने गये हैं।[101] यह वर्गीकरण विष्णु को सात्विक देव मानकर किया गया है यहाँ तामस, राजस तथा सात्विक पुराणों की समान संख्या निर्धारित है। इस क्रम में हरिवंश पुराण भी पौराणिक प्रयोजनों की पूर्ति करता है जो उद्देश्य रखकर 18 पुराणों की रचना की गई है उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति हरिवंश से भी होती है। अतः हम कह सकते हैं कि पौराणिक प्रयोजनों की दृष्टि से हरिवंश एक महत्वपूर्ण पुराण हैं।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. हरिवंश पुराण, 1.30.38 महाभारत, 1.60.51–53 भागवत पुराण, 9.19.13–17 मत्स्य पुराण, 34.10:, विष्णु पुराण 4.10.23.
2. विष्णु पुराण, 5.13.
3. भागवत पुराण, 10.8.10.29–33.
4. हरिवंश पुराण, 2.20.
5. विष्णु पुराण, 5.13: भागवत पुराण, 10.29–33: पद्मपुराण, पाताल: 69–83: ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्री कृष्ण 28
6. ब्रह्मपुराण, 210–212 विष्णु पुराण, 5.37 भागवत पुराण, 11.1–30: पदम् पुराण, उत्तर 279.
7. हरिंवश पुराण, 2.102.32.
8. वहीं, 2.88.89.
9. भागवत पुराण, 10.90.1–8.15.
10. हरिवंश पुराण, 2.88–89. 91–97.
11. वहीं, 3.90.17. 20–21.
12. छान्दोग्य उपनिषद, 3.17.
13. गीता 13.17.
14. विण्टरनित्स, एम, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग–1 कलकत्ता, 1927 पृष्ठ 456–457 जैकोबी, इन साइक्लोपीडिया आफ रेलिजन ऐण्ड एथिक्स, भाग–7, बम्बई, पृष्ठ 195:, कीथ, जर्नल आफ रॉयल एसियाटिक सोसाइटी, लन्दन, 1915 पृष्ठ 548.
15. विष्णु पुराण, 5.3.12: 20.96–105: भागवत पुराण, 10.3.13–22, 24–31: 14. 1–40.
16. हरिवंश पुराण, 1.51. 1–33.
17. वहीं, 1.52. 14–50, ।

18. वही, 1.55 18–48 ।

19. विण्टनित्स, एम, पूर्वोद्वत, पृष्ठ 460: हाजरा, आर0सी0 पुराणिक रिकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, ढाका, 1940, पृष्ठ 23, 64: रायचौधरी हेमचन्द्र, दि अर्ली हिस्ट्री आफ दी वैष्णव सेक्ट, कलकत्ता, 1920, पृष्ठ 65.

20. हरिवंश पुराण, 3.77.90: विष्णु पुराण, 2.11.6.8 ब्रह्माण्ड पुराण, अनुषंग 25–20, उपोद्वात. 72: मत्स्य पुराण, 180–181, 244–288 वायु पुराण, 15.20.23–25: ब्रह्मपुराण, 34–30, 57–69.

21. हरिवंश पुराण, 2.127.72.84.3.16.7.28.8.88.90.

22. विष्णु पुराण, 1.2.14–70.

23. वहीं, 1.22. 55–65.

24. वहीं, 1.15. 57.

25. वहीं, 1.14. 58.

26. भागवत पुराण, 29 8–9.

27. महाभारत, 12. 312–340.

28. हरिवंश पुराण, 2.121.16.

29. ब्रह्मपुराण, 192: भागवत पुराण, 10.40.21 विष्णुपुराण, 5.18..58: पद्म पुराण, उत्तर, 272.313 314.

30. पदम् पुराण सृष्टि खण्ड, 1.61.

31. वहीं, 39–40.

32. महाभारत, 2.35. 1–213.

33. हाजरा, आर0सी0 पूर्वोद्वत, पृष्ठ 41.

34. देवी भागवत, 4.6.

35. ब्रह्मपुराण, 213.29–166.

36. भागवत पुराण, 2.17.

37. बाराह पुराण, 4.2 .

38. बृहदधर्म पुराण, मध्य 41.

39. अग्नि पुराण, 16,21–23, 25, 38: मार्कण्डेय पुराण, 42–60, 165, 222, 5,22, 151–154 224.

40. ब्रहदधर्म पुराण पूर्व, 5–60

41. हरिवंश पुराण, 2.88.4:, महाभारत,12 331 विष्णु पुराण,5.37 भागवत पुराण,1.1.4

42. हरिवंश पुराण, 2.77.81.

43. विष्णु पुराण, 5.30.31 पद्म पुराण, उत्तर–90:. भागवत पुराण, 10.59.38–40: देवी भागवत,4.25.25 रा0

44. ब्रह्मपुराण 204.

45. विष्णु पुराण, 5.31.

46. भागवत पुराण, 10.59.38–40.

47. हरिवंश पुराण, 2.89.66–83: 2.93.24.

48. वहीं, 2.93.

49. ब्रह्मपुराण,189.20.

50. विष्णु पुराण,5.13.

51. भागवत पुराण, 10.29.2.

52. वही 10.33.8.

53. पद्म पुराण, पाताल, 69, 87–118.

54. ब्रह्मवैवर्त पुराण–कृष्णजन्म, 28–55.

55. भागवत पुराण,10.90.1–8.

56. हरिवंश पुराण, 2.77.81.

57. विष्णु पुराण,5.30.31: पद्म पुराण उत्तर 90 भागवत पुराण,10.59.38–40 देवी भागवत, 4.25. 25.27.

58. ब्रह्म पुराण,204.

59. विष्णु पुराण, 5.31.

60. भागवत पुराण,10.59. 38—40.

61. देवी भागवत, 4.24.

62. हरिवंश पुराण, 2.76. 5—8.

63. पद्म पुराण उत्तर खण्ड, 9.38—39.

64. हरिवंश पुराण, 2.78. 15—17.

65. वहीं, 1.27.53.

66. वहीं, 1.29.8.

67. वहीं ,1.29.83.

68. वहीं, 1.32.40.

69. वहीं, 1.32.5.

70. वहीं, 1.31. 33—35.

71. वहीं, 3.3. 13—14.

72. भागवत पुराण, 7.11.24.

73. विष्णु पुराण, 3.32.34.

74. अग्नि पुराण, 227. 41—46.

75. बृहद्धर्म पुराण उत्तरः 20.44—48ः 4.1 28ः 31, 37.

76. वहीं, पूर्वः 30.10.

77. वहीं, उत्तर 42.19.

78. पार्जिटर, एफ0ई0 ऐंशिएन्ट इंडियन हिस्टारिकल ट्रेडीसन्स, आक्सफोर्ड, 1922, पृष्ठ 24.

79. जायसवाल के0पी0 हिस्ट्री आफ इंडिया लाहौर 1934, पृष्ठ 32.

80. वही पृष्ठ 24.

81. पार्जिटर, एफ0ई0 पूर्वोद्वत, पृष्ठ 78.

82. रामानुज, जर्नल आफ वेंकटेश्वर ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट तिरुपति, वाल्यूम नं0 1 पृष्ठ—29.

83. वायु पुराण, उत्तर0 अनु0 37.255—256:, 291—418:, विष्णु पुराण, 4.21—24: मत्स्य पुराण, 50, 69—70.

84. हरिवंश पुराण, 3.1.3—16

85. ब्रह्मपुराण,13.123—138: वायु पुराण अनुषंग, 37.248 252 मत्स्य पुराण,50 63—80 विष्णु पुराण, 4.21 1—8

86. हरिवंश पुराण, 1.29.7.10,28—29,72—82.

87. ब्रह्माण्ड पुराण, उपो 67.60.79 वायु पुराण, उत्तर 30.64.75

88. वायु पुराण, उत्तर0 अनु0 37.276.

89. वहीं, 2 अनु 37. 294.

90. वहीं, 2 अनु 37.252.

91. वहीं, उत्तरः, 30. 64—75: ब्रह्मण्ड पुराण, उपो0, 67.67.79: विष्णु पुराण 4.8 12—21: भागवत पुराण,9.17. 2—9.

92. हरिवंश पुराण, 1.29.29—34,72—82.

93. वहीं, 1.30 4—46: ब्रह्मपुराण 12.18—47.

94. वायु पुराण 93.15—102: ब्राह्मण्ड पुराण, उपो0 67.

95. मत्स्य पुराण, 24—42.

96. विण्टर नित्स, एम0हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर भाग—1 कलकत्ता 1927 पृष्ठ 454.

97. फरक्यूटर जे0एस0 एन0 आउटलाइन आफ दि रेलीजियस लिटरेचर आफ इंडिया आक्सफोर्ड 1920. पृष्ठ 136

98. अग्नि पुराण, 383, 52—53.

99. गरुड़ पुराण, पर्व 144.

100. उपाध्याय, बलदेव, पुराण विमर्श, तृतीय संस्करण, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 91—92.

101. पद्म पुराण, उत्तरखण्ड, 163. 81—84.

तृतीय अध्याय

- ❖ वर्ण
- ❖ आश्रम
- ❖ संस्कार
- ❖ वेशभूषा
- ❖ आभूषण
- ❖ खाना—पान
- ❖ रहन—सहन, समाज का स्तर
- ❖ रीति रिवाज, सामाजिक उत्सव
- ❖ अधं-विश्वास
- ❖ शिक्षा
- ❖ स्त्रियों की स्थिति

हरिवंश पुराण में वर्णित समाज

पुराण प्राचीन भारत के सामाजिक अध्ययन के लिये प्रमाणिक स्त्रोत हैं। इनकी इस विशेषता का परिचय पुराण लक्षण से मिल जाता है पुराणों के पंच लक्षण सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित सामाजिक जीवन से अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है पंच लक्षणों के अन्तर्गत विविध वृतान्त–आख्यान, उपाख्यान और गाथाओं में समाज की विभिन्न अवस्थाओं के दर्शन होते हैं। यही बात हरिवंश पुराण के संदर्भ में भी लागू होती है। किसी भी समाज का अध्ययन प्रमुख रूप से निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है– वर्ण, आश्रम, संस्कार, वेशभूषा, खान–पान, रहन–सहन, रीति रिवाज, अंधविश्वास, शिक्षा स्त्रियों की स्थिति, सामाजिक उत्सव, समाज का स्तर आदि।

हरिवंश पुराण में वर्णित समाज का अध्ययन भी उपर्युक्त शीर्षकों के अन्तर्गत सरलता से किया जा सकता है।

वर्ण व्यवस्था :-

प्राचीन हिन्दू शास्त्रकारों ने वर्ण व्यवस्था का विधान समाज की विभिन्न श्रेणियों में लोगों के कार्यों का उचित बटवारा करके सामाजिक संगठन बनाये रखने के लिये किया ताकि प्रत्येक मनुष्य अपने–अपने निर्दिष्ट कर्त्तव्यों का पालन करते हुये आपसी मतभेदों एवं वैम्नस्य से मुक्त होकर अपना तथा समाज का पूर्ण विकास कर सके। यह सामूहिक पद्धति से व्यक्ति के उन्नति की योजना है जो भारतीय समाज की अपनी व्यवस्था है। इसके द्वारा व्यक्ति परिवार समुदाय, समाज तथा देश के प्रति अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करता था। इसके द्वारा सामाज में एक स्वस्थ्य वातावरण उत्पन्न होता था तथा वर्ग– संघर्ष एवं उच्छखलन प्रतिस्पर्दा की संभावना समाप्त हो जाती थी।

'वर्ण' शब्द संस्कृत की 'वृ' धातु से निकला है जिसका शाब्दिक अर्थ वरण करना या चुनना है इस प्रकार वर्ण से तात्पर्य वृत्ति अथवा व्यवसाय चयन से है। वर्ण का एक अर्थ रंग भी है तथा इस अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग कहीं–कहीं मिलता है। ऋगवेद में वर्ण शब्द का पहली बार प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है, जहाँ आर्यों ने अपने को श्वेत वर्ण तथा

दास–दासियोंको कृष्णवर्ण का बताया है।[1] कलान्तर में यह शब्द वृत्ति का सूचक बन गया तथा व्यवसाय के आधार पर समाज में वर्णों का विभाजन किया गया। तत्पश्चात उनमें कठोरता आई तथा व्यवसाय के स्थान पर जन्म को आधार मान लिया गया जिसके फलस्वरूप वर्ण जाति में परिणत हो गये।

प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति सम्बन्धी विविध उल्लेख प्राप्त होते हैं। इनमें सर्व प्रथम इसे दैवी व्यवस्था मानने का सिद्धान्त है जिसका प्रतिवादन ऋग्वेद, महाभारत तथा पुराणों आदि में मिलता है। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में चारों वर्णों को विराट पुरूष के चारों अंगों से उत्पन्न कहा गया है। 'तद्नुसार–उसके मुख से ब्राहम्ण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघे से वैश्य तथा पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई है।' यथा–

"ब्राहम्णोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरुतदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत।।"[2]

चातुर्वर्ण व्यवस्था का यह प्राचीनतम उल्लेख है। यहाँ सम्पूर्ण सामाजिक संगठन एक शरीर के रूप में कल्पित किया गया है जिसके विभिन्न अंग समाज के विविध वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मुखवाणी का स्थान है, अतः ब्राम्हणों की उत्पत्ति मानव जाति के शिक्षक के रूप में हुई। भुजायें शौर्य एवं शक्ति का प्रतीक है, अतः क्षत्रिय का कार्य हथियार ग्रहण करके मानव जाति की रक्षा करना है। जंघा शरीर के निचले भाग का प्रतिनिधि है। इससे तात्पर्य संभवतः उस भाग से है, जो अन्न ग्रहण करता है। अतः वैश्य की उत्पत्ति मानव जाति को अन्न प्रदान करने के लिये मानी गई पैर शरीर के भारवाहक है, अतः शूद्र की उत्पत्ति समाज का भारवहन करने अर्थात अन्य वर्णों की सेवा करने के निमित्त हुई है। ऋग्वेद की यह वर्ण विषयक अवधारणा श्रम–विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें प्रत्येक वर्ण के कार्य का महत्व है। इसे दैवी आधार प्रदान करने के पीछे यह मान्यता रही कि ईश्वर की शक्ति से डरकर सभी इसके अनुसार आचरण करेंगे तथा कोई भी इसका उल्लंघन करने का साहस नहीं करेगा।

ऋग्वेद के उपर्युक्त सिद्धान्त का समर्थन महाभारत ,गीता, पुराण आदि ग्रन्थों में प्राप्त होता है। महाभारत में विराट पुरूष के स्थान पर ब्रम्हा की कल्पना की गई है तथा उसके विविध अंगों से चारों वर्णों की उत्पत्ति बताई गई है। यथा–

" ब्राम्हणों मुखतः सृष्टो ब्राम्हणां राजसत्तम।

बाहुभ्यां क्षत्रियः सृष्ट उरूभ्यां वैश्य एवं च।।

वर्णानां परिचायार्थ त्रयाणां भरतर्षभ्।

वर्णश्चतूर्थ : संभूत पद्भ्यां शूद्रो विनिर्मित :।।[3]

गीता में भगवान कृष्ण ने स्वयं को चारो वर्णों का कर्ता तथा विनाशक बताया है । यथा–

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं, गुणकर्म विभागशः।

तस्य कर्त्तारमपि मां विद्धयकर्तार मव्ययम्।।"[4]

मनुस्मृति तथा पुराण भी वर्ण व्यवस्था की दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। पुराण ब्राह्म के स्थान पर विष्णु को इस व्यवस्था का जनक मानते हैं। यथा–

" त्वन्मुखाद् ब्राम्हाणस्त्वत्तों बाहोः क्षत्रमजायत।

वैश्यास्तवोरूजाः शूद्रास्तव पदभ्यां समुद्गताः।।"[5]

किन्तु वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति का दैवी सिद्धान्त आधुनिक परिप्रेक्ष्य में तर्कसंगत नहीं लगता। प्राचीन साहित्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ण का सम्बन्ध देवता की अपेक्षा गुण तथा कर्म से अधिक था। वस्तुतः कर्म ही इस व्यवस्था की उत्पत्ति में प्रधान तत्व प्रतीत होता है। गीता में कृष्ण ने कहा है कि चारों वर्णों की उत्पत्ति गुण तथा कर्म के आधार पर चारों वर्णों की उत्पत्ति हुई है। यथा–

"चातुर्वर्ण्य मया सृश्टं गुणकर्म विभागशः।

तस्य कर्त्तारमपि मां विद्धय कर्तार मव्ययम् ।।"[6]

गुण तीन बताये गये हैं– सतोगुण (सत्व), रजोगुण (रज) तथा तमोगुण (तम) सतोगुण ज्ञान, रजोगुण राग (आसक्ति) तथा तमोगुण अज्ञान अथवा अंधकार का सूचक बताया गया है। प्रत्येक प्राणी में प्रकृति के अनुसार कोई न कोई गुण अवश्य विधमान् रहता है। अतः जिसमें सत्व की प्रधानता है वह ब्राम्हण, जिसमें रज की प्रधानता है वह क्षत्रिय जिसमें रज तम की प्रधानता है वह वैश्य तथा जिसमें केवल तम की प्रधानता है वह शूद्र होता है।

चातुर्वर्ण की उत्पत्ति विषयक कर्म का सिद्धान्त सबसे महत्वपूर्ण है। ऋग्वेद से

पता चलता है कि पहले समाज में केवल दो वर्ण थे आर्य वर्ण तथा दस वर्ण।[7] कालान्तर में कर्मों के आधार पर इनके विभेद हुये। जब आर्य भारत में बस गये तो उन्होंने भिन्न–भिन्न कर्मों के आधार पर विभिन्न वर्गों का विभाजन किया। जो व्यक्ति यज्ञादि कर्म कराते थे उन्हें ब्रम्हा, जो युद्ध में निपुण थे तथा लोगों को सुरक्षा प्रदान करने में समर्थ थे, उन्हें क्षत्र (क्षत्रिय) नाम दिया गया। शेष जनता को विश कहा गया।[8] वर्ण व्यवस्था का यह प्रारम्भिक स्वरूप था। कालान्तर में शूद्र नामक चौथा वर्ण इसमें जोड़ दिया गया। ऋग्वेद के दशवें मण्डल के पुरूष सूक्त में सर्वप्रथम इस वर्ण का उल्लेख मिलता है।[9] प्रारम्भ में विद्वानों का विचार था, कि आर्यों ने यहाँ के निवासियों को पराजित कर दास बना लिया तथा उन्हीं को अपनी समाजिक व्यवस्था में निम्नतम स्थान देते हुये 'शूद्र' की संज्ञा प्रदान की, किन्तु इस प्रकार का विचार तर्क संगत नहीं लगता। सुप्रसिद्ध इतिहासकार 'राम शरण शर्मा' ने शूद्रों की उत्पत्ति के ऊपर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालते हुये मत व्यक्त किया है, कि वस्तुतः इस वर्ष में आर्य तथा अनार्य दोनों ही वर्गों के व्यक्ति सम्मिलित थे। आर्थिक तथा सामाजिक विषमताओं ने दोनों ही वर्गों में श्रमिक वर्ग को जन्म दिया। बाद में सभी श्रमिकों को शूद्र कहा जाने लगा। आर्य शिल्पियों के अनेक वंशज, जो अपने प्राचीन व्यवसाय में ही लगे रहे, भी शूद्र समझे जाने लगे।[10]

महाभारत के शान्तिपर्व तथा कुछ पुराणों में भी वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति में कर्म की महत्ता स्वीकार की गई है। महाभारत के अनुसार पहले समाज में केवल ब्रम्हा अर्थात, ब्राम्हण वर्ण का ही अस्तित्व था, बाद में कर्मों की विभिन्नता के कारण अन्य वर्ण उत्पन्न हो गये। यथा–

"न विशेषाऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्रम्हमिदं जगत्।

"ब्राम्हणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिवर्णतां गतम्।।"[11]

वायु पुराण का कथन है कि समाज के विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति पूर्ण जन्म के कर्मों के आधार पर हुई है यथा–"

ब्राम्हणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा द्रोहिजनास्तथा।

भाविताः पूर्वजातीषु कर्मभिश्च शुभाशुभैः।।"[12]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्णव्यवस्था के प्रारम्भिक स्वरूप के निर्माण में कर्म ही मुख्य तत्व था। महाकाव्यों के समय (ई0पू0 पांचवीं शदी के लगभग) तक आते–आते इसका

आधार जन्म मान लिया गया तथा वर्णों के स्थान पर विभिन्न जातियों की उत्पत्ति हो गई।

वर्ण व्यवस्था का विकास-

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि ऋग्वैदिक समाज में प्रारम्भ में केवल तीन वर्ण थे– ब्रम्हा, क्षत्र तथा विश। इस काल के अंत में हम शूद्र वर्ण का उल्लेख पाते हैं। इस समय विभिन्न वर्णों के व्यवसाय, खान, पान, विवाह, आदि के ऊपर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था और एक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण की वृत्ति अपना सकता था। इस समय तक वर्णों में कठोरता नहीं आने पाई थी। ऋग्वेद में एक स्थान पर एक ऋषि कहता है– मैं कवि हूँ। मेरा पिता वैध है तथा मेरी माता अन्न पीसने का कार्य करती है। साधन भिन्न है,किन्तु सभी धन की कामना करते हैं।[13] इससे स्पष्ट है कि एक ही परिवार के व्यक्ति भिन्न–भिन्न व्यवसाय ग्रहण कर सकते थे। इसी प्रकार विभिन्न वर्णों के बीच खान–पान एवं अन्त विवाह के ऊपर भी किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नही था। वस्तुतः ऋग्वैदिक समाज की वर्ण व्यवस्था उन्मुक्त थी। यह जन्म अथवा वंश पर आधारित न होकर व्यक्ति के गुण और कर्म पर ही आधारित थी।

उत्तर वैदिक काल तक आते–आते समाज में चारों वर्णों की स्पष्टः प्रतिष्ठा हुई। इस समय ब्राहम्ण, आरण्यक, उपनिषद आदि ग्रन्थ लिखे गये। इस काल के समाज में हम पहली बार विभिन्न वर्णों के बीच भेदभाव पाते हैं। ब्राम्हण क्षत्रिय तथा वैश्य की पहचान के लिये अलग–अलग प्रकार के यज्ञोपवीत (जनेऊ) का विधान किया गया। ब्राम्हण को सर्वोच्च मानते हुये उसे देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया।[14] वह समस्त धार्मिक क्रियाओं का नियंता था। उसके बिना कोई भी धार्मिक कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता था, वहीं राजा का पुरोहित होता था। समाज में दूसरा स्थान क्षत्रियों का था जो युद्ध रक्षा शासन आदि करते थे कुछ क्षत्रिय शासक जैसे जनक आदि अपने दार्शनिक ज्ञान के लिये भी प्रसिद्ध थे। तीसरा स्थान वैश्य वर्ण का था। तैत्तिरीय संहिता में उसका मुख्य उद्यम कृषि तथा पशुपालन बताया गया है।[15] वह याज्ञिक क्रियाओं में भी सहयोग प्रदान करता था। समाज के उपर्युक्त तीन वर्णों में हम पारस्परिक सहयोग एवं घनिष्टता पाते हैं। छान्दोग्य उपनिषद तथा शतपथ ब्राम्हण में तीनों वर्णों के बीच सहयोग की कामना व्यक्त की गयी है।[16] शूद्र वर्ण को इस समय एक पृथक वर्ण के रूप में मान्यता मिली। उसे तीनों वर्णों का सेवक बताया गया तथा धार्मिक क्रियाओं के अयोग्य घोषित

किया गया। किन्तु शूद्रों की स्थिति उतनी निम्न नहीं थी जितनी कि सूत्रों एवं स्मृतियों के काल में हो गयीं उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। इस काल के कुछ ग्रन्थों में आर्य पुरूष तथा शूद्र कन्या के बीच विवाह का भी उल्लेख प्राप्त होता है। उत्तर वैदिक काल के कुछ ऋषि शूद्रा कन्याओं से ही उत्पन्न हुये थे। उदाहरणार्थ—पराशर ऋषि श्वपाक नारी से, व्यास ऋषि धीवर कन्या से वसिष्ठ ऋषि गणिका से कपि जबाद चण्डाल नारी से ऋषि मदन पाल नाविक स्त्री से जन्मे थे।[17] इन उल्लेखों से इस बात की सूचना मिलती है, कि यद्यपि वर्णों के बीच भेद—भाव की भावना का उदय हो गया था यद्यपि वर्ण व्यवस्था में अभी उतनी जटिलता नहीं आने पायी थी।

सूत्रों के काल (ई0पू0 600—300) में वर्ण व्यवस्था को सुनिश्चित आधार प्रदान किया गया और प्रत्येक वर्ण के कर्त्तव्यों का निर्धारण हुआ। राजा को सलाह दी गई कि वह वर्णधर्म की रक्षा करे। वर्ण का आधार कर्म न मानकर जन्म माना गया तथा ऊँच—नीच की भावना का विकास हुआ। विभिन्न वर्णों के लिये दण्डों की अलग—अलग व्यवस्था की गयी। एक ही अपराध में ब्राम्हण, क्षत्रिय तथा वैश्य को अलग—अलग दण्ड मिलता था। ब्राम्हण के अधिकार तथा सुविधायें बढ़ा दी गयी एवं शूद्रों को अत्यन्त हीन स्थिति में ला दिया गया। उसे प्रथम तीन वर्णों की दया पर छोड़ दिया गया तथा उसके समस्त अधिकार एवं सुविधायें जाती रहीं। बौधायन के अनुसार उसकी हत्या करने वाले के लिये उसी दण्ड की व्यवस्था थी जो किसी कौवे, उल्लू, मेठक अथवा कुत्ते आदि की हत्या करने में।[18] वसिष्ठ धर्म सूत्र में शूद्र को श्मशान के सामान अपवित्र कहा गया है।[19] वह विद्याध्ययन तथा संस्कारों से वंचित हो गया किन्तु गौतम धर्म सूत्र में "वार्त्ता" को शूद्र का वर्ण धर्म बताया गया है[20] इससे सूचित होता है कि वे कुछ सीमा तक कृषि भी करने लगे थे। इसी काल में जैन एवं बौद्ध आदि निवृत्ति परक सम्प्रदायों का उदय हुआ। इन्होंने जन्मना वर्ण व्यवस्था का विरोध किया तथा उसका आधार कर्म बताया। क्षत्रियों तथा वैश्यों की सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ी और अब वे श्रेष्ठता में ब्राम्हणों की बराबरी करने लगे। बौद्ध साहित्य क्षत्रिय को ब्राम्हण की अपेक्षा श्रेष्ठतर बताता है।[21] वैश्यों के पास अतुल सम्पत्ति संचित हो गयीं।[22] किन्तु शुद्रों की स्थिति यथावत रही। वे सभी अधिकारों एवं संस्कारों से रहित थे। बौद्धधर्म ने यद्यपि जाति प्रथा का विरोध किया तथापि उसे विशेष सफलता नहीं

मिली।

महाकाव्यों में वर्ण व्यवस्था का जो स्वरूप मिलता है वह उत्तर वैदिक काल जैसा है। महाभारत के एक दो उल्लेखों से प्रकट होता है कि शूद्रों के प्रति कुछ उदार दृष्टिकोण अपनाया जाने लगा था। विदुर,कायव्य, मतंग आदि कुछ शूद्रों ने इस समय अपने सत्कर्मों से समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर लिया था।[23] शूद्र के लिये सीमित पैमाने पर कृषि एवं व्यापार की भी अनुमति दे दी गयी।[24] युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ के अवसर पर कुछ शूद्र प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित किया था।[25] यह सब इस बात का सूचक है,कि शूद्र के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदल रहा था। अर्थशास्त्र में चारों वर्णों तथा उनके कर्त्तव्यों का निरूपण मिलता है।[26] इससे सूचित होता है कि समाज में वर्णाश्रम धर्म को स्थापित करना राजा का परम कर्त्तव्य था। कौटिल्य ने एक स्थान पर लिखा है'' स्वधर्म का पालन करने से स्वर्ण तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है, इससे विपरीत होने पर वर्ण संकरता उत्पन्न होती है जिससे संसार का विनाश हो जाता है। यथा–

''स्वधर्म स्वर्णायानन्त्याय च।

तस्यातिक्रमें लोकः संकरादुच्छिधेत।। ''[27]

अतः कौटिल्य शासक को स्पष्ट आदेश देता है कि वह सभी वर्णों को अपने अपने धर्म में प्रवृत्त करे।[28]

धर्म शास्त्रों के समय में वर्ण व्यवस्था का जो स्वरूप निर्धारित हुआ वह बाद में समाजों के लिये आदर्श बनी रही। वर्ण को पूर्णतया जन्मना माना गया। स्मृति ग्रन्थों में विभिन्न वर्णों के व्यवसायों एवं कर्त्तव्यों की व्याख्या मिलती है। परम्परागत चार वर्णों के अतिरिक्त समाज में बहुंसख्यक वर्णसंकर जातियां उत्पन्न हो गयीं। मनुस्मृति में वर्ण व्यवस्था के सिद्धान्तों का स्पष्टतः निर्धारण मिलता है। शुंगों के समय में तद्नुसार समाज को व्यवस्थित किया गया। किन्तु गुप्तकाल तक वर्णव्यवस्था में नमनीयता बनी रही। स्मृतियों में अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों का विधान है तथा प्रथम को मान्यता प्रदान की गई है। इसमें उच्च वर्ण का व्यक्ति अपने ठीक नीचे के वर्ण की कन्या से विवाह करता था और यह सम्बन्ध शास्त्र संगत था। द्वितीय इससे उल्टा था जो निन्दनीय कहा गया है। अभिलेखों में भी अन्तर्जातीय विवाहों के उदाहरण मिलते

हैं। गुप्तकाल के बाद बाह्रय आक्रमणों के कारण समाज में अव्यवस्था फैली जिससे वर्ण व्यवस्था को ठोस आधार पर प्रतिष्ठित करने के प्रयास हुये। खान–पान एवं विवाह में कट्टरता आई। हर्षकालीन लेखों मधुवन तथा बांसखेड़ा से पता चलता है कि प्रभाकर वर्द्धन ने समाज में वर्णाश्रम धर्म को प्रतिष्ठित किया था।[29] हर्षचरित्र से पता चलता है कि हर्ष वर्णाश्रम धर्म का पोषक था।[30] राजपूत युग तक आते–आते परम्परागत वर्ण विभिन्न उपजातियों में विभक्त हो गये। अस्पृश्यता की भावना का पूर्ण विकास हुआ जिससे छुटकारा पाने के लिये हिन्दू समाज आज तक छटपटा रहा है।

हरिवंश में वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप :-

किसी पुराण के सामाजिक अध्ययन के लिये केवल स्मृतिशास्त्र पर ही आश्रित नहीं रहा जा सकता। पुराण के पंचलक्षणों में भी सामाजिक अध्ययन के लिये प्रभूत सामग्री है। हरिवंश में राजवंशों के वर्णन के अन्तर्गत सामाजिक अध्ययन के लिये महत्वपूर्ण सामग्री मिलती है।

हरिवंश में राजाओं की वंशावली के अध्ययन से ज्ञान होता है कि इस काल में वर्णों की शुद्धि को बनाये रखने की प्रवृत्ति स्मृतियों के नियमों की भाँति कठोर नहीं हुई है। वह प्रगतिशील तथा परिवर्तनशील है। हरिवंश के अनेक स्थलों में कर्मों के अनुसार ब्राम्हणों को नीच जाति में जाते हुये कहा गया है। विश्वामित्र के सात पुत्रों ने भूख से पीड़ित होकर मुनि की गौ को खा लिया और गाय के अभाव में उसके व्याध्र द्वारा खा लिये जाने की मिथ्या बात कही। इस दोहरे पापकृत्य के फलस्वरूप उन्हें नीच व्याधकुल में जम्न लेना पड़ा। किन्तु श्राद्धकर के पितरों को चढ़ाकर खाये जाने के कारण उनमें पूर्वजन्म की स्मृति बनी रही।[31]

नीच वर्ण के व्यक्ति भी अपने पूर्वजन्म कृत पुण्यों के कारण धर्म के मार्ग में चलते हुये पुनः अपना पद प्राप्त करते हुये चित्रित किये गये हैं। दुष्कृत्य के कारण शूद्रता को प्राप्त विश्वामित्र के पुत्र धर्म का आचरण कर के अपने पूर्व स्वरूप को प्राप्त करेंगे, यह कहा गया है। यथा–

"ते धर्मचारिणों नित्यं भविष्यन्ति समाहिताः।

ब्राम्हाण्य प्रतिलव्स्यन्ति ततों भूयः स्वकर्मणा।।"[32]

वर्णान्तर में जन्म का मूल कारण कर्मविपाक ही नही है। अनुलोम और प्रतिलोम विवाह वर्णों के मिश्रण का अन्य कारण है। इस प्रकार के वर्णेतर विवाह को हरिवंश में 'ऋष्यन्तर विवाह' कहा गया है। ये विवाह तिरस्कार्य नहीं ज्ञात होते। हरिवंश के अनेक स्थलों में ऋष्यन्तर विवाहों का तथा उनके संतति का गौरव के साथ वर्णन इस बात का प्रमाण है।

ऋष्यन्तर विवाह में नीच वर्ण की कन्या से विवाह का प्रचलन पर्याप्त मात्रा में दिखलाई देता है। हरिवंश में वर्णित ऋषियों की क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र संतान अनुलोम विवाह से उत्पन्न का परिचय देती है विश्वामित्र के वंश को विवरण में उनके वंशज ऋषियों को ऋष्यन्तर विवाह्य' कहा गया है।[33] इसी स्थल में कौशिश (विश्वामित्र) तथा पूरूवंश के परस्पर सम्बन्ध का उल्लेख ब्रम्हाक्षत्र सम्बन्ध के रूप में वर्णित हैं। यथा–

" ऋष्यन्तर विवाहाश्च कौशिका बहवः स्मृताः।

पौरवस्य महाराज ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च।।

सम्बन्धोउप्यस्य वंशेउस्मिन् ब्रम्हाक्षत्रय विश्रुतः।"[34]

हरिवंश के एक अन्य स्थल में शुनक नामक ऋषि के पुत्रों को शौनक कहा गया है। शौनकों के अन्तर्गत ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी आते हैं। यथा–

"पुत्रों गृत्समद स्यापि शुनकों यस्य शौनकाः

ब्राम्हणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्य यैव चं।।"[35]

चारों वर्णों के रूप में शौनकों का उल्लेख चार वर्ण की भिन्न–भिन्न स्त्रियों से ब्राम्हण ऋषि के विवाह की सूचना देता है। भार्गव वंश में अंगिरस के पुत्रों की तीन जातियों में जन्म लेते हुये कहा गया है। यथा–

"एते त्वंगिरसः पुत्रा जाता वंशेउथ भार्गवे।

ब्राम्हणाः क्षत्रिया वैश्यास्तयोः पुत्राः सहस्त्रश।।[36]

हरिवंश के अन्य स्थल में भार्गववंशी अंगिरस के पुत्र ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बतलाये गये हैं। यथा–

"एते त्वंगिरसः पुत्रा जाता वंशेद्रत भार्गवे।

ब्राम्हणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च भरतर्षभ।"[37]

इसी प्रकार गृत्समति के भी ब्राम्हण, क्षत्रिय और वैश्य पुत्रों का उल्लेख हरिवंश में मिलता है। यथा–

" तथा गृत्समतेः पुत्राः ब्राम्हणाः क्षत्रियाः विशः।"[38]

इसी प्रकार हरिवंश में मुद्रगल के पुत्र मौद्रगल्यों को क्षात्र धर्म से युक्त ब्राम्हण कहा गया है। यथा–

" मुद्रगल्यस्य तु दामादो मोद्रगल्यः सुमहायशाः।

सर्व एते महात्मानः क्षत्रोपेता हिजातयः।।"[39]

दिवोदास नामक क्षत्रिय राजा के पुत्र को मित्रयु तथा मित्रयु की संतान को क्षेत्रोपेत भृगवंशी कहा गया है। [40] क्षत्रिय राजाओं में भी ऋषियों की भँाति वर्णों के अतिक्रमण की प्रवृत्ति दिखालाई देती है। उदाहरणार्थ– नरिष्यत राजा के पुत्र शक बतलाये गये है। [41] शक विशेषण के द्वारा यहाँ पर नरिष्यत के शकवंशी कन्या से विवाह का संकेत मिलता है। क्षत्रिय राजाओं के प्रतिलोम विवाह का परिचय उनकी ब्राम्हण संतान से मिलता है। कण्व के पुत्र मेघातिथि की संतान को 'काण्वायन द्विज' कहा गया है। यथा–

"पुत्र प्रतिरथस्यासीत् कण्वः समभवन्नृप :।

मेधातिथिः सुतस्तस्य यस्मात् काण्वायना द्विजाः।।[42]

इसी प्रकार बलि के पुत्रों को दो पक्ष मिलते हैं। पहला पक्ष क्षत्रियों का है इन्हें बालेय क्षत्रिय कहते हैं। दूसरा पक्ष ब्राम्हण पुत्रों का हैं ये बालेय ब्राम्हण कहे गये हैं।[43]

कलिधर्म का प्रसंग हरिवंश के काल की वर्ण–व्यवस्था पर यथेष्ट प्रकाश डालता है। वर्णो में अव्यवस्थितता इस काल की सबसे बड़ी कठिनाई होती है। इस काल के ब्राम्हणों को शूद्रोपजीबी कहा गया है तथा युगक्षय में शुद्रो को ब्राम्हणों के समान आचरण करते हुए कहा गया है। यथा–

"अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रो पजीविन :।

शूद्राश्च ब्राम्हणाचारा भविष्यन्ति युगक्षये ।।[44]

चारों वर्णो में व्यक्तिक्रम का इस स्थल में अनेक बार उल्लेख हुआ है। यथा–

"तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातय :।

ऋतवश्च भविष्यन्ति विपरीता युगक्षये ।।"[45]

वर्ण व्यवस्था में पवित्रता बनाये रखने के लिये पुराणों तथा स्मृतियों में स्वधर्मपालन को जो श्रेय दिया गया है वह हरिवंश–कालीन समाज में लुप्त होता दिखलाई देता है। इसी कारण समाज के ब्राम्हणवर्ग तथा व्यवस्थापक वर्ग के लिये जातियों के मिश्रण का यह दृश्य अवश्य दुखदायी रहा होगा। स्वधर्मपालन के लिये अप्रत्यक्ष रुप में संकेत कलियुग वर्णन के इस समस्त प्रसंग में मिलता है।

हरिवंश की वंशावलियों में मिलने वाले वर्ण विषयक वृतान्तों से कलियुग–वर्णन में वर्णो के व्यक्तिक्रम का तुलनात्मक अध्ययन इन दो विषयों के कालनिर्णय में सहायक होता है। वंशावलियों के वर्णन में वर्णसंकर वाली जो-जो परम्परायें समाज में मान्य दिखलाई देती हैं, वहीं परम्परायें कलिवर्णन में अमान्य तथा घृणास्पद समझी गई हैं। अतः उत्तर कालीन समाज में वर्णो के नियमों की कठोरता का ज्ञान होता है।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हरिवंश में वर्ण विषयक सामग्री दो प्रकार के सामाजों की प्रवृत्ति का परिचय देती है। राजवंशों में वर्णित अर्न्तजातीय सम्बन्धों के द्वारा तत्कालीन समाज में जातिगत उदारता के दर्शन होते हैं। जातिगत असंकीर्णता समाज की प्राचीन अवस्था की परिचायक है। कलिवर्णन में वर्ण संकार के प्रति घृणा जातिगत नियमों की कठोरता को सूचित करती हैं। हरिवंश में यवन, पहलव, दरद तथा तुषार आदि विदेशी जातियों का उल्लेख मिलता है।[46] भारत में आकर बस जाने वाली इन विदेशी जातियों तथा अन्य असभ्य जातियों के उच्च जातियों में मिल जाने की आशंका यहाँ सदैव बनी रहती है। विदेशी शासकों तथा वेद–विरुद्धमतावलम्बियों के जातिगत ऐक्म के सिद्धान्तों के प्रति पुराणों के कलिवर्णन में सभी जगह विरोध की भावना दिखलाई देती है। विदेशियों तथा वेद–विरुद्धमतावलम्बियों के द्वारा वर्णैक्य के प्रयास को निरुत्साहित करने के लिये ही कदाचित् इन्हें शूद्रों की कोटि में रखा गया है। यथा–

"शुद्रा भोवादिनश्चैव भविष्यन्ति युगक्षये।।"[47]

"शुद्रा धर्म चरिष्यान्ति शाक्य बुद्धोपजीविनः।।"[48]

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हरिवंश के अर्न्तगत राजवंशों के वर्णन

में जातिविषयक विचार स्मृति–साहित्य के विकास के बहुत पूर्ववर्ती है। सुप्रसिद्ध विद्वान आर0सी0 हाजरा ने अपने ग्रन्थ 'पुराणिक रिकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स' में स्मृति साहित्य का आरम्भ द्वितीय शताब्दी से माना है।'' हाजरा महोदय के ही शब्दों में ''The Puranas Began to in corparate Smrit Matter From about 200 A.D."[49]

सम्भवतः इसका कारण यह है कि स्मृति–साहित्य के किसी भी अंश का प्रभाव इन स्थलों में नहीं दिखलाई देता। पुराण लक्ष्य स्मृति साहित्य [illegible] बहुत [illegible] हैं। प्राचीन पुराणों में पंचलक्षण का पालन अधिक सतर्कता के साथ हुआ है। इसका कारण यह है कि पुराणों का मूल–रुप स्मृति सम्बन्धी विषयों से भिन्न रहा है।

हरिवंश में ब्राम्हण और क्षत्रियों का आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने का समान अधिकार उपनिषदों में चित्रित ब्राम्हण और क्षत्रियों के इसी प्रकार के महत्व से सादृश्य रखता है। उपनिषदों में अनेक राजर्षियों को ब्रम्हाज्ञान पर वाद–विवाद करते हुये दिखलाया गया है। जनक[50] तथा प्रवाहण जैनलि[51] नामक क्षत्रिय राजाओं का ऋषियों को धर्मोपदेश आध्यात्मिक क्षेत्र में भी ब्राम्हणेत्तर जातियों के विचार स्वातन्त्रय और कर्म–स्वातन्त्रत का सूचक है। हरिवंश में भी कुछ राजर्षियों के लिये 'ब्रम्हण्य' शब्द उपनिषत्कालीन समाज की इसी प्रवृत्ति का परिचय देता है।

इस प्रकार हरिवंश के अन्तर्गत सामाजिक विशेषतायें इनी गिनी हैं। इसका कारण यह है कि अन्य पुराणों की तुलना में हरिवंश का आकार पर्याप्त छोटा है, किन्तु महाभारत के खिल तथा बाद में स्वतन्त्र पुराण के रुप में विकसित होने के कारण हरिवंश का अपना विशेष महत्व है। इसी कारण हरिवंश की कतिपय सामाजिक विशेषतायें भी प्राचीन भारत के सामाजिक अध्ययन के दृष्टिकोण से परम विश्वसनीय हैं।

आश्रम-व्यवस्था :-

हिन्दू सामाजिक संगठन की दूसरी महत्वपूर्ण संस्था आश्रमों की है, जो वर्ण के साथ सम्बन्धित है। आश्रम मनुष्य के प्रशिक्षण की समस्या से सम्बद्ध है, जो संसार की सामाजिक विचारधारा के सम्पूर्ण इतिहास में अद्वितीय हैं। हिन्दू व्यवस्था में प्रत्येक मनुष्य का जीवन एक प्रकार के प्रशिक्षण तथा आत्मानुशासन का हैं। इस प्रशिक्षण के दौरान उसे चार चरणों से होकर

गुजरना पड़ता है। ये प्रशिक्षण की चार अवस्थायें हैं। आश्रम की उत्पत्ति 'श्रम' धातु से हुई है जिसका अर्थ हैं परिश्रम या प्रयास करना। इस प्रकार आश्रम वे स्थान हैं जहाँ प्रयास किया जाये। मूलतः आश्रम जीवन की यात्रा में एक विश्रामस्थल का कार्य करते हैं जहाँ आगे की यात्रा के लिये तैयारी की जाती है। जीवन का चरम् लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। सुप्रसिद्ध समाजशील पी0एन0 प्रभु ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन' में मोक्ष प्राप्ति की यात्रा में आश्रमों को विश्रामस्थल बताया है। पी0एन0 प्रभु के ही शब्दों में–

"The Ashramas are to be regarded as resting places during ones jowney on way to liberation which is the final aim of lift "[52]

आश्रम व्यवस्था के मनोवैज्ञानिक नैतिक आधार पुरुषार्थ हैं जो आश्रमों के माध्यम से व्यक्ति को समाज के साथ सम्बद्ध कर उसकी व्यवस्था तथा संचालन में सहायता प्रदान करते हैं। एक ओर जहाँ मनुष्य आश्रमो के माध्यम से जीवन में पुरुषार्थो के उपयोग करने का मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण प्राप्त करता है तो दूसरी ओर व्यवहार में वह समाज के प्रति इसके अनुसार जीवन यापन करता हुआ अपने कर्तव्यों को पूरा करता है। प्रत्येक आश्रम जीवन की एक अवस्था है जिसमें रहकर व्यक्ति एक निश्चित अवधि तक प्रशिक्षण प्राप्त करता है। महाभारत में वेद–व्यास ने चारों आश्रमो को ब्रह्मलोक पहुंचने के मार्ग में चार सोपान निरुपितम किया है, यथा–

"चतुष्पदी हि निःश्रेणी ब्रम्हण्येषा प्रतिष्ठिता।
एतां आरुहा निःश्रेणीम् ब्रम्हलोके महीयते।।"[53]

इस प्रकार भारतीय विचारकों ने चतुराश्रम व्यवस्था के माध्यम से प्रवृत्ति तथा निवृत्ति के आदर्शो में समन्वय स्थापित किया है।

आश्रमों का उत्पत्ति के समय के विषय में मतभेद है। कुछ विद्वान इनकी प्राचीनता उत्तर वैदिक काल तक ले जाते हैं। [54] किन्तु गोविन्द चन्द्र पाण्डे ने अपने "ग्रन्थ स्टडीज इन दि ओरिजिन्स आफ बुद्विज्म" में यह सिद्ध किया है कि "आश्रम व्यवस्था बुद्धकाल के पूर्व की नहीं हो सकती। चारों आश्रमों का विधान भी एक साथ नहीं हुआ होगा। प्रारम्भ में मात्र दो आश्रम थे, ब्रम्हचर्य तथा गृहस्थ। तत्पश्चात् वानप्रस्थ तथा अन्त्तोगत्वा सन्यास आश्रम

का विधान किया गया होगा। सन्यास की उत्पत्ति निश्चयतः अवैदिक श्रमण विचाराधारा के प्रभाव से हुई थी।''[55] सूत्रकाल तक समाज में आश्रम व्यवस्था पूर्णरुपेण प्रतिष्ठित हो चुकी थी। स्मृतिकाल में विभिन्न आश्रमों के नियम निर्धारित किये गये। ए0एल0 बाशम की धारणा है कि हिन्दू समाज में आश्रम आदर्श रुप में थे तथा व्यवहार में इनका पालन कम ही हुआ। किन्तु यह विचार उचित नहीं लगता। हिन्दू शास्त्रकारों ने इस बात पर सदा बल दिया कि चारो आश्रमों का पालन क्रमशः किया जाना चाहिये। कौटिल्य अर्थशास्त्र में लिखता है कि 'राजा का यह कर्तव्य है कि वह प्रजा से वर्णाश्रम धर्म के नियमों का पालन करवायें। इनके उल्लंघन से समाज में अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होती है तथा संसार का नाश होता है। वर्णाश्रम नियमों के पालन से संसार की उन्नति होती है।''[56] इस प्रकार स्पष्ट है कि वर्णाश्रम धर्म का आचरण न केवल समाज में संतुलन बनाये रखने, अपितु उसकी उन्नति के लिये भी अभीष्ट था।

आश्रमों का पुरुषार्थो के साथ धनिष्ठ सम्बन्ध माना गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोझ ये चार पुरुषार्थ जीवन के आधार स्तम्भ थे, जिनके आधार पर मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता था और जिनकी सफलता आश्रम पर ही निर्भर करती है। ब्रम्हचर्य में धर्म प्रमुख रहता है। यहाँ धर्म की पूरी शिक्षा मिलती थी। इसके द्वारा ब्रम्हचारी अर्थ और काम पर नियन्त्रण स्थापित करते हुये जीवनयापन करता है। मोझ का महत्व भी वह इसी समय जान लेता है। गृहस्थाश्रम में अर्थ तथा काम प्रधान साध्य होते हैं। यहाँ मनुष्य धर्मनुसार इनका उपभोग करता है धर्म, अर्थ एवं काम के उच्छृड.खल उपयोग को रोकने में सहायक होता है। वानप्रस्थ में धर्म तथा मोक्ष साध्य होते हैं और प्रथम स्थान धर्म का रहता है। संन्यास आश्रम में मोझ एकमात्र साध्य होता है तथा धर्म इसी में विलीन हो जाता है। वस्तुतः मोझ को प्रत्येक आश्रम में जीवन के चरम लक्ष्य के रुप में स्वीकार किया जाता है। प्रत्येक आश्रम में व्यक्ति तथा समाज के परस्पर सम्बन्ध एवं कार्य अलग–2 होते हैं। प्रथम आश्रम में समाज व्यक्ति की देखभाल करता है जबकि द्वितीय अवस्था में व्यक्ति समाज की देखभाल करता है अब वह सामाजिक सम्पत्ति का न्यासी बन जाता है। तृतीय अवस्था में व्यक्ति की स्थिति परिवार तथा समाज के सलाहकार के रुप में मानी जाती है अन्तिम अवस्था में संन्साय में व्यक्ति का समाज के प्रति दायित्व बिल्कुल समाप्त हो जाता है। तृतीय तथा चतुर्थ आश्रम में समाज के कर्तव्य भी क्रमशः घटते हुये समाप्त

हो जाते हैं।

इसी प्रकार आश्रमों के अन्तर्गत विभिन्न संस्कारों की निष्पन्नता भी थी। व्यक्ति के जीवन को परिष्कृत धर्मनिष्ठ और सुंसस्कृत करने के लिये तथा उसके व्यक्तित्व का विकास करने के लिये भारतीय समाज में संस्कारों की नियोजना की गई थी जिनका आश्रम व्यवस्था से अन्योन्ताश्रित सम्बन्ध था। जन्म से लेकर मरण तक प्रायः सोलह संस्कार माने गये हैं। जिसका आयोजन आश्रम व्यवस्था पर ही निर्भर करता रहा। व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक, धार्मिक, सामाजिक और आध्यत्मिक उत्कर्ष में संस्कारों का सक्रिय सहयोग है जिनका क्रियान्वयन आश्रम–व्यवस्था पर निर्भर था। ब्राम्हचर्य और ग्रहस्थ आश्रम के माध्यम से व्यक्ति विभिन्न संस्कारों को सम्पन्न करता था तथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करता हैं। अधिकांश संस्कार तो गृहस्थाश्रम में ही नियोजित किये जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि संस्कार और आश्रम एक दूसरे से बंधे हुये थे और आज भी एक दूसरे के पूरक हैं।

मनुष्य का जीवन कर्म के अनुसार व्यवस्थित करने के लिये चार आश्रमों की व्यवस्था की गई। हिन्दु धर्मशास्त्र मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानते हैं तथा प्रत्येक आश्रम के निमित्त पच्चीस–पच्चीस वर्ष की अवधि निर्धारित करते हैं। आश्रमों की संख्या चार हैं– ब्रम्हचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। संन्यास के लिये कुछ सूत्रकारों ने 'परिब्राजक' शब्द का व्यवहार किया है।[57] मनु ने भी चार आश्रमों का उल्लेख किया है ब्रम्हचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति।यथा—

"ब्रम्हचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्थता।

एते गृहस्थ प्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमा ः।।"[58]

विद्या के लिये ब्रम्हचर्य, सबके पालन के लिये गृहस्थ इन्द्रियों के दमन के लिये वानप्रस्थ और मोक्षसिद्धि के लिये संन्यास आश्रम की व्यवस्था की गई थी। चारो आश्रमों की विधान केवल 'द्विज' के लिये था जबकि 'शुद्र' के लिये केवल गृहस्थाश्रम बताया गया है।

हरिवंश तथा अन्य पुराणों में आश्रम–व्यवस्था का स्वरुप :–

पौराणिक मत में आश्रम व्यवस्था देवोद्भूत एवं देव–संबद्ध है। पुराणों में आश्रम विषयक स्थलों की समीक्षा में यह प्रायः स्पष्ट हो जाता है, कि इनमें वर्ण–व्ययवस्था के समान

आश्रमगत व्यवस्थापन भी सामाजिक संतुलन का आधार स्वीकृत किया गया है। उदाहरणार्थ–वायु और ब्राम्हण्ड पुराण में आश्रम का संश्रम–स्थान विष्णु को उद्घोषित किया गया है।[59] विभिन्न पुराणों में आश्रम–मर्यादा की धार्मिक महत्ता को भी स्पष्ट किया गया है। विष्णु पुराण में वर्णित है कि विभिन्न आश्रमों की व्यवस्था पालन से विशिष्ट लोक सुलभ होते हैं। [60] वायु और ब्राम्हाण्ड पुराणों के वचनानुसार आश्रम–व्यवस्था का उद्देश्य धर्म है।[61]

आश्रम–धर्म का उल्लंघन करने वालो को निन्ध मानकर वायु पुराण में कहा गया है कि ऐसे व्यक्ति नरकस्थ होते हैं।[62] इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि आश्रम व्यवस्था का सम्बन्ध धर्माचरण से माना से माना जाता था तथा समाज में इसकी प्रतिष्ठा सामाजिक संतुलन बनाये रखने के कारण थी।

आश्रम–व्यवस्था की महत्ता उनके सामाजिक सुगठन के कारण से भी थी। वायु और ब्रम्हाण्ड पुराण में वर्णित है, कि आश्रमों का चिन्तन इसलिये किया गया है कि समाज के विभिन्न सदस्य अपने कर्तव्यों का समुचित रुप से पालन करें। यथा–

"कुतः कर्माक्षितिं प्राहुराश्रमस्थावसिनः।

ब्रम्हा तान् स्थापयामास आश्रमान्नामनामतः।।"[63]

राजा सगर के शासन की प्रशंसा करते हुये हरिवंश पुराण में वर्णन आता है कि उनके काल में आश्रम के नियमों का पूर्णतः पालन किया जाता था।[64] अन्य पुराणों की भांति हरिवंश में भी कलियुग के समाज का विषादमय स्वरुपांकन करते हुये वार्णित है इस युग में समाज के अन्य व्यवस्थापक तत्वों के समान आश्रम–मर्यादा भी नष्ट हो जायेगी।[65] इन उद्धरणों से आश्रमों के पुराण–सम्मत महत्ता पर प्रकाश पड़ता है।

आश्रमों की संख्या एवं क्रम :-

पुराणों में आश्रमों की संख्या एवं उनके क्रम पर भी प्रकाश डाला गया है। विष्णु पुराण के अनुसार ब्रम्हचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा परिव्राटः ये चार आश्रम ही संभावित हैं पाँचवे आश्रम की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। यथा–

"ब्रम्हचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थस्तथाश्रमी।

परिव्राड् वा चतुर्थोऽत्र पँचमों नोपपद्यते।।"[66]

वायु और ब्रहाम्ण्ड पुराण में वर्णित है कि वर्णों के धर्म को प्रतिष्ठित करने के उपरान्त ब्रम्हा ने चार आश्रमों को स्थापित किया। यथा–

"ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान्।

गृहस्थो ब्रम्हचारित्वं वानप्रस्थ सभिक्षुकम्।।[67]

इस प्रकार पुराणों के निर्देशानुसार आश्रमों की संख्या चार है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है, कि चतुराश्रम–संख्या का निर्धारण पूर्व पौराणिक काल में ही हो चुका था। किन्तु वैदिक ग्रन्थों में आश्रम शब्द का प्रयोग नहीं मिलता किन्तु ब्रम्हचार्यदि अथवा इनके समानार्थक शब्दों के उल्लेख अनेक जगह प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ ऋग्वेद में एक स्थल पर ब्राम्हचारी की उपमा बृहस्पति से दी गई है। [68] दूसरे स्थल में वर्णित है कि देवताओं ने गृहस्थ आश्रम के प्रचलनार्थ पुरुष को पत्नी से संयुक्त किया है।[69] लेकिन प्रस्तुत प्रसंग–विषयक वैदिक वर्णनों की विशेषता यह है कि इनमें आश्रमों का क्रमबद्ध और व्यवस्थित निर्देश नहीं मिलता। ऐसा विचार है, कि उपनिषदों के काल तक आश्रम–बोधक भावना की पूर्वपीठिका प्रस्तुत हो चुकी थी।[70]

धर्मशास्त्रों में वर्णन क्रम में कुछ अन्तर के साथ चारों आश्रमों का वर्णन मिलता है। गौतम धर्मसूत्र ने चारों आश्रमियों को ब्रम्हचारी, गृहस्थ, भिक्षु, और वानप्रस्थ नाम दिया है।[71] इसी प्रकार विष्णु स्मृति ग्रहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा यती का उल्लेख मिलता है।[72] इसी प्रकार आश्रमों की संख्या चार है जिनका विवरण निम्नवत् हैं।

ब्रम्हचर्य आश्रम :-

विद्या–प्राप्ति के लिये ब्रम्हचर्य आश्रम की व्यवस्था की गई थी। विष्णु पुराण की व्यवस्था के अनुसार उपनयन सम्पन्न होने के उपरान्त बालक को ब्रम्हचर्य–निर्वाहार्थ तथा वेदाध्ययनार्थ गुरु–गृह का आश्रम लेना चाहिये।[73] विष्णु, वायु और ब्राम्हण्ड पुराणों में ब्रम्हचारी को गुरुवासी माना गया है। जिसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचारी को गुरु के घर निवास कर ब्रम्हचर्यार्थ विहित कर्मो को सम्पन्न करना चाहिए।

अपेक्षित कर्तव्य विधाध्ययन :-

विष्णु पुराण में निर्देशित है कि ब्रम्हचारी को सावधान होकर वेदाध्ययन में तत्पर

रहना चाहिये।[74] वायु और ब्राम्हण्ड पुराण ब्रह्मचारी का लक्ष्य विद्याभ्यास माना गया है।[75] मत्स्य पुरण के अनुसार ब्रह्मचार्य में तभी सिद्धि मिल सकती है जब कि ब्रह्मचारी अध्ययन में निरन्तर रहे।[76]

गुरुसेवा :-

विष्णु पुराण का निर्देश है कि ब्रम्हचारी का कर्तव्य गुरु के प्रतिकूल नहीं होना चाहिये। वह उसी समय रुके, जब कि गुरु रुके। वह उसी समय चले जब कि गुरु चलें। वह उसी स्थान पर बैठे जो गुरु के स्थान से नीचे हो। उसे नहीं अध्ययन करना चाहिये, जो गुरू के मुँह से निकले। जब गुरू स्नान कर चुकें, तभी वह अपनी स्नान क्रिया सम्पन्न करे। वह प्रतिदिन गुरू के लिये समिधा, जलादि नित्य कर्मोपयोगी उपकरणों को एकत्र करें।[77] मत्स्य पुराण में वर्णित है कि ब्रह्मचारी को गुरू के कार्यार्थ सदैव तत्पर रहना चाहिये। उसे गुरू के सोने के उपरान्त ही सोना चाहिये तथा उनके उठने के पूर्व ही उठ जाना चाहिये।[78] वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में गुरू–सेवा करना ब्रह्मचारी का परमधर्म बताया गया है।[79]

अन्य कर्तव्य :-

विष्णु पुराण में कहा गया है कि ब्रह्मचारी को पवित्रता से रहना चाहिये। उसका चित्त एकाग्र होना चाहिये। वह नित्य प्रति दोनों संध्याओं में सूर्य और अग्नि की उपासना करें।[80] मत्स्य पुराण का कथन है कि ब्रह्मचारी का स्वभाव मृदु होना चाहिये। वह अपनी इन्द्रियों को संयत रखे तथा प्रमाद से दूर रहे।[81] वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णन आता है कि ब्रह्मचारी को भूमि पर ही शयन करना चाहिये। वह दण्ड, मेखला, जटा तथा मृगचर्म धारण करें। उसे ब्रह्मचर्य बाधक कार्य से पृथक रहकर चिन्ता, कल्पना अधिक वार्तालाप में अप्रवृत्त रहकर, निवृत्ति होते हुये, इन्द्रिय संयम और तपस्या का विकास करना कर्तव्य–विहित है।[82]

भैक्ष्य :-

विष्णु पुराण के अनुसार ब्रह्मचारी को ऐसे अन्न का आहार करना चाहिये, जो भिक्षा द्वारा उपलब्ध हो।[83] वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में भी ब्रह्मचारी के कर्तव्य एवं दिनचर्या के निरूपण में भिक्षा–वृत्ति परिगणित है।[84]

हरिवंश पुराण में भी ब्रह्मचर्य आश्रम के विषय में उपर्युक्त बातों की ही पुष्टि

होती है। कंस का वध करने के पश्चात बलराम और श्रीकृष्ण ने गुरू सान्दीपनि के आश्रम में जाकर शिक्षा ग्रहण की थी। हरिवंश में वर्णन मिलता है कि वे दोनों भाई वहाॅ धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करने के यि गये थे। अपना गोत्र बताकर गुरूकुल के आचार से अपने को अलंकृत करके दोनों ही स्वाध्याय करने लगे। यथा–

"धनुर्वेद चिकीर्षार्थ मुभौ तावभिजग्मतुः।

निवेध गोत्रं स्वाध्यायमा चारेणाभ्यलंकृतौ।।"[85]

हरिवंश में आगे कहा गया है कि बलराम और श्रीकृष्ण दोनों गुरू की सेवा में तत्पर रहते थे अहंकार तो उन्हें छू भी नहीं सका था। कशिदेशीय गुरू ने उन दोनों को शिष्य रूप में ग्रहण किया और उन्हें विशुद्ध विधाएँ प्रदान की। यथा–

"शुश्रूपू निरहंकारावुभौ रामजनार्दनौ।

प्रतिजग्राह तौ काश्यो विधाः प्रादाच्च केवलाः।।"[86]

इसी प्रकार हरिवंश में और्व, विश्वामित्र, वसिष्ठ आदि ऋषियों के आश्रमों का उल्लेख प्राप्त होता है। इन आश्रमों में बड़ी संख्या में छात्र ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये विभिन्न विधाओं की शिक्षा ग्रहण करते थे। उदाहरणार्थ–और्व ऋषि ने सगर को वेद, शास्त्र और अस्त्र विधा की शिक्षा दी थी।[87] जब शिष्य सभी प्रकार की विधायें आपने गुरू से सीख लेता था तो वह गुरू को गुरू दक्षिणा देता था। यथा–

"गुरू सान्दीपनिं कृष्णः कृतकृत्योभ्यभाषत।

गुर्वर्थं किं ददानीति रामेण सह भारत।।"[88]

इस प्रकार गुरूदक्षिणा देकर अपने गुरू को सन्तुष्ट कर ब्रह्मचारी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था।

गृहस्थ-आश्रम :-

विभिन्न पुराणों में गृहस्थ–आश्रम की महिमा गाई गयी है। विष्णु, वायु तथा ब्रह्माण्ड आदि पुराणों में गृहस्थ आश्रम को अन्य आश्रमों का स्त्रोत माना गया है।[89] गृहस्थ आश्रम के गौरवोद्भावक इन उद्धारणों का का मूल इस आश्रम की सामाजिक संतुलन में कारण भूत महत्ता है। अन्य तीन आश्रमों के विपरीत गृहस्थ का समाज से प्रत्यक्ष सम्पर्क था।

विष्णुपुराण में ब्रह्मचर्य आश्रम को यापित करने के उपरान्त गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना अपेक्षित माना गया है।[90]

गृहस्थ आश्रम का उद्देश्य :-

गृहस्थ आश्रम का उद्देश्य बताते हुये विष्णुपुराण में कहा गया है, कि ब्रह्मचर्य–आश्रम के उपरान्त पत्नी को विधिवत् अंगीकार करना मनुष्य के लिये आवश्यक था।[91] वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में स्त्री–परिग्रह को ब्रह्मा का आदेश उद्घोषित किया गया है।[92] इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि गृहस्थ आश्रम के विषय में पौराणिक उद्देश्य वंश–परम्परा की अभिवृद्धि है।

गृहस्थ के कर्तव्य-

मत्स्य पुराण में गृहस्थ का सम्बन्ध कर्मयोग से किया गया है तथा कहा गया है कि कर्मयोग, ज्ञान योग की अपेक्षा उत्कृष्ट है।[93] वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि गृहस्थ साधु कहलाने का अधिकारी उसी अवस्था मे हो सकता है, जब कि वह कर्मक्षेत्र में साधक की भॉति आचरण करे।[94] विष्णु पुराण में कुत्सित ज्ञान अहंकार–भावना, दम्भ, परिताप, उपघात और परूषता से दूर रहकर अपने कर्तव्यों का समुचित रूप से पालन करना योग्य गृहस्थ का लक्षण बताया गया है। यथा–

"अवज्ञानमहंकारो दम्भश्यचैव गृहे सतः।
परितापोपधातौ च पारूष्यं न शस्यते।।
यस्तु सम्यक्करोत्येवं गृहस्थः परमं विधिम्।
सर्वबन्ध विनिर्मुक्तो लोकानाप्नोत्यनुत्तमान्।।"[95]

अर्थार्जन :-

विष्णु पुराण में वर्णित है कि गार्हस्थ्यानुकूल कार्यों के सम्पन्नार्थ मनुष्य को धन की व्यवस्था करनी चाहिये। किन्तु ऐसी व्यवस्था का आधार उसका कर्म ही विहित है।[96] मत्स्य पुराण के अनुसार गृहस्थ को धार्मिक साधनों से द्रव्यार्जन करना चाहिये। परधन का गृहस्थी में व्यय करना निषिद्ध माना गया है।[97] इसी प्रकार की व्यवस्था का प्रतिपादन स्मृतियों ने भी किया है। उदाहणार्थ– याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि गृहस्थ को स्वधर्मानलुकूल,

सरल और शठता से वर्जित जीविका का आश्रय लेना चाहिये।[98]

अतिथि–सत्कार :-

विष्णु पुराण के अनुसार गृहस्थ को चाहिये कि वह मधुर वचनों से अतिथि–सत्कार करे। यदि अतिथि गृहस्थ के घर से असन्तुष्ट लौटते है, तो उसके समस्त पुण्य क्षीण हो जाते है। यथा–

"तेषां स्वागतदानादि वक्तव्यं मधुरं नृप।
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स दत्त् वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति।"[99]

वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में अ:तिथेय बनना गृहस्थ का परम कर्तव्य बताया गया हैं।[100] मत्स्यपुराण में कहा गया है कि गृहस्थ का उद्देश्य अतिथि को भोजन से सन्तुष्ट करना भी होना चाहिये।[101] पुराणों के इन निर्देशों का समर्थन गौतम धर्मसूत्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि के उद्धरणों से भी होता है।

पितृतर्पण :-

विष्णु पुराण के अनुसार गृहस्थ को पितरों की अर्चना निवापन (पिण्डदान) से करनी चाहिये।[102] वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में गृहस्थ के कर्तव्यों में श्राद्ध–क्रिया पर विशेष बल दिया गया है।[103] इसी प्रकार मत्स्य पुराण में भी गृहस्थ के लिये पितृ–तर्पण आवश्यक माना गया है।[104]

यज्ञ :-

विष्णु पुराण में कहा गया है कि देवताओं के प्रसादार्थ गृहस्थ को यज्ञ करना चाहिये।[105] वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में भी याज्ञिक अनुष्ठान गृहस्थ के लिये अपेक्षित कर्तव्यों के अर्न्तगत विहित है। मत्स्य पुराण के अनुसार गृहस्थ के लिये अर्जित धन का याज्ञिक क्रिया में यथोचित व्यय करना आवश्यक है।[106]

बलिकर्म :-

विष्णुपुराण का कथन है कि भूतों की सन्तुष्टि के लिये गृहस्थ को बलिकर्म निष्पन्न करना चाहिये। मत्स्य पुराण के अनुसार गृहस्थ बलिकर्म द्वारा भूतों की अर्चना क्रिया का

समाचरण करता है।[107]

स्वाध्याय :-

मत्स्य पुराण के अनुसार स्वाध्याय से गृहस्थ ऋषियों की पूजा करता है। अतः मुनियों के अर्चनार्थ गृहस्थ को स्वाध्याय में रत रहना चाहिये।[108]

पंच महायज्ञ :-

मत्स्य पुराण में वर्णित है कि उपर्युक्त अतिथि सत्कार आदि पाँच यज्ञ हैं, जो पॉच प्रकार की दैनिक हिंसाओं के अपनोदनार्थ विहित हैं। ये पंच हिंसाएँ–कण्डनी (ओखली में अन्न छॉटने से), पेषणी (पीसने से), चुल्ली (चुल्हे में भोजन बनाने से), जलकुंभी (कुएँ से धड़े में जल लेने से) तथा प्रमार्जनी (झाडू देने से) नित्य प्रति होती हैं। यथा–

"पंचैते विहिता यज्ञाः पंचसूनापनुन्तये।
कण्डनी पेषनी चुल्ली जलकुंभी प्रमार्जनी।
पंच सूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गे ने गच्छति।"[109]

इन पाँच महायज्ञों का प्रतिपादन वैदिक काल में ही हो चुका था। शतपथ ब्रह्मण में इन पाँचों को क्रमशः भूतयज्ञ (बलिकर्म), मनुष्य यज्ञ (अतिथि–सत्कार), पितृ यज्ञ (तर्पण), देव यज्ञ तथा बह्य यज्ञ (स्वाध्याय) नाम दिये गये हैं। यथा–

पन्चैव महायज्ञाः।
"तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः पितृ यज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति।"[110]

इसी प्रकार मनुस्मृति में कहा गया है कि गृहस्थ नित्य प्रति चुल्ली, पेषणी, उपस्कर (झाडू), कण्डनी और जलकुंभ के द्वारा पाँच पाप करता है, जिनके निवारणार्थ पॉच महायज्ञ विहित हुये हैं। ये पाँच महायज्ञ हैं–ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवराज, भूतयज्ञ तथा नृयज्ञ।[111]

हरिवंश पुराण में भी गृहस्थ आश्रम की महिमा गाई गयी है। गृहस्थ आश्रम में रहते हुये गृहस्थ के जो कर्तव्य थे हरिवंश में अप्रत्यक्ष रूप से उनका भी उल्लेख मिलता है। अनेक राजाओं ने नीतिपूर्वक शासन कर व प्रजापालन कर तथा सन्तोनोत्पत्ति के द्वारा गृहस्थ आश्रम में निवास किया था। हरिवंश में वंशवृत्तों के अन्तर्गत ऐसे अनेक राजाओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ– पृथु का उपाख्यान,[112] राजा सगर का चरित्र[113] आदि। रूक्मिणी

द्वारा पुत्र प्राप्ति की इच्छा प्रकट किये जाने पर गृहस्थ के लिये पुत्र प्राप्ति की महत्ता की प्रतिपादन करते हुये कृष्ण कहते हैं–

"पुत्रेण लोकान्जयति सतां कामदुघा हि ये।
नरकं पुदिति ख्यातं दुःख च नरकं विदुः।।
पुदस्त्राणात् ततः पुत्र मिहेच्छति परत्र च।
अनन्ताः पुत्रिणों लोकाः पुरूषस्य प्रिये शुभाः।।"[114]

अर्थात गृहस्थ पुरूष पुत्र द्वारा उन लोकों पर विजय पाता है, जो पुरूषों को उनकी इच्छा के अनुसार फल देने वालें होते हैं। नरक 'पुत' नाम से विख्यात है, दुःख को भी नरक ही माना गया है। उस 'पुत' नामक नरक या दुःख से वह पिता–माता का परित्राण करता है, इसलिये सारा जगत इहलोक और परलोक के लिये पुत्र की अभिलाषा रखता है। पुत्र.वान् पुरूष के लिये अनन्त शुभलोक विद्यमान हैं।

इसी प्रकार हरिवंश में कृष्ण द्वारा अग्नि होत्र करने तथा दानादि देने के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं।[115]

वानप्रस्थ–आश्रम :-

विष्णु पुराण के अनुसार गार्हस्थ्य–उचित कर्तव्यों को पूरा करने के बाद अवस्था के ढलने पर मनुष्य को वानप्रस्थी होना चाहिये। यथा–

"वयः परिणतो .... गृहाश्रमी .... वनं गच्छेत् ....।"[116]

गृहस्थ जीवन के उपरान्त वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार न करने वाले मनुष्य को पापकर्मा कहा गया है जबकि गार्हस्थ्य सुलभ भौतिक सुखों की उपेक्षा कर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना शुभदायक घोषित किया गया है। ऐसी ही व्यवस्था का प्रतिपादन स्मृतियों ने भी किया है। उदाहरणार्थ– मनुस्मृति में कहा गया है कि गृहस्थ जब अपने शरीर का पका हुआ बाल, चमड़े की झुर्रियॉ तथा प्रपौत्र को देख ले। उस समय उसे वन का आश्रय लेना चाहिये। यथा–

"गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलित मात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत।।"[117]

इस विषय पर कि वानप्रस्थ आश्रम में पत्नी को साथ रखा जाये या उसे पुत्रों के पास ही छोड़ दिया जाय। पुराणों में दोनों ही प्रकार के विचार मिलते है। विष्णु पुराण में वानप्रस्थ के अवसर पर पत्नी का सहवास ऐच्छिक उद्घोषित है एवं कहा गया है कि उसे पुत्रों के पास रखा जा सकता है।[118] वायु और ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार राजर्षि ययाति ने सपत्नीक वनवास के लिये प्रयाण किया था।[119] इन पौराणिक उद्धरणों का समर्थन स्मृतियों द्वारा भी होता है। उदाहरणार्थ – याज्ञवल्क्य स्मृति में वानप्रस्थ के समय पत्नी का सहारा वैकल्पिक घोषित करते हुये कहा गया है कि उसे पुत्रों के पास रखा जा सकता है।[120]

आश्रम धर्म का उल्लेख करते हुये वायु और ब्रह्माण्ड पुराण ने तपस्या का आचरण वैखानस का लक्षण माना है।[121] विष्णु पुराण में कहा गया है कि वानप्रस्थी को शीत और उष्ण का सहन करते हुये तपस्या करनी चाहिये।[122] वानप्रस्थी को वन में सुलभ सरल–आहार लेने का निर्देश दिया गया है। विष्णु पुराण में वानप्रस्थ–आश्रमी के लिये पर्ण, फल और मूल का आहार निर्दिष्ट किया गया है।[123] वानप्रस्थी को अपना परिधान (वस्त्र) और उत्तरीय वनसुलभ चर्म, कुश और काश से बनाना चाहिये। वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में वानप्रस्थी के लिये दोनों संध्याओं में स्नान करना अपेक्षित माना है।[124] होमानुष्ठान एवं अतिथि सत्कार वानप्रस्थी का परम कर्तव्य माना गया है नहुव राजा की प्रशंसा करते हुये मत्स्यपुराण में कहा गया है, कि वानप्रस्थ आश्रम में उन्होंने समुचित सत्कार के द्वारा अतिथियों को प्रसन्न रखा था।[125] वानप्रस्थी के उपर्युक्त कर्तव्यों के साथ–2 दान देना भी उसके कर्तव्यों का अन्तर्गत आता था। विष्णु पुराण में भिक्षा–प्रदान वानप्रस्थी का प्रशस्य कर्तव्य विहित है।[126]

इस प्रकार वानप्रस्थ आश्रम मोक्ष के मार्ग का दिग्दर्शन कराता तथा मनुष्य को साधना और तपस्या की ओर उत्प्रेरित करता था, अनुशासन और संयम का जीवन उसे अत्यन्त तपःशील बना देता था। वह अपने पारिवारिक और भावनात्मक सम्बन्धों को विच्छिन्न कर एकान्त और निर्जनता का जीवन व्यतीत करता था। ब्रह्मचर्य और सदाचारिता का जीवन उसके मन और मस्तिष्क को पूर्णतः पवित्र और निर्मल रखता था। बौद्धिक और आध्यात्मिक उन्नति उसका परम लक्ष्य था। लोगों के प्रति वास्तविक दया और सहानुभूति प्रदर्शित करना तथा अतिथियों का आदर–सत्कार करना उसका कर्तव्य माना गया। नैतिक और धार्मिक कर्तव्यों को सम्पन्न कर

वह अपने को ही नहीं बल्कि समाज को भी प्रांजल बनाता था।

हरिवंश में भी वानप्रस्थ आश्रम में जाने वाले अनेक राजाओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इन राजाओं ने सपत्नीक कठोर तपस्या करके परम उत्तम अभीष्ट गति को प्राप्त किया था। उदाहरणार्थ – राजा ब्रह्मदत्त ने अपने राज्य पर अपने पुत्र विष्वक्सेन का अभिषेक किया और अपनी स्त्री को साथ लेकर वन को चले गये–

"अभिषिच्य स्वराज्ये तु विषवक्सेनमरिंदमम्।
जगाम ब्रह्मदत्रोऽथ सदारो वनमेव ह।।"[127]

इसी प्रकार राजा ययाति के द्वारा वानप्रस्थ आश्रम में जाने का विवरण हरिवंश में मिलता है–

"यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्य महत्सुखम्।
तृष्णाक्षय सुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्।।
एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद् वनम्।
कालेन महता वापि चचार विपुलं तपः।।"[128]

अर्थात संसार में जो काम जनित सुख है तथा जो दिव्य महान् सुख है वे सब मिलकर तृष्णा–क्षय से होने वाले सुख के सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हो सकते। ऐसा कहकर राजर्षि ययाति स्त्री सहित वन में चले गये। वहाँ बहुत समय तक उन्होने भारी तपस्या की।

इसी प्रकार कृष्ण द्वारा कंस का वध किये जाने के उपरान्त उग्रसेन ने कृष्ण को मथुरा का राजपद संभालने तथा स्वयं वन जाने की इच्छा प्रकट की थी।[129] उपरोक्त उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि हरिवंश पुराण के समय में लोग वानप्रस्थ आश्रम में जाते थे तथा कठोर तपस्या द्वारा अपनी मुक्ति का प्रयास करते थे।

सन्यास आश्रम :-

वानप्रस्थ आश्रम के पश्चात् संन्यास आश्रम का प्रारम्भ होता था। संन्यास आश्रम के लिये पुराणों में भिक्षु, यती, परिवाट् अथवा परिव्राजक शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि मनुष्य को चाहिये कि वह गृहस्थ के पश्चात् वानप्रस्थी बने,

तत्पश्चात् परिव्राट् का धर्म स्वीकार करे अन्यथा वह पाप का भागी होता है।[130] इस व्यवस्था का प्रतिपादन स्मृतियों ने भी किया है। उदाहणार्थ– मनुस्मृति में कहा गया है कि मनुष्य को आयु के तीसरे भाग को वन में व्यतीत कर परिव्राट् बनना चाहिये। यथा–

" वनेषु तु विह्नत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।

चतुर्थमायुषो भांग त्यक्त्वा संगान्परिव्रजेत।।"[131]

परन्तु कभी–कभी ब्रह्मचर्य अथवा गृहस्थ आश्रमोपरान्त भी संन्यास धर्म की दीक्षा स्वीकृत की जा सकती थी। मत्स्य पुराण के अनुसार नहुष पुत्र यति ने कुमारावस्था में ही वैखानस व्रत स्वीकार किया था।[132] किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसी व्यवस्था का अनुसरण सर्वथा एवं सर्वजन–सुलभ नहीं था। इसका कारण यह है कि मोक्ष मार्ग के अनुसन्धान में मोक्षार्थी भिक्षु को एक ऐसी पूर्वपीठिका की आवश्यकता पड़ती थी जहॉ स्थित होकर वह संसार के समस्त सम्भावित पापों का अपहार कर तदुपरान्त संन्यास–आश्रमार्थ सक्षम बन सके अन्यथा पूर्वानुभूत भौतिक भोगों की आसक्ति उसकी प्रज्ञा को नष्ट कर सकती थी। ऐसा विचार सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री पी0एन0 प्रभु का है।[33]

पुराणों में संन्यास आश्रम का उद्देश्य मोक्ष घोषित किया गया है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि चतुर्थ आश्रम का विधिपूर्वक पालन करने वाला व्यक्ति इन्धन रहित अग्नि के समान गतिशून्य शान्ति का अनुभव करते हुये ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। कदाचित् इसी दृष्टि से इस आश्रम को मोक्ष–आश्रम नाम भी प्रदत्त है।[134] इस प्रकार सन्यास आश्रम के क्रिया कलाप का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करान था। मोक्ष प्राप्ति के लिये भिक्षु के कर्तव्यों पर भी पुराणों में प्रकाश डाला गया है। वायु और ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार संन्यासी को दया, क्षमा, अक्रोध, , सत्य आदि गुणों का विकास करना चाहिये।[135] भिक्षु को ब्रह्म प्राप्ति में सहायक ज्ञान का लाभ उसी दशा में हो सकता है जब कि वह सांसारिक पदार्थों के प्रति आसक्ति–त्याग करे। संन्यासी के लिये इन्द्रिय निग्रह पर भी बल दिया गया है। मत्स्य पुराण में कहा गया है कि भिक्षु को उतना ही भोजन करना चाहिये जिससे प्राण–धारण करने की शक्ति बनी रहे।[136] भिक्षु को

भिक्षार्थ ग्राम में जाना चाहिये, उसे अल्पाहार करना चाहिये। भिक्षु को उस समय भिक्षाटन करना चाहिये, जबकि मुसल का शब्द न सुनाई दे। भिक्षु को सदैव भ्रमणशील रहना चाहिये। विष्णु पुराण में आदेशित है कि भिक्षु को ग्राम में एक रात्रि तथा नगर में पाँच रात्रि से अधिक नहीं रूकना चाहिये।[137] इसका कारण यह है कि एक स्थान पर अधिक काल तक निवास से प्रीति अथवा द्वेष की सम्भावना हो सकती है। इसके अतिरिक्त पुराणों में भिक्षु के लिये योग की साध-ना में लीन रहना, सभी प्राणियों को अभय देना और स्वयं भी निर्भय रहना तथा कौपीन धारण करना आदि विशेषतायें बतायी गई हैं।

हरिवंश में भी संन्यास आश्रम व्यतीत करने वाले संन्यासियों का उल्लेख मिलता है। राजा ब्रह्मदत्त ने कठोर तपस्या करके परम दुर्लभ गति को प्राप्त किया था।[138] इसी प्रकार राजा ययाति ने संन्यास आश्रम में रहते हुये कठोर तपस्या करके स्त्री सहित मोक्ष को प्राप्त किया था। यथा–

"भृगुतुड़े. तपस्तत्वा तपसोऽन्ते महातपाः।

अनश्नन् देह मुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान्।।"[139]

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि हरिवंश के काल तक संन्यास आश्रम की प्रतिष्ठा बनी हुई थी तथा अनेक राजाओं ने संन्साय आश्रम में रहते हुये कठोर तपस्या द्वारा मोक्ष प्राप्त किया था।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आश्रम के विषय में हरिवंश तथा अन्य पुराणों का विवरण व्यापक हैं। आश्रमों के नाम स्वरुप और क्रम पर पुराणों में विशेष प्रकाश डाला गया है। आश्रमों के जिस स्वरुप का चित्रण पुराणों में हुआ है, वह धर्मसूत्र आदि ग्रन्थों से बहुत कुछ साम्य रखता हैं।

संस्कार :-

'संस्कार' शब्द सम् उपसर्गपूर्वक 'कृ' घातु में 'धम्' प्रत्यय लगाने से बनता है जिसका शाब्दिक अर्थ है परिष्कार शुद्धता अथवा पवित्रता। इस प्रकार हिन्दू व्यवस्था में संस्कारो का विधान व्यक्ति के शरीर को परिष्कृत अथवा पवित्र बनाने के उद्देश्य से किया गया ताकि वह वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के लिये उपयुक्त बन सके। शबर के विचार है कि संस्कार

वह क्रिया है जिसके सम्पन्न होने पर कोई वस्तु किसी उद्देश्य के योग्य बनती है। यथा–

"संस्कारों नाम स भवति यस्मिचञजाते पदार्थो भवति योग्यः कश्चिदर्शस्य।"[140]

शुद्धता, पवित्रता, धार्मिकता, एवं आस्तिकता संस्कार की प्रमुख विशेषतायें हैं। ऐसी मान्यता है कि मनुष्य जन्मना असंस्कृत होता है किन्तु संस्कारों के माध्यम से वह सुसंस्कृत हो जाता है इनसे उसमें अन्तर्निहित शक्तियों का पूर्ण विकास हो पाता हैं। तथा वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता हैं। संस्कार व्यक्ति के जीवन में आने वाली बाधाओं का भी निवारण करते तथा उसकी प्रगति के मार्ग को निष्कण्टक बनाते हैं। इसके माध्यम से मनुष्य आध्यत्मिक विकास भी करता है। मनु के अनुसार संस्कार शरीर को विशुद्ध करके उसे आत्मा का उपुयक्त स्थल बनाते हैं इस प्रकार मनुष्य के व्यक्तित्व की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये भारतीय संस्कृति में संस्कारों का विधान प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दु समाज में संस्कारों का प्रचलन वैदिक युग से ही रहा है, किन्तु इनका विवरण वैदिक साहित्य में नहीं मिलता। सूत्रों और स्मृतियों में इनके विषय में विस्तृत जानकारी उपलब्ध होती है। मनुष्य के जीवन में कितने संस्कार होने चाहिये इस पर धर्मशास्त्रकारों में मतभेद है गौतम ने संस्कारों की संख्या चालीस दी है।[141] जबकि वैखानस ने अठारह। इनके अतिरिक्त मनु आदि शास्त्रकारों ने संस्कारों की संख्या तेरह दी है किन्तु प्रायः सभी धर्मशास्त्रकार संस्कारों की संख्या सोलह मानते हैं। ये निम्नवत हैं 1. गर्भाधान 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्तयन 4. जात कर्म 5. नामकरण 6. निष्क्रमण 7. अन्नप्राशन, 8. चूड़ाकर्म, 9 कर्णवेध, 10. विधारम्भ 11. उपनयन 12. वेदारम्भ 13. केशान्त, 14. समावर्तन 15. विवाह तथा 16. अन्त्येष्टि।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हरिवंश में उपुर्यक्त सोलह संस्कारों का उल्लेख नहीं प्राप्त होता। जिन संस्कारों का उल्लेख हरिवंश में मिलता है वे निम्नवत् हैं।

गर्भाधान :-

यह जीवन का प्रथम संस्कार था जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी पत्नी के गर्भ में अपना बीज स्थापित करता था। इस संस्कार का प्रचलन उत्तर वैदिक काल से हुआ। सूत्रों तथा स्मृति ग्रन्थों के इसके लिये उपुयक्त समय एवं वातावरण का उल्लेख मिलता हैं। इसके लिये आवश्यक था कि स्त्री ऋतुकाल में हो। ऋतुकाल के बाद की चौथी से सोलहवीं रात्रियाँ

गर्भाधान के लिये उपयुक्त बताई गई हैं। यथा–

"षोडशर्त्तु निशाः स्त्रीणां तासु युग्मालु संविशेत्।"[142]

गर्भाधान प्रत्येक विवाहित पुरुष तथा स्त्री के लिये पवित्र एवं अनिवार्य संस्कार था जिसका उद्देश्य स्वस्थ्य, सुन्दर एवं सुशील सन्तान प्राप्त करना था। स्मृतिकार पराशर ने तो यहाँ तक व्यवस्था दी है, कि जो पुरुष स्वस्थ्य होने पर भी ऋतुकाल में अपनी पत्नी से समागम नहीं करता है वह बिना किसी संदेह के भ्रूण हत्या का भागी होता है। यथा–

"ऋतुस्नातां तु यो भार्या सन्निधौ नोपगच्छति।

धोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः। [143]

हरिवंश में वसुदेव द्वारा देवकी के गर्भाधान संस्कार द्वारा उत्पन्न पुत्रों के विवरण में इस संस्कार का उल्लेख मिलता है। यथा–

"कृते गर्भ विधाने तु देवकी देवतोपमा।

जग्राह सप्ततान् गर्भान् यथावत् समुदारुतान।।"[144]

अर्थात् तदनन्तर पति द्वारा गर्भाधान किये जाने पर देवता के समान तेजस्विनी देवकी ने पहले बताये हुये सात गर्भो को क्रमशः यथोचित रुप से ग्रहण किया।

हरिवंश में पुसंवन तथा सोमन्तोन्नयन संस्कारों का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता।

जातकर्म :-

शिशु के जन्म के समय जातकर्म नामक संस्कार सम्पन्न होता था। सामान्यतः बच्चे के नार काटने के पूर्व ही इसे किया जाता था। उसका पिता सविधि स्नान करके शिशु के पास जाता तथा पुत्र को स्पर्श करता एवं सूंघता था। इस अवसर पर वह उसके कानों में आर्शीवादत्मक मन्त्रों का उच्चारण करता था जिसके माध्यम से दीर्घ आयु एवं बुद्धि की कामना की जाती थी। तत्पश्चात् बच्चे को मधु तथा घृत चटाया जाता था फिर प्रथम बार शिशु मां का स्तनपान करता था। संस्कार की समाप्ति के बाद ब्राम्हणों को उपहार दिये जाते एवं भिक्षा बांटी जाती थी। सभी माता एंव शिशु के दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की कामना करते थे।

हरिवंश में भी जातकर्म संस्कार का उल्लेख अनेक स्थलों में मिलता है। हरिवंश

के हरिवंश पर्व में राजा सगर के वृतान्त में और्व मुनि द्वारा सगर के जातकर्मादि संस्कारों को सम्पन्न करने का उल्लेख मिलता है। यथा–

"और्वस्तु जातकर्मादि तस्य कृत्व महात्मनः।।"

अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत्।।[145]

अर्थात् और्व ने महामना सागर के जातकर्म आदि संस्कार कराकर उन्हे वेद और शास्त्र पढाये फिर अस्त्र विधा सिखायी।

इसी प्रकार हरिवंश के विष्णुपर्व में वसुदेव नन्दगोप को कृष्ण और बलराम के जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न करने को कहते हैं। यथा–

"तत्र तौ दारकौ गत्वा जातकर्मादिभिर्गुणैः।।

योजयित्वा ब्रजे तात संवर्धय यथासुखम्।।" [146]

अर्थात् तातः वहां जाकर उन दोनों बालकों को जातकर्म आदि संस्कारों से सम्पन्न करके ब्रज में ही सुखपूर्वक उनका पालन–पोषण और संवर्धन करो।

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि विशेष परिस्थितियों में पिता की अनुपस्थिति में अन्य लोग भी जातकर्म संस्कार को सम्पन्न करते थे। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि जातकर्म के साथ आदि शब्द जुड़ा होने से अन्य संस्कारों के प्रचलन का भी संकेत मिलता है। किन्तु इनका नामोल्लेख नहीं किया गया।

नामकरण :-

बच्चे के जन्म के दसवें अथवा बारहवें दिन नामकरण संस्कार होता था जिसमें उसका नाम रखा जाता था। प्राचीन हिन्दू समाज में नामकरण का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। बृहस्पति के अनुसार–नाम ही लोक व्यवहार का प्रथम साधन है। यह गुण एवं भाग्य का आधार है। इसी से मनुष्य यश प्राप्त करता है। प्राचीन शास्त्रों यथा–ब्राम्हण ग्रन्थों, गृहसूत्रों, तथा स्मृतियों में इस संस्कार का विस्तृत विवरण मिलता हैं। इस संस्कार के निमित्त शुभ तिथि, नक्षत्र एवं मुहुर्त का चयन किया जाता था। यह ध्यान रखा जाता था कि बच्चे का नाम परिवार, समुदाय एवं वर्ण का नाम बोधक हो। नक्षत्र, मास तथा कुलदेवता के नाम पर अथवा व्यावहरिक नाम भी बच्चे का प्रदान किये जाते थे। कन्या का नाम मनोहर, मंगल सूचक स्पष्ट अर्थवाला तथा

अन्त में दीर्घ अक्षर वाला रखा जाने का विधान था। मनु के अनुसार बच्चे का नाम उसके वर्ण का घोतक होना चाहिये। उनके अनुसार ब्राम्हण का नाम मंगलसूचक क्षत्रिय का बलसूचक वैश्य का धनसूचक तथा शुद्र का निन्दा सूचक होना चाहिए। यथा–

"मङगल्यं ब्राम्हणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम्।
वैश्यस्य धनसंयुक्तम् शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ।।" [147]

विष्णु पुराण में उल्लेख मिलता है कि ब्राम्हण अपने नाम के अन्त में शर्मा, क्षत्रिय, वर्मा, वैश्य गुप्त तथा शुद्र दास लिखें। यथा–

"शर्मेति ब्राम्हणस्योक्तं वर्मेतिक्षत्रसंश्रमय्।
गुप्तदासात्मंक नाम प्रशस्तं वैश्य शूद्रयोः।।"[148]

नामकरण संस्कार के पूर्व घर को धोकर पवित्र किया जाता था। माता तथा शिशु स्नान करते थे। तत्पश्चात् माता बच्चे का सिर जल से भिगोकर तथा साफ कपड़े से उसे ढंककर उसके पिता को देती थी। फिर प्रजापति, नक्षत्र, देवाताओं, अग्नि सोम आदि को बलि दी जाती थी। पिता बच्चे की श्वांस का स्पर्श करता था तथा फिर उसका नामकरण किया जाता था। संस्कार के अन्त में ब्राम्हण को भोज दिया जाता था।

हरिवंश के विष्णुपर्व में नन्दगोप द्वारा कृष्ण तथा बलराम का नामकरण संस्कार करने का उल्लेख प्राप्त होता है। यथा–

"दारकौ कृतनामानौ ववृधाते सुखं च तौ।
ज्येष्ठः संकर्षणों नाम कनीयान् कृष्ण एव तु ।।" [149]

अर्थात् वहाँ उन दोनों बालकों का उन्होने नामकरण संस्कार कर दिया। तदुनन्तर वे दोनों भाई वहाँ बड़े सुख से रहने और दिनों दिन बढ़ने लगे। उनमें बड़े का नाम 'संकर्षण' था और छोटे का कृष्ण।

हरिवंश में निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, कर्णवेध, तथा विद्यारम्भ संस्कारों का स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता किन्तु जातकर्म संस्कार के साथ आदि शब्द लगा होने के आधार पर हम कह सकते हैं। कि यद्यपि हरिवंश में उपुर्यक्त संस्कारों का स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता किन्तु तत्कालीन समाज में उपर्युक्त संस्कारों का प्रचलन अवश्य रहा होगा।

उपनयन :-

प्राचीन हिन्दू संस्कारों में उपनयन का सबसे अधिक महत्व था जिसके माध्यम से बालक सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता था। वस्तुतः उसके बौद्विक उत्कर्ष का प्रारम्भ इसी संस्कार से होता था। उपनयन का शाब्दिक अर्थ है। समीप ले जाना। इससे तात्पर्य बालक को शिक्षा के निमित्त गुरु के पास ले जाने से हैं। ब्राम्हण क्षत्रिय तथा वैश्य बालकों के लिये उपनयन की भिन्न–2 आयु निर्धारित की गई थी। गौतम और मनु के अनुसार ब्राम्हण बालक का गर्भ से आठवें वर्ष में क्षत्रिय बालका गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य बालक का गर्भ से बारहवें वर्ष में उपबीत (यज्ञोपवीत) संस्कार करना चाहिये। यथा–

"गर्भाष्टमेडब्दे कुर्वीत ब्राम्हणस्योपनायनम्।

गर्भादेकदशे राज्ञो गर्भन्तु द्वादशे विशः।।[150]

उपनयन संस्कार का उद्‌देश्य मुख्यतः शैक्षणिक था याज्ञवल्क्य के अनुसार इसका सर्वोच्चय ध्येय वेदों का अध्ययन करना है। ब्राम्हण क्षत्रिय और वैश्य तीन वर्णो के लिये यह विधान था कि जन्म से वे समाज के सदस्य नहीं माने जाते थे, बल्कि जब उनका उपनयन संस्कार सम्पन्न हो जाता था, तब से समाज के सदस्य माने जाते थे। उपनयन संस्कार हो जाने के बाद बालक 'द्विज' अर्थात् दूबारा जन्म लिया हुआ कहा जाता था। यह संस्कार सम्पन्न हुये बिना कोई भी बालक अपने वर्ण का सदस्य नहीं माना जाता था। वह शुद्र समझा जाता था और समाज के बाहर का माना जाता था परन्तु यह संस्कार सम्पादित होने से वह द्विज नाम से अभिहित होता था।

बालक का उपनयन संस्कार एक शुभ समय में होता था। ब्राम्हण का उपनयन संस्कार वसनतु ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म में तथा वैश्य का पतझड़ में किये जाने का विधान था। विभिन्न वर्णो के बालकों का यज्ञोपवीत विभिन्न प्रकार का होता था। मनु के अनुसार ब्राम्हण का यज्ञोपवीत कपास का, क्षत्रिय का सन का और वैश्य का उन का बना हुआ तीन लड़ी का होता था। [151] उपनयन संस्कार वाले बालक को मूंज की मेखला (कटिसूत्र) बांधने का विधान था। प्राचीन हिन्दू समाज में उपनयन एक अनिवार्य संस्कार था। इसका विधान समाज के प्रथम तीन वर्णो–ब्राम्हण क्षत्रिय एवं वैश्य के लिये ही किया गया। इन तीनों को द्विज कहा जाता था

जिनका इसके द्वारा दूसरा जन्म होता था। इस संस्कार का सामाजिक एंव आध्यत्मिक दानो ही महत्व था। इस संस्कार के बाद ही बालक अपने वर्ग तथा समाज का पूर्ण सदस्य बनता था अपने पूर्वजों की सांस्कृतिक विरासत को प्राप्त करने का अधिकार उसे मिलता था। आध्यात्मिक महत्व यह था कि इस संस्कार के माध्यम से ही वह बेद–वेदांगों के अध्ययन का अधिकारी हो पाता था तथा वह सवित्री मन्त्र का उच्चारण कर सकता था।

यद्यपि हरिवंश में उपनयन संस्कार सम्पन्न किये जाने के बारे में तो स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती किन्तु विष्णु पर्व में कृष्ण और बलराम को यज्ञोपवीत धारण किये हुये दिखाया गया है। यथा–

"अरविन्द कृता पीडौ रज्जुयज्ञोपवीतिनौ।

सशिक्य तुम्ब करकौ गोपवेणु प्रवाद कौ।।"[152]

अर्थात् कमलपुष्पों के शिरोभूषण और रस्सी के यज्ञोपवीत धारण करके वे दोनों ग्वाल बालों के समान मुरली बजाया करते थे। उनके साथ छींका, तुम्बी और करक (करुआ या पुरवा) भी थे।

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि हरिवंश के काल में समाज में उपनयन संस्कार प्रचलन में था। अन्य पुराणों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे स्पष्ट होता है। कि उपनयन के उपरान्त विधाध्ययन प्रारम्भ होता था। उदाहरणार्थ राजा सगर को उसके उपनयन संस्कार के बाद ही और्व ऋषि ने वेदाध्ययन कराया था। उपनयन संस्कार सम्पन्न होने के बाद कृष्ण और बलराम सन्दीपनि ऋषि के सानिध्य में शिक्षा ग्रहण करने गये थे।[153] उपुर्यक्त दोनो ही वृतान्त हरिवंश में भी कुछ अन्तर के साथ मिलते हैं। हरिवंश में वेदारम्भ, केशान्त तथा समावर्तन संस्कार का स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता।

विवाह :-

यह प्राचीन हिन्दू समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है जिसकी महत्ता आज भी विद्यमान है। गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ इसी संस्कार से होता था। हिन्दू समाज में इसे एक पवित्र धार्मिक संस्था के रुप में मान्यता दी गई है जिसका उद्देश्य पति और पत्नी के सहयोग से विभिन्न पुरुषार्थो को पूरा करना था। इसे एक यज्ञ माना गया जिसे न करने वाला

यज्ञरहित होता था। विवाह संस्कार के बाद ही व्यक्ति की नई सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति प्रारम्भ होती है। इस संस्कार से मनुष्य सामाजिक हो जाता है और उसकी वैयक्तिक स्थिति समाप्त हो जाती है परिवार और समाज के प्रति उसके नये दायित्व प्रारम्भ हो जाते हैं तथा वह सामाजिक कर्तव्यों के प्रति कार्यशील हो जाता है। समाज की निरन्तरता व्यक्ति के गृहस्थ बनने पर ही निर्भर करती है इसीलिये याज्ञवल्क्य से स्पष्टतः लिखा है— ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, कोई भी हो, यदि व विवाहित नहीं है तो कर्म के योग्य नहीं है। यथा—

"अपत्नी को नरो भूप कर्मयोग्यो न जायत।

ब्राहनणः क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रोऽपि वा नृपः।।"[154]

विवाह के अर्न्तगत वर—वधू की विभिन्न योग्यतायें और गुण, गोत्र और वर्ण आदि का विचार किया जाता था। स्मृति ग्रन्थों में विवाह के आठ प्रकार का उल्लेख मिलता है। ब्राहा, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच। यथा—

"ब्राम्हो दैवस्तथा चार्षः प्राजापत्यस्तथा सुरः।

गान्धर्वे राक्षसश्चैव पैशाच स्त्वष्ट मोड धमः।।"[155]

इनमें से प्रथम चार को प्रशस्त तथा अन्तिम चार को अप्रशस्त कहा गया है। प्राचीन हिन्दू समाज में सवर्ण तथा अन्तर्वर्ण विवाहों का भी प्रचलन था। इसके साथ—साथ प्राचीन हिन्दू समाज में अनुलोभ तथा प्रतिलोभ विवाहों का भी प्रचलन था।

अनुलोभ विवाह में उच्च वर्ण का व्यक्ति अपने ठीक नीचे के वर्ण की कन्या के साथ विवाह करता था। ब्राम्हणों को भी सभी वर्णो की कन्याओं के साथ विवाह करने का अधिकारी मिला था। याज्ञवल्क्य के अनुसार, अनुलोभ से ब्राम्हण तीन, क्षत्रिय दो तथा वैश्य मात्र एक वर्ण की कन्याओं के साथ विवाह कर सकता था। यथा—

"तिस्त्रस्तु भार्या विप्रस्य द्वे भार्य्ये क्षत्रियस्य तु।

एकैव भार्या वैश्यस्य तथा शूद्रस्य कीर्तिता।" [156]

प्रतिलोम विवाह के अन्तर्गत उच्च वर्ण की कन्या का विवाह निम्न वर्ण के व्यक्ति के साथ होता था। इस प्रकार के विवाह के निन्दनीय माना गया है तथा समाज में इसका बहुत कम प्रचलन था।

हिन्दू जीवन पद्वति में सामान्यतः एक विवाह ही आदर्श रहा है जिसमें पत्नी के लिये एक ही पति और पुरुष के लिये एक ही पत्नी का विधान किया गया है। आपस्तम्ब के अनुसार 'धर्म तथा प्रजा से सम्पन्न पत्नी के रहते हुये पुरुष को अपना दूसरा विवाह नहीं करना चाहिये।' इसी प्रकार नारद ने 'अनुकूल, मधुर भाषी, गृहकार्य में दक्ष, पतिव्रता एवं संतानवती पत्नी को छोड़कर दूसरी पत्नी से विवाह करने वाले पुरुष के लिये राजा द्वारा कठोर दण्ड दिये जाने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है।' यथा–

"अनुकूलामवाग्दुष्टां दक्षां साध्वीं प्रजावतीम्।

त्यजन् भार्यामनवस्थाप्यो राजा दण्डेन भूयसा।।"[157]

किन्तु इन सिद्धान्तों के बावजूद व्यवहार में प्रायः बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी। इनके साथ–साथ प्राचीन भारतीय समाज में नियोग–प्रथा का भी प्रचलन था जिसके अन्तर्गत पतिविहीन स्त्रियां पुत्र–प्राप्ति की इच्छा से पर–पुरुष के साथ सम्बन्ध स्थापित करती थी। किन्तु स्मृतिकारों ने नियोगप्रथा को अत्यन्त कठारे प्रबिन्धों के अन्तर्गत ही मान्यता दी थी।

हरिवंश में विवाह के विभिन्न प्रकार के दृष्टान्त मिलते हैं स्वर्ण विवाह का उदाहरण राजा सगर का विदर्भ राजवंश की कन्या केशिनी से विवाह सम्बन्ध था।[158]

सवर्ण विवाह के अनेकों उदाहरण हरिवंश में उपलब्ध हैं हरिवंश में अनुलोभ तथा प्रतिलोभ विवाह के भी उदाहरण मिलते हैं। इस प्रकार के वर्णतर विवाह को हरिवंश में 'ऋष्यन्तर विवाह' कहा गया है। ये विवाह तिरस्कार्य नहीं ज्ञात होते। हरिवंश के अनेक स्थलों में ऋष्यन्तर विवाहों का तथा उनकी संतति का गौरव के साथ वर्णन इस बात का प्रमाण है।

ऋष्यन्तर विवाह में नीच वर्ण की कन्या से विवाह का प्रचलन पर्याप्त मात्रा में दिखलाई देता है। हरिवंश में वर्णित ऋषियो की क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सन्तान अनुलोम विवाह के उत्पन्न का परिचय देती है। विश्वामित्र के वंश के विवरण में उनके वंराज ऋषियों को ऋष्यन्तरविवाह कहा गया है। [159] इसी स्थल में कौशिक (विश्वामित्र) तथा पूरुवंश के परस्पर सम्बन्ध का उल्लेख ब्राम्हक्षत्र सम्बन्ध के रुप में वर्णित है। यथा–

"ऋष्यन्तर विवाहश्च कौशिका बहवः स्मृताः।

पौरवस्य महाराज ब्रम्हर्षेः कौशिकस्य चा।।

सम्बन्धोऽप्यस्य वंशेऽस्मिन ब्रम्हक्षत्रस्य विश्रुतः।" [160]

हरिवंश के एक अन्य स्थल में शुनक नामक ऋषि के पुत्रों को शौनक कहा गया है। शौनकों के अन्तर्गत ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी आते हैं। यथा–

"पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः।

ब्राम्हणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च।।" [161]

चारों वर्णों के रुप में शौनकों का उल्लेख चार वर्ण की भिन्न–भिन्न स्त्रियों से ब्राम्हण ऋषि के विवाह की सूचना देता हैं। इसी प्रकार भार्गव वंश में अंगिरस के पुत्रों को तीन जातियों में जन्म लेते हुये कहा गया है। यथा–

"एते त्वंगिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे।

ब्राम्हणाः क्षत्रिया वैश्यास्तयोः पुत्राः सहस्त्रशः।" [162]

हरिवंश के अन्य स्थल में भार्ग वंशी अंगिरस के पुत्र, ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बतलाये गये हैं। यथा–

"एते त्वंगिरसः पुत्रा जाता बंशेऽथ भार्गवे।

ब्राम्हणाः क्षत्रिया वैश्या शुद्राश्च भरतर्षभ।।" [163]

इसी प्रकार गृत्समति के भी ब्राम्हणा, क्षत्रिय और वैश्य पुत्रों का उल्लेख हरिवंश के हरिवंश पर्व में मिलता है। [164] मुद्गल के पुत्र मौद्गल्यों को क्षात्र धर्म से युक्त ब्राम्हण कहा गया है। यथा–

"मुद्गल्यस्य तु दायादो मोद्गल्यः सुमहायशाः।।

सर्व एते महात्मानः क्षत्रोपेता द्विजातयः।।" [165]

दिवोदास नामक क्षत्रिय राजा के पुत्र को मित्रयु तथा मित्रयु की सन्तान को क्षत्रोपेत भृगुवंशी कहा गया है। [166] क्षत्रिय राजाओं में भी ऋषियों की भांति वर्णो के अतिक्रमण की प्रवृत्ति दिखलाई देती है। उदाहरणार्थ– नरिष्यत राजा के पुत्र शक बतलाये गये हैं। [167] शक विशेषण के द्वारा यहां पर नरिष्यत के शकवंशी कन्या से विवाह का संकेत मिलता है।

क्षत्रिय राजाओं के प्रतिलोभ विवाह का परिचय उनकी ब्राम्हण सन्तान से मिलता है। उदाहरणार्थ–कण्य के पुत्र मेघातिथि की सन्तान को काण्वायन द्विज कहा गया है। यथा–

"पुत्रः प्रतिरथस्यासीत् कण्वः समभवन्नृपः।

मेद्यातिथिः सुतस्तस्य यस्मात् काण्वायना द्विजाः।।[168]

इसी प्रकार बलि के पुत्रों के दो पक्ष मिलते हैं। पहला पक्ष क्षत्रियों का है। इन्हें बालेय क्षत्रिय कहा गया है दूसरा पक्ष ब्राम्हणपुत्रों का है। ये 'बालेय ब्राम्हण' कहे गये हैं।[169]

स्मृतियों में विवाह के जो आठ प्रकार बतलाये गये हैं उनके विषय में मनुस्मृति कहा गया है कि प्रथम चार ब्राम्हण के लिये राक्षस क्षत्रिय के लिये तथा आसुर वैश्य और शुद्र के लिये उपुयक्त विवाह विधि हैं। क्षत्रिय के लिये गान्धर्व विवाह की समीचीन माना गया है।[170] हरिवंश में ब्राम्हा, राक्षस, गान्धर्व आदि विवाहों के आख्यान प्राप्त होते हैं। हरिवंश में स्वयंबर प्रथा की भी उल्लेख मिलता है किन्तु इस विवाह की आलोचना की गई है। रुक्मिणी के विवाह के प्रसंग में कृष्ण रुक्मिणी के स्वयंवर का विरोध करते हैं। स्वयंवर का निषेध करने के लिये कृष्ण इस प्रकार के विवाह को दोषपूर्ण सिद्व करते हैं। यथा–

" न च सा मनुजेन्द्राणां स्वयंवर विधि क्षमा।

एका त्वेकाय दातत्या इति धर्मो व्यवस्थितः।।"[171]

श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण तथा तत्पश्चात् रुक्मिणी से विवाह को राक्षस विवाह का उदाहरण माना जा सकता है।[172] हरिवंश में गान्धर्व विवाह के भी अनेकों उदाहरण प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ– प्रद्युम्न और प्रभावती का गान्धर्व विवाह, साम्ब और गुणवती का गान्धर्व विवाह गद और चन्द्रवती का गान्धर्व विवाह आदि।[173] ऊषा और अनिरुद्व का गान्धर्व विवाह भी गान्धर्व विवाह का एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं। यथा–

ततश्चोद्वाह धर्मेण गान्धर्वेण समीयतुः।

अन्योन्यं रमतुस्तौ तु चक्रवाकौ यथा दिवा। 174

अर्थात् तदनन्तर वे दोनों गान्धर्व विवाह के नियम से परस्पर दाम्पत्यभाव स्वीकार करके एक दूसरे से मिले, जैसे चकवे दिन में समागम करते हैं उसकी प्रकार उन दोनों

ने परस्पर रमण किया।

हरिवंश में बहु विवाह प्रथा के प्रचलन में भी अनेकों उदाहरण मिलते हैं। हरिवंशपर्व में वर्णन आता है कि दक्ष प्रजापति ने वंश वृद्धि के लिये अपनी दस कन्याओं धर्म को, तेरह कश्यप को सत्ताईस सोम को चार अरिष्टनेमि को दो अडि.गरा को तथा दो कृशाश्व को प्रदान किया। यथा–

" ददौ स दश धर्माय कश्यपाप त्रयोदश।

सप्तविंशति सोमाय चतस्त्रोडरिष्ट डेमिने।।

द्वे चैव भृगूपुत्राय द्वे चैवाडिंगरसे तथा।

द्वे कृशाश्रवाय विदुषे तासां नामनि में श्रृणु।।[175]

श्री कृष्ण के 16008 पटरानियाँ थी। इसी प्रकार अनेकों ऐसे राजाओं का उल्लेख हरिवंश्या मे। मिलता हैं। जिनके एक से अधिक पत्नियाँ थी। इन उदाहरणो के आधार पर हम कह सकते हैं। कि हरिवंश पुराण कालीन में बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी।

अन्त्येष्टि संस्कार :-

मानव जीवन का अन्तिम संस्कार अन्त्येष्टि है, जो मृत्यु के समय सम्पादित किया जाता है। इसका उद्देश्य मृतात्मा को स्वर्ग लोक में सुख और शान्ति प्रदान करना है। बौधायन के अनुसार जन्म के बाद के संस्कारों द्वारा व्यक्ति इस लोक को जीतता है जबकि इस संस्कार के द्वारा वह स्वर्ग की विजय करता हैं यथा–

"जातसंस्कारेणेमं लोकमभिजयति, मृत संस्कारेणामुं लोकम्।"[176]

मत्स्य पुराण में तीन प्रकार की अन्त्येष्टि क्रिया का वर्णन मिलता है। – (1) शव को जलाना (2) शव को गाड़ना तथा (3) शव को फेंकना। यथा–

"अण्टक उवाच–यः संस्थितः पुरूषों दहाते वा निखन्यते वाडपि निकृष्यते वा ।"[177]

शवदाह के बाद अशौच की अवधि शुरु हो जाती थी, जो साधारणतः सभी के लिये तेरह दिन की होती थी। इस सन्दर्भ में विष्णु पुराण में कहा गया है कि ब्राम्हणों को दस दिन तक क्षत्रिय को बारह दिन तक, वैश्यों को पन्द्रह दिन तक तथा शुद्र को तीस दिन तक अशौच रहता है।[178] पिंडदान, श्राद्व–कार्य और ब्राम्हण भोजन के बाद मृतक का परिवार शुद्ध

माना जाता था। हिन्दू परिवारों में आज भी अन्त्येष्टि संस्कार की यही विधियाँ प्रचलित हैं।

हरिवंश में कृष्ण द्वारा कंस का वध किये जाने एवं तत्पश्चात् समस्त यादवों द्वारा कंस आदि का अन्त्येष्टि संस्कार करने के प्रसंग में इस संस्कार का उल्लेख मिलता है। तदनुसार–"जब रात बीती और सूर्योदय हुआ उस समय श्रेष्ठ यादवों ने मिलकर कंस के अन्त्येष्टि संस्कार की तैयारी की। उन सबने कंस के शरीर को शिविका में रखकर क्रमशः अन्त्येष्टि कर्म के विधान से उसका दाह संस्कार किया था। राजकुमार कंस का शव पहले यमुना जी के उत्तम तट पर लाया गया, फिर यथोचित रीति से मृत्युकालिक चिताग्नि के द्वारा उसका सादर अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। उसी प्रकार श्रीकृष्ण सहित यादवों ने उसके भाई महाबाहु सुनामा का भी दाह संस्कार किया। वृष्णि और अन्धक आदि कुलों के लोगों ने उन दोनो के लिये जल दान किया और बारबार यह कहा कि यह जल प्रेतों के लिये अक्षय हो। श्रीहरि तथा नृपश्रेष्ठ उग्रसेन ने श्राद्ध कंस के उद्देश्य से ब्राम्हणों के दस करोड़ स्वर्ण मुद्रायें बहुत सी गौएं रत्न, वस्त्र तथा नगरों जैसे सम्मानित ग्राम दिये और बारबार विप्रों से यह कहा हमारा दिया हुआ यह दान उस दिवंगत आत्मा के लिये अक्षय हो। इस प्रकार कंस और सुनामा के लिये जलदान करके दीनचित्त यादव राजा उग्रसेन को आगे किये मथुरापुरी में प्रविष्ट हुये।"[179]

उपुर्यक्त समीक्षा से यह स्पष्ट है कि हरिवंश में विविध संस्कारों का नामोल्लेख तो किया गया है, किन्तु इनका विवरण सन्तोषजनक एवं पर्याप्त नहीं है। इसका मूलभूत कारण संभवतः वह हो सकता है कि संस्कार से सम्बद्ध हरिवंश के सन्दर्भ प्रासंगिक है सौद्देश्य नहीं। हरिवंश का विवेच्य विषय संस्कारों का परिचय देना नहीं है। मात्र इसी आधार पर हम सहसा यह नहीं कह सकते कि धर्मसूत्र, स्मृति आदि की व्यवस्था हरिवंश को मान्य नहीं है। हरिवंश में अनेक स्थलों पर जातकर्म आदि शब्दों के साथ आदि शब्द प्रयुक्त मिलता है जिनसे संस्कारों की संख्या बाहुल्य का पता चलता है। इसके अतिरिक्त हरिवंश में संक्षेपतः अथवा सबिस्तार जिन संस्कारों का वर्णन हुआ है वह स्मृतिकारों एवं धर्मशास्त्रकारों के मत से अधिकतर साम्य रखता है। यह यथार्थ है कि पुराणों की व्यवस्था स्वयं अपने ही उदाहरणों के साथ समाहित नहीं होती अपितु इससे केवल समाज में उनकी मान्यता की सीमा का पता चलता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संस्कार–विषयक हरिवंश के उद्धरणों के नियम, निर्देश एवं निदर्शन धर्मशास्त्रों के

प्रायः निकट ही हैं।

वेशभूषा :-

पूर्व वैदिक युग से ही लोग विभिन्न प्रकार के वस्त्र और परिधान धारण करने लगे थे। वे बुनाई और सिलाई की कला से परिचित थे। ऋग्वेद के अनेक स्थलो पर आर्यो के विविध प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख हुआ है। वस्त्र के लिये 'वासस्' वसन् 'वस्त्र' आदि शब्दों का व्यवहार किया जाता था। [180] प्रायः ने 'नीवी' (अधोवस्त्र) और 'अधीवास' (उत्तरीय) का उपयोग करते थे। 'उर्णा' शब्द के उल्लेख से विदित होता है कि वे भेड़ के ऊन के वस्त्र बनाते थे। सुईकारी से कसीदे के वस्त्र (पेशस) भी बुने जाते थे। सुनहली जरी अथवा किमखाब की लम्बी अचकन भी उस काल के लोग पहनते थे जिसके लिये 'हिरण्यमान् अत्कान' का उल्लेख किया गया है।[181] ऋषि अथवा मुनि प्रायः पशुओं का चर्म धारण करते थे, जिस 'मल' कहा जाता था। अधिकतर क्षौम सूत के वस्त्र समाज में पहने जाते थे। आवश्यकता पड़ने पर अथवा सुन्दरता के लिये सिर पर उष्णीय पगड़ी का भी वे लोग प्रयोग करते थे।

उत्तरवैदिक युग में आकर समाज में अनेक प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग होने लगा। ऊनी वस्त्रों के लिये ऊर्णा का उल्लेख बहुत पहले से मिता है। 'शण' सन का उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि उस युग में आच्छादन, बोरे आदि अनेक वस्तुयें इससे बनती थी।[182] तार्प्य नामक शब्द भी सम्भवतः क्षौम वस्त्र के लिये प्रयुक्त होता था। सूत्र काटने का काम प्रायः स्त्रियाँ किया करती थीं। 'कर्घा' के लिये 'वेमन' शब्द का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः इससे कपड़ा बुना जाता था। अनेकों रंगों के वस्त्र समाज में प्रचलित थे जिन्हे स्त्री और पुरुष दोनों अपनी भिन्न–2 रुचि के अनुसार धारण करते थे। यही नहीं स्त्रियों कढ़ाई–बुनाई का भी काम करती थी।[183] वैदिककाल के बाद भी स्त्री और पुरुषों का वेशभूषा का स्वरुप कुछ परिवर्तनों के साथ वैसा ही रहा जैसा कि वैदिक काल में था।

हरिवंश के काल तक समाज में अनेक प्रकार के वस्त्रों का उपयोग होने लगा था जिन्हे स्त्री पुरुष दोनों धारण करते थे। अभिजात और धनीवर्ग के लोग कौशेय वस्त्र धारण करते थे। [184] रेशम से बने हुये वस्त्र को 'कौशेय' कहते थे। ऊन से बने हुये वस्त्र को और्ण और्णक कहा जाता था। कपास निर्मित सूत्री वस्त्र भी उपयोग में लाये जाते थे।[185] सन्यासी एवं

ऋषिमुनि लोग चर्ण वस्त्र यथा मृगचर्म आदि तथा वृक्ष–सुलभ वस्त्र जैसे बल्कल, मेखला काश और कुश आदि के वस्त्र प्रयोग करते थे। हरिवंश काल में वस्त्रों के अनेक नामों का प्रचलन प्रारम्भ हो गया। 'अद्योवस्त्र' को 'वास' अथवा 'शाटी' कहा जाता था। उर्ध्ववस्त्र के लिये 'उत्तरीय' या 'प्रावार' शब्द का प्रयोग किया जाता था। सिर पर धारण करने के लिये समाज में 'उष्णीश' या पगड़ी का प्रचलन तो बहुत पहले से था। हरिवंश से विदित होता है कि पुरुष प्रायः पगड़ी बांधते थे। उस युग में मुकुट का भी प्रयोग किया जाता था। यथा–

"स बद्वाडगदनिर्व्यु हश्चित्रया वनमालया।

शोभमानो हि गोविन्दः शोभसामास तद् ब्रजम्।।"[186]

अर्थात् बाहों में भुजबंद बांधे और मस्तक पर मुकुट धारण किये, विचित्र वनमाला से सुशोभित गोविन्द उस ब्रज की शोभा बढ़ा रहा है।

किन्तु उच्च परिवारों और अभिजात वर्ग के अतिरिक्त साधारण जनता में इसका व्यवहार नहीं था। समाज में सभी वर्ग के सदस्य चाहे वे धनी रहे हो या निर्धन, उष्णीष (पगड़ी) धारण करते थे। स्त्री और पुरुष रंग बिरंगे कपड़े पहनने में रुचि लेते है। पीला–नीला लाल, सफेद, आदि विभिन्न प्रकार के रंगीन वस्त्र समाज में प्रचलित थे। स्त्रियों तो प्रायः विभिन्न रंगों के वस्त्र धारण किया करती थी। [187] यद्यपि पुरुष भी इसके अपवाद नहीं थे। विभिन्न सभाओं और समारोहों में श्रीकृष्ण पीत कौशेय वस्त्र धारण किये सम्मिलित होते थे। पीताम्बर तो कृष्ण का प्रिय वस्त्र ही था। यथा–

"हरितालार्द्र पीतेन स कौशेयेन वाससा।

वसानो भद्रवसंन कृष्णः कान्ततरोड भवत्।।"[188]

अर्थात् उस समय हरिलाल के पङक की भांति पीले रेशमी पीताम्बर से अपने अंगों को आच्छादित करने वाले माङगलिक वस्त्रधारी श्रीकृष्ण और भी अधिक मनोहर प्रतीत हो रहे थे।

जहाँ कृष्ण पीला वस्त्र धारण करते थे वही बलराम नीला वस्त्र धारण करते थे।[189] वानप्रस्थी और संन्सायी काषाय वस्त्र पहना करते थे। काला वस्त्र, मृत्यु शोक और दुःख का परिचायक माना जाता था। आरक्त लाल रंग के परिधान से युद्ध और रौद्र का वातावरण

अधिक व्यक्त होता था। शुभ और कल्याण के लिये श्वेत रंग का महत्व था। हरिवंश में कपड़ों की रंगाई किये जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[189] स्त्रियों द्वारा साड़ी के भीतर एक दूसरा वस्त्र (पेटीकोट आदि) भी पहने जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[190]

सूती, ऊनी और रेशमी सभी प्रकार के वस्त्र निर्मित होते थे। 'क्षुमा' अथवा 'अलसी' के धागे से बना वस्त्र 'क्षौम' कहा जाता था। समाज का साधारण वर्ग प्रायः सूती वस्त्र ही धारण करता था। उंचे और अभिजात वर्ग के लोग विशेष अवसरों और समारोहों पर कौशेय वस्त्र पहनते थे। सर्दी में ऊनी वस्त्र पहने जाते थे। ऊनी कपड़े कौ और्ण कहा जाता था। कम्बल और तूस का व्यवहार समाज में बहुत पहले से था। वस्त्रों की बुनाई 'सुबेम' (करधे) से हुआ करती थी तथा सिलाई सूची (सुई) से। तपस्वी वनवासी और त्यागी प्रायः मृगचर्म, अथवा 'अजिन' धारण करते थे। कुछ लोग 'कुशिचीर' और 'शाणी' सन का बन हुआ वसन भी उपयोग में लाते थे। 'पादुका' और 'उपानह' भी पहने जाते थे। इस प्रकार हरिवंश मै। जिस प्रकार की वेशभूषा का उल्लेख प्राप्त होता है। वह प्रायः महाभारत में वर्णित स्त्री–पुरुषों की वेशभूषा से मिलता जुलता है।

आभूषण :-

प्राचीन काल से व्यक्ति सौन्दर्य प्रेमी रहा है। स्त्री पुरुष अपने शरीर को सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिये विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अलंकारों का भी प्रयोग करते रहे हैं। मनुष्य की यह सौन्दर्य प्रियता प्राग्वैदिक काल से ही रही है। हड़प्पा और मोहनजोड़दो के लोग मनके और ताबीज पहनते थे जो सीप की गुरिया के बने होते थे लेकिन धनिकों के आभूषण सोने और चांदी के बने होते थे। ऋग्वेद से विदित होता है कि स्त्री और पुरुष दोनों स्वर्ण और रजत से बने आभूषणों में समान रुचि रखते थे। दोनों अनेक प्रकार के आभूषण पहनते थे। जिनमें रत्न जड़े होते थे। बाद के युगों में भी स्त्री–पुरुषों द्वारा जो आभूषण धारण किये जाते रहे जो विविध धातुओं के बने होते थे।

हरिवंश से भी स्त्री–पुरुष दोनों के विविध आभूषणों का विवरण मिलता है। ये आभूषण स्वर्ण और रजत के तो होते ही थे, साथ ही मणि मोती हीरे–जवाहरात जैसे विभिन्न मूल्यवान रत्नों से मंडित भी होते थे। शरीर के विविध अंगों के लिये अलग–2 आभूषण प्रयोग

में लाये जाते थे जैसे—सिर को सजाने के लिये जहां महिलायें कुसुम—कुसुम मंजरी तथा पल्लव आदि का प्रयोग करती थी वहीं राज लोग सिर के आभूषण के रुप में मुकुट आपीड तथा किरीट आदि का प्रयोग करते हैं।[191] कानों के आभूषण में कुण्डलों का प्रयोग स्त्री तथा पुरुष दोनों ही करते थे। कंठाभूषण में मणि हार तथा पुष्पमाला का प्रयोग स्त्री तथा पुरुषों के द्वारा किया जाता था। हस्ताभूषणों में वलय, कंकण, भुजबंद, कटक, केयूर, अंगद, अंगूठी, आदि आभूषण पहने जाते थे। [192]

कटि भाग के आभूषणों में कटिभूषण किंकिणी, मुक्तामाला, आदि आभूषणों का प्रयोग होता था। पैरों में अनेक लड़ियों वाले पाजेब और नुपूर के अतिरिक्त कड़े भी पहने जाते थ। अभिजात वर्गो के आभूषण सोने, चांदी हीरे—जवाहरात मोती आदि के होते थे। तथा सामान्य और निर्धन व्यक्तियों के पीतल मूंगा कौडी आदि के। हरिवंश पुराण में आभूषणों को सौन्दर्य—संवर्द्वन का साधन माना गया है। नारी की सौन्दर्य—वुद्धि नाना प्रकार के आभूषणों से होती है हरिवंश में ऐसा विचार व्यक्त किया गया है।[193] हरिवंश में कलियुग की स्थिति का वर्णन करते हुये कहा गया है सुवर्ण आदि रत्नों के क्षीण हो जाने के कारण स्त्रियाँ केशविन्यास से ही सन्तुष्ट रहेगी।[194] हरिवंश से ज्ञात होता है कि स्त्री तथा पुरुष अपने को जहाँ विविध प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करते थे वहीं वे अपने केशों को विविध प्रकार से सांवरते थे तथा सुगन्धित तेलों का प्रयोग करते थे। शरीर में विविध अड़राग एवं अनुलेपन लगाये जाते थे।[195]

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि वस्त्रालंकार से सम्बन्धित उद्धरण हरिवंश में प्रायः विकीर्ण रुप में मिलते है इसका कारण यह है कि हरिवंश का उद्देश्य इनका साक्षात् विवरण देना नहीं है तथापि इनसे सम्बन्धित जो भी उद्धरण हरिवंश में मिलते हैं, उनकी सहायता से तत्सम्बन्धी रुप—रेखा तैयार करने में सविशेष सहायता मिलती हैं।

खान -पान :-

हरिवंश के समय में विविध प्रकार के भोजन और पेय प्रचलित थे। भोजन करने वालों के दो वर्ग थे एक शाकाहारी और दूसरा मांसाहरी। दिन में दो बार भोजन करने की प्रथा थी। माध्याह—भोजन को समाज में वर्जित माना गया था। भोजन की शुद्धता और निर्मलता पर अत्यधिक बल दिया जाता था। पग प्रक्षालित करके भोजन करने की प्रथा थी। भोजन के पश्चात्

तीन बार मुख से कुल्ला करने का विधान किया गया था। एक साथ न खाकर प्रायः लोग अलग–2 खाते थे किन्तु व्रत आदि अवसरों पर एक साथ खाने का विधान था। उस युग में भोजन करने की चार प्रकार की विधियाँ थी 1. भक्ष्य (जो चबाकर खाया जाता था) 2. चोष्य (जो चूसकर खाया जाता था) 3. लेहन (जो चाटकर खाया जाता था) 4. पेय (जो पीकर खाया जाता था)

सामिष आहारी मछली, हिरण, खरगोश, पक्षी, शूकर, बकरा, पृषत्, नामक मृग रुरु मृग तथा गवय जैसे पशुओं का मांस खाते थे।[196] यज्ञ में अर्पित किये गये मांस का प्रसाद ब्राम्हण पुरोहित भी ग्रहण करते थे तथा अन्य ब्राम्हण भी गाय का मांस भी लोग खाते थे।[197] श्राद्ध जैसे धार्मिक कृत्यों के समय तो मांस अनिवार्य रुप से खाया और खिलाया जाता था।[198] किन्तु मांस खाने वाले ब्राम्हणों की संख्या समाज में अधिक नहीं थी। अधिकतर ब्राम्हण निरामिष थे। क्षत्रिय वर्ग अवश्य मांस खाने में अग्रणी था। लेकिन इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है, कि मांसाहार अथवा तदर्थ पशु–पक्षियों का वध देवतोपहार, यज्ञ और श्राद्ध आदि विशिष्ट अवसरों पर ही अनुमन्य था। साधारणतः इसे हिंसा और अधर्म माना जाता था।[199]

साधारण लोग प्रायः निरामिष आहारी थे। वे सर्वदा शाकाहारी और सात्विक भोजन करते थे। प्रायः वे गोधूम (गेहूं) यव (जब) ब्रीहि (धान), माष (उड़द), मुदुग, (मूंग) चणक (चना) तिल, तेल, घृत, दुग्ध, दही, कन्द–मूल, फल, मसाले, लवण, गुड, आदि खाते थे।[200] वे पूरिका (पूड़ी) और शष्कुक्ति (कचौड़ी) का खाने पीने में अधिक व्यवहार करते थे। धानापूय, रसालापूय, मोदक, पकाकार (हलुआ) अपूय आदि विभिन्न प्रकार के व्यंजन उस युग में बनाये जाते थे। समाज की साधारण जनता में प्रायः ओदन (भात), कृषरोदन (खिचड़ी), गुड़ोदन (मीठा भात), सूप (दाल), सक्तु (सत्तू), शाक आदि अधिक प्रचलित था।

हरिवंश काल में मदिरा–पान का चलन समाज में प्रचलित था। हरिवंश के कुछ उद्धरणों से इसकी पुष्टि होती है। विष्णुपर्व मे विवृत है कि बलराम, गोमन्त पर्वत में रमण करते समय मदिरापान कर रहे थे उस समय वारूणी, कान्ति एवं श्री आदि देवांगनायें उन्हें विविध प्रकार से रिझा रही थी।[201] इसी प्रकार पिण्डारक तीर्थ में कुकुर, अन्धक और वृष्णि आदि यदुंवशियों द्वारा जलक्रीड़ा, गान एवं बलराम द्वारा मदिरापान किये जाने का विवरण मिलता है।[२०२]

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि स्मृतिकारों ने सुरापान को निन्दनीय बताया है तथा

ब्राम्हण के लिये इसका सेवन निषिद्ध माना है। विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार मदिरा दस प्रकार की होती थी, जिसे पीना ब्राम्हणों के लिये वर्जित था किन्तु क्षत्रिय और वैश्य के लिये स्वीकृत।[203] इस प्रकार सुरापान केवल क्षत्रिय आदि तीन वर्ण कर सकते थे जबकि ब्राम्हण के लिये यह निषिद्ध था।

रहन-सहन एवं समाज का स्तर :-

हरिवंश में जिस समाज का विवरण मिलता है उसका रहन–सहन अत्यन्त उच्च्य कोटि का है। इसका कारण यह है कि हरिवंश में अधिकांशतः राजाओं और ऋषियों का उल्लेख मिलता है और इनका रहन सहन भी राजाओं और ऋषियों के रहन–सहन से समानता रखता है। जहाँ राजाओं एवं राजपरिवारों का रहन–सहन अत्यन्त भव्य एवं विलासिता पूर्ण है वहीं ऋषि मुनियों का रहन–सहन सात्विक एवं त्याग–तपस्या से ओत प्रोत है। हरिवंश में गांवों के लोगों का रहन–सहन भी सन्तोषजनक है।[204] हरिवंश में कंस की रंगशाला की भव्यता का वर्णन निम्नवत किया गया है– वहाँ तो मंच रखे गये थे, वे चित्रों से सुशोभित तथा आठ कोणवाले पापों से अंलकृत थे जिन घरों में वे मंच थे, उनके द्वारों पर वेदियाँ बनी थी और कुण्डी के साथ किवाडे भी थे। उनमें झरोखों के रूप में अर्द्धचन्द्राकार छिद्ररखे गये थे। वे मंच और मंचागार उत्तमोत्तम बिछौनों से विभूषित थे। उन मंचागारों के द्वारा पूर्वाभिमुख थे। वे सब के सब सुन्दर और खुले हुये थे (अथवा उनमें झीन्रे सूत के मनोहर परदे लगे थे) फूलों की मालाओं तथा मोती आदि की लड़ियों से उन सबको सजाया गया था। वे शोभासम्पन्न एवं अलंकृत मंचागार शरद ऋतु के बादलों के समान शोभा पाते थे। वहाँ एक ही शिल्प से जीवन निर्वाह करने वाले श्रेणी नामक कारीगरों तथा एक जाति के समुदायों के लिये पृथक–पृथक मंच थे। उन मंचों पर जो पताकायें निरन्तर फहराती रहती थी उनमें उन कारीगरों के उपकरण– द्रव्य के चिन्ह अंकित थे। उन पताकाओं से वे मंच पर्वतों के सामान शोभा पाते थे। अन्तः पुर की स्त्रियों के लिये अनेक प्रेक्षागार सुशोभित हो रहे थे जो सुवर्ण से न चित्रित तथा रत्नों की प्रभा से व्याप्त थे। उन प्रेक्षागारों में चामरों हारा, झनकारते हुये भूषणों तथा विचित्र मणियों की चित्र विचित्र प्रभायें सब ओर फैल रही थी। वहाँ विख्यात आसन, सोने के पलंग तथा बिछे हुये विचित्र एवं पुष्पगुच्छों से युक्त कालीन शुभोभित थे। वहाँ सोने के घड़ों में पीने के लिये जल रखे गये थे। जलपान के

जो स्थान थे, उन्हें भी शोभा से सम्पन्न किया गया था। वहाँ फल के टुकड़ों से भरी हुयी चंगेरियां (टोकरियां) रखी गयी थीं जिन्हें जलपान या कलेवे के उपयोग के लिये वहाँ स्थापित किया गया था। [205] इसी प्रकार द्वारका नगरी के वर्णन मे भी लोगों के रहन–सहन के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।[206] इस प्रकार हम कह सकते हैं, कि हरिवंश में जिस समाज का वर्णन मिलता है उसमें लोगो के रहन–सहन का स्तर उच्च कोटि का है।

रीति-रिवाज एव सामाजिक उत्सव :-

हरिवंश से समाज में प्रचलित विभिन्न प्रकार के रीति–रिवाजों की जानकारी प्राप्त होती है। समाज में यज्ञ किये जाने की प्रथा थी। हरिवंश में राजसूय एंव अश्वमेघ यज्ञ किये जाने का विवरण प्राप्त होते हैं। [207] लोगों द्वारा विभिन्न तीर्थो की यात्रा कर पुण्यलाभ अर्जित करने का भी रिवाज था। हरिवंश में ऐसे अनेक तीर्थो के नाम गिनाये गये हैं ऐसे तीर्थो में पिण्डारक तीर्थ, पुष्कर, काशी (वाराणसी) आदि हैं। समाज में विविध प्रकार के व्रतों के अनुष्ठान का भी रिवाज था। हरिवंश के विष्णुपर्व में पुण्यकव्रत तथा अन्य तिथियों को किये जाने वाले व्रतों का बिस्तार से वर्णन प्राप्त होता है।[208] समाज में विविध प्रकार के उत्सवों को मनाये जाने का भी रिवाज था। विष्णुपर्व में गोपों द्वारा इन्द्रोत्सव मनाये जाने का विवरण प्राप्त होता है।[209] समाज में घूत, मृगया, झूला, मल्लयुद्ध, जलक्रीड़ा, गोष्ठी और संसद, अभिनय एवं नाटक संगीत आदि के द्वारा मनोरंजन किये जाने का रिवाज था। हरिवंश में रास के लिये हल्लीसक शब्द का प्रयोग हुआ है। यह नृत्य दो–दो गोपिकाओं के द्वारा मण्डल बनाकर कृष्ण चरित्र के गान के साथ होता है और कृष्ण गोपिकाओं के मण्डल के बीच में सुशोभित होते हैं यथा–

"तास्तु पंक्तीकृताः सर्वा रमयन्ति मनोरमम्।
गायन्त्यः कृष्णचरिंत द्वन्द्वशे गोपकन्यकाः।।
एवं स कृष्णो गोपिनां चक्रवालैरलंकृतः।
शारदीषु सचन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखी।।"[210]

हरिवंश के कृष्णचरित्र में छालिक्य गान्धर्व नामक वाद्यमिश्रित संगीत एक महत्वपूर्ण प्रसंग है। जलक्रीड़ा के बाद कृष्ण, सत्यभामा, नारद और अर्जुन के साथ अप्सराओं के सम्मिलित बाद्य और संगीत का वर्णन है। [211]

हरिवंश में कृष्ण के अश्वमेघ यज्ञ के प्रसंग में नट की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ भद्र नामक नट की निपुणता से प्रभावित ऋषि उसे कोई वर माँगने की अनुमति देते हैं। भद्र नट समस्त पृथ्वी में अप्रतिहत रुप से विचरण करने तथा अवध्य होने का वर मांगता है।[212] ऋषियों के वरदान से निर्भय इस नट को समस्त पृथ्वी में भ्रमण करते हुये कहा गया है।[213] हरिवंश में वर्णित नट की उत्पत्ति का यह प्रसंग भारतीय नाट्यकला के उद्गम पर प्रकाश डालता है।

हास्य–विनोदपूर्ण अभिनय का उत्कृष्ट उदाहरण वाणासुर के आख्यान में मिलता है। यहाँ शिव, पार्वती, शिव के गण, अप्सराओं तथा उण को क्रीड़ाओं में तत्पर चित्रित किया गया है। चित्रलेखा नामक अप्सरा पार्वती का वेश धारण कर शिव को मनाने का प्रहसन करती है। चित्रलेखा का अभिनय पार्वती तथा सभी अप्सराओं के लिये हास्य का परम कारण बन जाता है। चित्रलेखा के अनुकरण–स्वरुप अप्सरायें पार्वती का वेष रख लेती हैं। पार्वती का वेश बनाने वाली अप्सराओं को भ्रम में डालने के लिये शिव के गण शिव का रुप धारण करते हैं। स्वयं शिव तथा पार्वती अप्सराओं तथा गणों के अभिनय–चातुर्य पर विस्मित हो जाते हैं। बाणासुर के वृतान्त में यह प्रहसन मुग्धाभिनय का एक रुप ज्ञात होता है।

हरिवंश में कृष्ण तथा यादवों की छालिक्य क्रीड़ा के अन्तर्गत नारद का विविध हाव–भावों के साथ हास्यपूर्ण अभिनय भी विकसित नाटक की पूर्ववर्ती रुप ज्ञात होता है। प्रघुम्न, साम्ब तथा गद का कुछ यादवों के साथ बज्रपुर जाने का प्रसंग दो महत्वपूर्ण नाटकों को प्रस्तुत करता है। अभिनेताओं का यह समूह बज्रपुर में नाटक प्रदर्शन के लिये प्रस्थित होता है। नट सर्वप्रथम नृत्य के द्वारा बज्रपुरवासियों के चित्त को अभिभूत करता है।[214]

नट के नृत्य के बाद प्रघुम्न आदि अभिनेताओं द्वारा रामायण के अभिनय का प्रसंग है।[215]

नटवेशधारी प्रघुम्न आदि यादव तथा भद्र नट के द्वितीय नाटक का अभिनय वज्रपुर के कालोत्सव नामक उत्सव में होता है। यह नाटक वज्रपुर के राजा वज्रनाम की अनुमति से किया जाता है। इस नाटक को 'रम्भाभिसार कौबेर' कहा गया है। रम्भाभिसार कौबेर नाटक में नलकूबर का अभिनय प्रघुम्न, विदूषक का सम्ब, रावण का सूर तथा रम्भा का मनोवती नामक

वारवनिता करती है।[216] इस नाटक के माध्यम से तथा यादवों के द्वारा वज्रपुरवासियों को अत्यन्त सन्तुष्ट करने का वर्णन है।[217]

हरिवंश में कौबेर रम्भाभिसार प्रकरण का उल्लेख एक महत्वपूर्ण विषय है। इस नाटक के पूर्व धन सुषिर, मुरज, आनक, तथ तन्त्री सदृश ब्राधों में सामंजस्यपूर्ण वादन का उल्लेख है। [218] वाद्य के बाद द्वारका की वारांगनाओं के द्वारा छलिक्य के गान का वर्णन है। इस संगीतक में वारांगनाओं द्वारा गंगावतरण का गान गान्धार गान के साथ लय तथा ताल में होता है। [219] संगीतक के बाद प्रद्युम्न, गद तथा साम्ब द्वारा नान्दी गाये जाने का वर्णन है।[220]

इस प्रकार हरिवंश में विभिन्न रीति–रिवाजों तथा सामाजिक उत्सवों का वर्णन मिलता है।

अंधविश्वास :-

हरिवंश कालीन समाज में अनेक प्रकार के अंधविश्वास भी प्रचलित थे। स्त्री तथा पुरूषों का इनमें विश्वास था। कोई भी कार्य शुभ नक्षत्र तथा दिन को सम्पन्न किया जाता था। उदाहरणार्थ श्रीकृष्ण ने द्वारकापुरी में दुर्ग निर्माण का कार्य रोहिणी नक्षत्र में श्रेष्ठ शनिवार को उत्तम ब्राम्हणों से स्वस्ति वाचन कराकर विपुल पुष्याह घोष के साथ आरम्भ किया था। [221] मनोवांछित कार्य की पूर्ति के लिये विविध प्रकार के व्रत एवं उपवासों में लोगों की अटूट आस्था दिखाई गयी है। [222] समाज में वृक्ष पूजा, पशुपूजा, पर्वत पूजा तथा सरिता पूजन में भी लोगों की आस्था थी। हरिवंश में पारिजात वृक्ष के लिये श्रीकृष्ण तथा इन्द्र के बीच भीषण युद्ध भी दिखाया गया है। [223] कभी–कभी वृक्ष का वास्तविक रूप में पूजन किया जाता था और कभी–कभी उसके अधिदेवता के रूप में। हिन्दूधर्म में पीपल और तुलसी के पेड़ अत्यधिक पवित्र माने जाते हैं तथा यह समझा जाता है कि इन पेड़ों में देवता निवास करते हैं। अशोक एवं न्यग्रोध अथवा वट का वृक्ष भी हिन्दू धर्म में अत्याधिक पवित्र और पावन माना जाता है। विभिन्न पुराणों में यह विवरण मिलता है कि प्रलय काल में 'न्यग्रोध' वृक्ष पर बालक रूप में भगवान नारायण पड़े हुये थे।

गौपूजा भी समाज में प्रचलित थी तथा इसका दान देना अत्याधिक पुण्य का कार्य माना जाता था। हिन्दू धर्म में विभिन्न पर्वतों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है जिनका

समय–समय पर पूजन होता था। मैनाक, मेरू, कैलाश, हिमालय आदि पर्वतों का उल्लेख हरिवंश में मिलता है तथा इनके धार्मिक स्वरूप का भी विवरण मिलता है। शिव के कारण कैलाश पर्वत की महिमा थी। भगवान शिव स्वयं उस पर्वत पर विराजमान रहते हैं। हिमालय की पुत्री पार्वती थीं जिनका विवाह कैलाश पर्वत निवासी शंकर से हुआ था। हिन्दूधर्म के अन्तर्गत इस काल तक अनेक सरिताओं का पूजन प्रारम्भ हो गया था। गंगा नदी के लिये कहा गया है कि वह भगवान विष्णु के पैर से निकलकर आकाश में प्रवाहित होती हुयी शिव की जटा से होकर पृथ्वी पर गिरी। गंगा को देवी के रूप में स्वीकार किया गया है। उसकी सहायक नदी यमुना है जो अपनी पवित्रता और दिव्यता के लिये प्रसिद्ध है। श्रीकृष्ण ने यमुना नदी के तट पर अनेकों विभिन्न लीलायें की थीं सरस्वती नदी भी देवी के रूप में स्वीकार की गई जो भूतल के नीचे बहकर गंगा की धारा में मिल गयी। प्रयाग का संगत तीन महान पवित्र नदियों का संगम है जिसमें गंगा यमुना और सरस्वती नदियों की धारायें मिलती हैं। दक्षिण में नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी भी प्रसिद्ध और पवित्र नदियां हैं। नदियों के साथ साथ कुछ झीलें भी अपनी पावनता के लिये प्रसिद्ध हैं। हिमालय के उच्च शिखर पर स्थित मानसरोवर झील भी अत्याधिक प्रसिद्ध है जो कैलाश पर्वत के निकट स्थित है। अजमेर के समीप स्थित पुष्कर झील भी अपनी पवित्रता के लिये प्रसिद्ध है जहाँ पर स्वयं भगवान विष्णु ने तपस्या की थी, ऐसी मान्यता है और आज भी यहाँ दूर–दूर से लोग आकर स्नान–पूजा आदि करते हैं।

<u>शिक्षा–</u>

प्राचीन भारतीयों ने शिक्षा को अत्याधिक महत्व प्रदान किया भौतिक तथा अध्याधिक उत्थान तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों के विधिवत निर्वाह के लिये शिक्षा की महती आवश्कयता को सदा स्वीकार किया गया। वैदिक युग से ही इसे प्रकाश का स्त्रोत माना गया जो मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को आलोकित करते हुये उसे सही दिशा निर्देश देता है। सुभाषित रत्नसंदोह में कहा गया है कि " ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है जो उसे समस्त तत्वों के मूल को जानने में सहायता करता है तथा सही कार्यों को करने की विधि बताता है। यथा–

"ज्ञान तृतीय मनुजस्य नेत्रं समस्ततत्वार्थ विलोकिद क्षम्।
तेजोनपेक्षं विगतान्तरांय प्रवृत्ति मत्सर्वजगत्त्रयेपि।।" [224]

महाभारत में वर्णित है कि विद्या के समाज नेत्र तथा सत्य के समान तप कोई दूसरा नहीं है। यथा–

"नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्टि सत्यसयं तपः।"[225]

इसी प्रकार विष्णु पुराण में कहा गया है कि वास्तविक विद्या वही है जो मुक्ति का साधन है। विद्या का दूसरा स्वरूप वह है जिसके द्वारा मनुष्य शिल्प–नैपुण्य प्राप्त करने में सफल होता है। यथा–

"सा विद्या या विभुक्तये। विद्यान्या शिल्पनैपुण्यम्।।'[226]

इस प्रकार प्राचीन भारतीयों की दृष्टि में शिक्षा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उत्थान का सर्वप्रथम साधन है।

हरिवंश में भी शिक्षा के जिस स्वरूप की जानकारी प्राप्त होती है वह अधिकांशतः प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति से मिलती जुलती है। शिक्षा का प्रारम्भ उपनयन संस्कार के पश्चात होता था। यह संस्कार पूर्ण रूपेण शिक्षा से सम्बद्ध था और बालक की शिक्षा इसके बाद से ही अविलम्ब गुरु के सानिध्य में प्रारम्भ हो जाती थी। शूद्रों के अतिरिक्त अन्य तीनों वर्णो के लिये उपनयन संस्कार अनिवार्य था। प्रायः तीनों वर्णो के बालक अपने कुटुम्ब से दूर गुरु के यहाँ शिक्षा ग्रहण करने के लिये जाते थे। तथा गुरुकुल में रहकर विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करते थे। इस सम्बन्ध में हरिवंश से विदित होता है कि कृष्ण और बलराम अवन्तिपुर (उज्जयिनी) के निवासी गुरु सान्दीपनि के यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिये गये थे। यथा–

"कस्यचित् त्वथ कालस्य सहितौ रामकेशवौ।

गुरुं सान्दीपनि काश्यमवन्तिपुर नासिनम्।।"[227]

इसी प्रकार हरिवंश पर्व में विवरण मिलता है कि सगर ने और्व मुनि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी।[228] इस प्रकार हरिवंश के समय में भी शिक्षा गुरुकुल तथा आश्रमों में दी जाती थी। और ये स्थल शिक्षा और विद्या के विख्यात अधिष्ठान थे। सान्दीपनि और और्व के आश्रम उच्चकोटि के गुरुकुल थे। तथा यहाँ विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। समाज में गुरु अथवा आचार्य का बहुत भी सम्मानपूर्ण स्थान था। उसे देवता के तुल्य माना जाता था। राजा

तथा उनका आदर तथा सम्मान करते थे। आचार्य अथवा गुरु के प्रति शिष्य का भाव अत्यन्त पावन और उदारत था। इसी प्रकार गुरु अपने शिष्य के प्रति अत्यधिक स्नेह–सिक्त और सम्मान युक्त होता था। प्रायः छात्र योग्य और विद्वान गुरुओं के यहाँ शिक्षा ग्रहण करने के लिये जाते थे। गुरु भी उत्साही और प्रखर बुद्धिवाले छात्रों को शिक्षा प्रदान करने में प्रसन्नता का अनुभव करता था। दोनों का सम्बन्ध पिता–पुत्र सा था। यह कहा गया था कि शिष्य का यह कर्तव्य है कि वह अपने आचार्य को पितृ तुल्य और मातृतुल्य माने तथा किसी भी अवस्था मे। उसके प्रति द्रोह न करे। शिष्य अपने आचार्य अथवा गुरु का सर्वदा सम्मान और आदर करता था। आचार्य कुल में रहते हुये वह आचार्य के लिये भिक्षाटन करता था। अग्नि की परिचर्या करता था। आचार्य के गृह का कार्य करता था। इसके साथ–साथ वह अनेक नियमों और आचारों का पातल करता था। ब्रम्हचर्य का पालन करना उसका परम कर्तव्य था। समिधा, मेखला, मृगचर्म आदि धारण करते हुये ब्रम्हचारी अपने व्रतों का पालन करता था। शिष्य अपने गुरु के निये नित्य जल, दातुन, आसन आदि सुलभ करता था। यही नहीं वह आचार्य के घर का भी कार्य करता था। ईधन की व्यवस्था घर की सफाई और पशुओं की देखभाल वह करता था। गुरु की शुश्रुषा करना उसका प्रधान कर्तव्य था।[229]

छात्रों को सबसे पहले वेदों का अध्ययन कराया जाता था क्योंकि समस्त विषयों का उदगम स्थल बेदों को ही माना जाता था। वेद के छः अंग थे– शिक्षा, कल्य, व्याकरण, निरुवत्, छन्द और ज्योतिष। मंत्रों या सूक्तों को कंठस्थ करने का चलन तत्कालीन समाज में था, जो शिष्य परम्परा में मौखिक ज्ञान प्रदान करने के आधार पर योग्य शिष्यों के स्मरण कर। दिया जाता था। बेदों के अध्ययन के पश्चात् अन्य विषय पढ़ाते जाते थे। इन विषयों में यज्ञ विद्या, इतिहास पुराण व्याकरण भूत विद्या, तर्कशास्त्र, नक्षत्र, विद्या, क्षात्र विद्या, एकायन आदि विभिनन विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। इनके अतिरिक्त उपवेदों (धनुर्वेद आयुर्वेद और गान्धर्ववेद) का भी अध्ययन किया जाता था। हरिवंश में उल्लेख मिलता है कि कृष्ण और बलराम ने छहों अंगों सहित सम्पूर्ण वेद, दीक्षा, संग्रह सिद्धि और प्रयोग–इन चार पादों से युक्त धनुर्वेद की तथा रहस्य सहित शस्त्र समूहों की शिक्षा प्राप्त की थी।[230] इसी प्रकार और्व ऋषि ने सगर को वेद, शास्त्र और अस्त्र विधा की शिक्षा दी थी।[231]

गुरुकुल में ब्रम्हचारी की शिक्षा की समाप्ति पर समारोह आयोजित किया जाता था जिसमें आचार्य उसे ऐसे उपदेश देता था जो उसके मात्री जीवन को प्रगतिमय बनाते थे। यह आयोजन समार्वतन या स्नान संस्कार के नाम से सम्पन्न होता था। 'समावर्तन का अर्थ था–गुरु के यहाँ से शिक्षा प्राप्त करके घर लौटना। उस समय ब्रम्हचारी स्नान करता था। शिक्षा के अन्त में विद्यार्थी के स्नान के कारण से कहा जाता था। आचार्य प्रायः शिष्य को पूर्णरुप से शिक्षित करने के बाद उससे दक्षिण ग्रहण करता था। वैसे शिक्षा समाप्ति के बाद गुरु को दक्षिणा प्रदान करना शिष्य का परम कर्तव्य माना जाता था। हरिवंश में भी विवरण मिलता है कि कृष्ण बलराम ने विद्या पढ़ने के बाद गुरु सान्दीपनि को गुरुदक्षिणा के रुप में उनके मरे हुये पुत्र को जीवित करके दिया था।[232]

स्त्रियों की स्थिति :-

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा हैं हिन्दू समाज में उनका सम्मान और आदर प्राचीनकाल से आदर्शात्मक और मर्यादायुक्त था। उनकी अवस्था पुरुषों के सदृश थी। वे अपना मनोनुकूल आत्मविकास और उत्थान कर सकती थीं। उन्हें विवाह, शिक्षा, सम्पत्ति आदि में अधिकार प्राप्त थे। कन्या के रुप में पत्नी के रुप में तथा मां के रुप में वे हिन्दू परिवार और समाज में आदृत थी। उनके प्रति समाज की स्वाभाविक निष्ठा और श्रद्धा रही है। परिवार ओर समुदाय में उनके द्वारा कन्या, पत्नी, वधू और माँ के रुप में किये जाने वाले योगदान का सर्वदा महत्व और गौरव रहा है। भारतीय धर्मशास्त्र में नारी सर्व–शक्ति सम्पन्ना मानी गई तथा विद्या, शील, ममता, यश और सम्पत्ति की प्रतीक समझी गई। गृह की साम्राज्ञी के रुप में उसे प्रतिष्ठापित किया गया तथा घर के अन्य सदस्यों को उसके शासन में रहने के लिये निर्देशित किया गया। शनैः–शनैः समाज में उसका महत्व इतना अधिक बढ़ा कि उसके बिना अकेला पुरुष अपूर्ण और अधूरा समझा गया।[233] शास्त्रकारों का कथन है कि केवल पुरुष कोई वस्तु नहीं अर्थात वह अपूर्ण ही रहता है, किन्तु स्त्री, स्नेह, तथा सन्तान ये तीनों मिलकर ही पुरुष (पूर्व) होता है और जो पति है वही स्त्री है, अतएव उस स्त्री से उत्पन्न सन्तान उस स्त्री के पति की होती है।[234] इस प्रकार स्त्री पुरुष की 'शरीरार्द्ध' और 'अर्द्धांगिनी' मानी गई तथा 'श्री' और लक्ष्मी के रुप में वह मनुष्य के जीवन को सुख और समृद्धि से दीप्ति और पुंजित करने

वाली कही गई। उसका आगमन पुरुष के लिये शुभ, सौरभमय और सम्मानजनक था जिसके सम्पर्क से उसका व्यक्तित्व मुखर और सन्निविष्ट हो उठता था।

स्त्रियों की दशा में युग के अनुरुप परिवर्तन होता रहा है उसकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर बाद के युगों तक अनेक उतार चढ़ाव आते रहे तथा उनके अधिकारों में तद्नुरुप परिवर्तन भी होते रहे। यह सही है कि वैदिक युग में उनकी अवस्था अत्यन्त उन्नत और परिष्कृत थी किन्तु परवर्ती काल से उनकी स्थिति में परिवर्तन प्रारम्भ हो गया जो अवनति के रुप में बाद के समयों तक चलता रहा। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को समाज में श्रेयस्कर स्थान नही मिला बल्कि अपेक्षाकृत निम्न स्थान ही प्राप्त हुआ जिसके प्रमुख कारण राजनीतिक अस्थिरता और सामाजिक संकीर्णता ही थे।

इस सन्दर्भ में हरिवंश के तीनों पर्वो की सम्यक समीक्षा से यह ज्ञात होता है कि स्त्रियों के प्रति हरिवंश के विचार अधिकांशतः उदार हैं। कन्या पत्नी तथा माता के रुप में उन्हें प्रतिष्ठित पद प्रदान किया गया है। वस्तुतः हरिवंश की भावना के मूल में प्रवृत्ति और निवृत्ति द्विविध भावनायें क्रियाशील हैं। जहाँ कही प्रवृत्तिमूलक भावना प्रधान है और गृहस्थ–आश्रम को महत्वपूर्ण बताया गया है, वहाँ स्त्रियों के प्रति भी प्रशस्त विचार प्रकट किये गये हैं। परन्तु ऐसे स्थलों में जहाँ कि निवृत्ति–मार्ग की मुख्यता है तथा सांसरिक जीवन के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गई है, वहाँ स्त्रियों के प्रति भी अनुदार विचार व्यक्त किये गये हैं। इसके अतिरिक्त जहां विरोधात्मक उद्धरण मिलते हैं। वहाँ पात्र और परिस्थिति की विशिष्टता को ही कारण माना जा सकता है। स्त्रियों की स्थिति के विषय में अध्याय षष्ठ में हरिवंश पुराण में वर्णित स्त्रियों की सामाजिक और धार्मिक स्थिति नामक शीर्षक के अर्न्तगत बिस्तार से प्रकाश डाला गया हैं।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियां

1. ऋग्वेद, 2,12,4: 1, 179,6,
2. वही, 10, 90, 12.
3. महाभारत, शान्तिपर्व, 122, 4–5.
4. गीता, 4,13.
5. विष्णु पुराण, 1–12.
6. गीता, 4–13.
7. काणे पी0वी0, धर्मशास्त्र का इतिहास भाग–1 अनु0 अर्जुन चौबे काश्यप, चतुर्थ संस्कार, लखनऊ 1992 पृष्ठ–110 .
8. वही, पृष्ठ, 111.
9. ऋग्वेद, 10,90.
10. शर्मा, रामशरण, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ 21–23.
11. महाभारत, शान्तिपर्व 188,10.
12. वायु पुराण, 8–140,141.
13. ऋग्वेद, 9,112 .
14. तैत्तिरीय संहिता, 1,7,31 .
15. वही, 7,11,7.
16. शतपथ ब्राम्हण, 3,11, 9–10.
17. द्वारा उद्धत–मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पंचम संस्करण, नई दिल्ली, 1992 पृष्ठ 83.
18. वौधायन धर्मसूत्र, 110, 19, 1–6.
19. वसिष्ठ धर्मसूत्र, 4,3.
20. मिश्र, जयशंकर, पूर्वोद्वत पृष्ठ–91.

21. दीघनिकाय, 1 97,99.
22. जातक, 1 पृष्ठ 349.
23. मिश्र, जयशंकर, पूर्वोद्वत, पृष्ठ–100,
24. महाभारत, 12, 292, 2–4 ,
25. वही, 2, 33, 41.
26. अर्थशास्त्र, 4,1 .
27. वही, 4–2 .
28. वही, 4–22.
29. इपिग्राफिया इंडिका, भाग–4 पृष्ठ 208–11.
30. हर्षचारित सर्ग,–2 पृष्ठ–36,
31. हरिवंश पुराण,– 1,19,5–7.
32. वहीं, 1 19, 7.
33. वही, 1, 27, 35 ,
34. वहीं, 1, 27, 53, 1, 32, 59, 6 .
35. वही, 1,29,8 .
36. वही, 1,29 83 .
37. वही, 1,32,40.
38. वहीं, 1,32,20.
39. वही, 1,32 60–68.
40. वही, 1,32, 75–76 .
41. वही, 1,10,28 .
42. वही, 1,32,5 .
43. वही, 1,31,33–35 .
44. वहीं, 3,3,6 .
45. वहीं, 3,3, 14.

46. वहीं, 1,13,30,34 1,14,3—4 12,16—18.

47. वहीं, 3,3,13.

48. वहीं 3,3, 14.

49. हाजरा आर0सी0, पुराणिक रिकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, ढाका, 1940 पृष्ठ—188,

50. बृहदारण्यक उपनिषद,4 1—6, 6,2,4.

51. छान्दोग्य उपनिषद, 5,3,

52. प्रभु, पी0एन0,हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन, बम्बई 1958 पृष्ठ—83.

53. महाभारत, शन्तिपर्व,242, 15.

54. मिश्र, जयशंकर,पूर्वोद्वत,पृष्ठ 217—18.

55. पाण्डे, गोविन्दचन्द्र, स्टडीज इन दि आरिजिन्स आफ बुद्विज्म, पृष्ठ 322—26.

56. अर्थशास्त्र, 4, 1—2, 22.

57. बौधामय धर्मसूत्र 2,11,14.

58. मनुस्मृति,6,87.

59. वायुपुराण,67,37 ब्रम्हाण पुराण,3,72,36.

60. विष्णुपुरण,1,6,33.

61. वायुपुराण,1,10,1 ब्रम्हाण पुराण,2,32,26,

62. वायु पुराण,83,60,

63. वायु पुराण,8,170,71 ब्रम्हाण पुराण, 27, 170—71.

64. हरिवंश पुराण, 1,14,15.

65. वहीं, 3,3, 4.

66. विष्णु पुराण, 3,18,36.

67. वायु पुराण,8,168,69 ब्रम्हाण पुराण 2,7,179.

68. ऋग्वेद, 10,109,5.

69. वहीं, 10,85, 36,

70. द्रष्टव्य, रानाडे, ए कांस्टाक्टिव सेर्व आफ उपनिषादिक फिलासकी, पृष्ठ, 60–61 प्रभु, पी0एन0, पूर्वोद्वत पृष्ठ,84 पाण्डेय राजबली हिन्दू संस्काराज, पृष्ठ 262 ,

71. गौंतमधर्म,सूत्र 3,2, ,

72. विष्णुस्मृति, 26,60 ,

73. विष्णु पुराण, 3,9,1 ,

74. वही,

75. वायुपराण 8,174 ब्रम्हाण्ड पुराण 2,7,175 .

76. मत्स्य पुराण, 40,2 .

77. विष्णु पुराण, 3,8, 3–6 .

78. मत्स्य पुराण, 40,2.

79. वायु पुराण, 8 174 ब्रम्हाण्ड पुराण, 2,7, 175.

80. विष्णु पुराण, 3,9,5.

81. मत्स्य पुराण, 40,2.

82. वायु पुराण, 8,174 59,46 ब्रम्हाण्ड पुराण 2,7, 175, 2, 32 51.

83. विष्णु पुराण, 3,9,5.

84. वायु पुराण, 8,174 ब्रम्हाण्ड पुराण, 2,7, 175 .

85. हरिवंश पुराण, 2, 33, 4.

86. वहीं, 2,33,5.

87. वहीं, 1,14, 9 .

88. वहीं, 2,33,10.

89. विष्णु पुराण, 3,9,11 वायु पुराण, 8,172 ब्रम्हाण्ड पुराण, 2,7,17'223.

90. विष्णु पुराण, 3,9,7.

91. वहीं, 3,9,8.

92. वायु पुराण, 6,7,8 ब्रम्हाण पुराण, 3,4,3–4 ,

93. मत्स्य पुराण, 2,58,1 ,

94. वायु पुराण, 59,23 ब्राम्हण्ड पुराण, 2,32,24.

95. विष्णु पुराण, 2,9, 16–17.

96. वहीं, 3,9,8.

97. मत्स्य पुराण, 40,3.

98. याज्ञवल्क्य स्मृति, गृहंस्थधर्म प्रकरण, श्लोक 3.

99. विष्णु पुराण, 3,9,15.

100. वायु पुराण, 8,173. ब्रम्हाण पुराण, 2,7, 174.

101. मत्स्य पुराण, 40,3.

102. विष्णु पुराण, 3,9,9.

103. वायु पुराण, 8,173, ब्राम्हण्ड पुराण, 2,7,174.

104. मत्स्य पुराण, 52.14.

105. विष्णु पुराण, 3,9,9.

106. मत्स्य पुराण, 40,3.

107. वहीं, 52,14.

108. वहीं.

109. मत्स्य पुराण 53,16

110. शतपथ ब्राम्हण 11,5,6,1

111. मनुस्मृति

112. हरिवंश पुराण, 1,6.

113. वहीं, 1,14.

114. वहीं, 373, 29–30.

115. वहीं, 3 74 1–2.

116. विष्णु पुराण, 3,9,18.

117. मनुस्मृति, 6,2.

118. विष्णु पुराण, 3,9,18,

119. वायु पुराण, 93,102 ब्राम्हण पुराण, 3,68, 104.

120. याज्ञवल्क्य स्मृति, वानप्रस्थ प्रकरण, श्लोक–45.

121. वायु पुराण, 59,24, ब्राम्हण्ड पुराण, 2,32,25.

122. विष्णु पुराण, 3,9,22.

123. वहीं, 3,9,19.

124. वायु पुराण, 8,175 ब्राम्हण्ड पुराण, 2,7,176.

125. मत्स्य पुराण, 35,14.

126. विष्णु पुराण, 3,9,21.

127. हरिवंश पुराण, 1,24,26.

128. वहीं, 1,30 44–45.

129. वहीं, 2,32, 27–28.

130. विष्णु पुराण, 3,18,37.

131. मनुस्मृति, 6,33.

132. मत्स्य पुराण, 24,51.

133. प्रभु पी0एन0, पूर्वोद्वत, पृष्ठ 99.

134. विष्णु पुराण, 3,9,33.

135. वायु पुराण, 8,176–77 ब्राम्हण्ड पुराण, 27,177–79.

136. मत्स्य पुराण, 40,13.

137. विष्णु पुराण, 3,9,28.

138. हरिवंश पुराण, 1,24, 30.

139. वहीं, 1,30, 46.

140. जैमिनी सूत्र की टीका, 1,3.

141. गौतमधर्म सूत्र, 1,822.

142. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1,79.

143. पराशर स्मृति 4,15.

144. हरिवंश पुराण, 2,4,1.

145. वहीं, 1,14,9.

146. वहीं, 2,5,3.

147. मनुस्मृति, 2,31.

148. विष्णु पुराण, 3,10,9.

149. हरिवंश पुराण, 2,6,2.

150. मनुस्मृति, 2,3,6, गौतमधर्म सूत्र, 1,6,12.

151. मनुस्मृति, 2,44.

152. हरिवंश पुराण, 2,8,5.

153. विष्णु पुराण, 4,3,37, 5,21,19.

154. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1,51.

155. मनुस्मृति, 3,21.

156. याज्ञवल्क्य स्मृति, 4,91.

157. नारद स्मृति, स्त्रीपुंस, 95.

158. हरिवंश पुराण, 1,15, 2.

159. वहीं, 1,27,53.

160. वहीं.

161. वहीं, 1,29,8.

162. वहीं, 1,29,83.

163. वहीं 1,32, 40.

164. वहीं, 1,32,20.

165. वहीं, 1,32, 60.

166. वहीं, 1,32,75–76.

167. वहीं 1,10,28.

168. वहीं, 1,32,5.

169. वहीं, 1,31, 33–35.

170. मनुस्मृति, 3,24–26.

171. हरिवंश पुराण, 2,51,32 .

172. वहीं, 2, 59–60.

173. वहीं, 2, 94 .

174. वहीं 2, 119, 74.

175. वहीं, 1,3,29,30 .

176. बौधायन गृह सूत्र, 1,43 .

177. मत्स्य पुराण, 39.17.

178. विष्णु पुराण, 3,13,19.

179. हरिवंश पुराण, 2,32,57–64 .

180. ऋग्वेद, 1,3,4,1 : 1,95,7, 1,26,17.

181. वहीं, 7,34,11 .

182. अर्थवेद, 2,45.

183. वाजसनेयी सांहिता, 30.1 .

184. हरिवंश पुराण, 2,20,20.

188. वहीं, 2.79.19.20 .

186. वहीं, 2.20.1 .

187. वहीं, 2.65.51 .

188. वहीं, 2,41,2 .

189. वहीं, 2,27,10–12 .

190. वहीं, 2,78, 26.

191. वहीं, 2,41,18–46 .

192. वहीं, 2,20,21.

193. वहीं, 2,66.31 .

194. वहीं, 3,3,22.

195. वहीं,2,27,25–34.

196. वहीं,2,79, 58.

197. वहीं, 1,21,13–14.

198. वहीं, 1,21, 12–13.

199. वहीं, 1,21,3.

200. वहीं, 2,79, 80.

201. वहीं, 2,41.

202. वहीं, 2,88,89.

203. विष्णु धमात्तर, 22, 83–84.

204. हरिवंश पुराण, 2,5.

205. वहीं, 2,29,2–15.

206. वहीं 2,58.

207. वहीं, 1,25,23, 3,11.

208. वहीं, 2, 77, 81.

209. वहीं, 2,15.

210. वहीं, 2,20,25,35.

211. वहीं, 2,89, 66–83.

212. वहीं, 2,91,26–27 29,32.

213. वहीं, 2,91, 33–35.

214. वहीं, 2,93,5.

215. वहीं, 2,93,6.

216. वहीं, 2,93,28–29.

217. वहीं, 2,93,31–32.

218. वहीं, 2,93, 22.

219. वहीं, 2,93, 23–24 .

220. वहीं, 2,93,25 .

221. वहीं, 2,58, 3 .

222. वहीं, 2,80–81 .

223. वहीं, 2,73 .

224. सुभाषित रत्नसंदाह, पृष्ठ 194 .

225. महाभारत, 12,339, 6 .

226. विष्णु पुराण, 1,19,41 .

227. हरिवंश पुराण, 2,33,3 .

228. वहीं, 1,14,9 .

229. वहीं, 2,33,5 .

230. वहीं, 2,33,6–7 .

231. वहीं, 1,14,9 .

232. वहीं, 2,33,10–11 23–25 .

233. मनुस्मृति, 9,45 .

234. महाभारत आदिपर्व, 74,40 .

चतुर्थ अध्याय

- धर्म का अर्थ
- वैदिक धर्म
- महाकाव्य कालीन धर्म
- पौराणिक धर्म
- हरिवंश पुराण में वर्णित धर्म
- शैव धर्म
- शाक्त धर्म
- वैष्णव धर्म एवं कृष्णोपासना
- रामोपासना
- अन्य धार्मिक विचार धारायें
- बौद्ध एवं जैन धर्म
- धर्म समन्वय
- यज्ञ (पारिवारिक स्तर पर)
- उपासना पद्वति (जप, तप, दान, भक्ति)
- धार्मिक उत्सव (तीज त्योहार आदि)
- स्त्री और पुरुषों के धर्म में समानता एवं भिन्नता

हरिवंश पुराण में वर्णित धर्म

धर्म का अर्थः-

धर्म शब्द उन संस्कृत शब्दों में है जिनका प्रयोग कई अर्थों में होता है। ऋग्वेद की ऋचाओं में यह शब्द या तो विशेषण के रूप में या संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुआ है। वेद की भाषा में उन दिनों इस शब्द का वास्ताविक अर्थ क्या था, यह कहना मुश्किल है। स्पष्टतः यह शब्द 'घृ' धातु से बना है जिसका तात्पर्य है धारण करना, आलम्बन देना पालन करना। ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में धर्म शब्द पुल्लिंग में प्रयुक्त हुआ है किन्तु अन्य स्थानों में इसका प्रयोग या तो नपुंसक लिंग में है या उस रूप में जिसे हम पुल्लिंग एवं नपुंसक दोनो समझ सकते है लेकिन ऋग्वेद में अधिकांश स्थानों पर धर्म 'धार्मिक विधियों' या 'धार्मिक क्रिया संस्कारों' के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है।[1] अथर्ववेद में धर्म शब्द का प्रयोग ''धार्मिक क्रिया संस्कार करने से अर्जित गुण'' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[2] ऐतरेय ब्राह्मण में धर्म शब्द सकल धार्मिक कर्तव्यों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। छन्दोग्योपनिषद में धर्म का एक महत्वपूर्ण अर्थ मिलता है जिसके अनुसार धर्म की तीन शाखायें महत्वपूर्ण मानी गयी हैं (1) यज्ञ, अध्ययन एवं दान अर्थात् गृहस्थ धर्म (2) तपस्या अर्थात तापस धर्म तथा (3) ब्रह्मचारित्वो अर्थात आचार्य के गृह में अन्त तक रहना।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म शब्द का अर्थ समय–समय पर परिवर्तित होता रहा है। किन्तु अन्त में यह मानव के विशेषाधिकारों, कर्तव्यों, बन्धनों का घोतक, आर्य जाति के सदस्य की आचार विधि का परिचायक एवं वर्णाश्रम का घोतक हो गया। तैत्तिरीयोपनिषद में छात्रों के लिये जो धर्म शब्द प्रयुक्त हुआ है वह इसी अर्थ में है यथा 'सत्य वद' 'धर्म चर' आदि।[4] भगवद्गीता के ''स्वधर्मे निधनं श्रेयः'' में भी धर्म शब्द का यही अर्थ है। मनुस्मृति के अनुसार मुनियों ने मनु से सभी वर्णों के धर्मो की शिक्षा देने के लिये प्रार्थना की थी।[5] मनुस्मृति के व्याख्याता मेघा तिथि के अनुसार स्मृतिकारों ने धर्म के पाँच स्वरूप माने है–(1) वर्ण धर्म (2) आश्रम धर्म (3) वर्णाश्रम धर्म (4) नैमित्तिक धर्म (यथा प्रायश्चित) तथा (5) गुणधर्म (अभिषिक्त राजा के संरक्षण–सम्बन्धी कर्तव्य)। पूर्व मीमांसा सूत्र में जैमिनि ने धर्म को ''वेदविहित प्रेरक'' लक्षणों के अर्थ में

स्वीकार किया है अर्थात् वेदों में प्रयुक्त अनुशासनों के अनुसार चलना ही धर्म है। गौतम धर्म सूत्र के अनूसार वेद धर्म का मूल है।[6] जो धर्मज्ञ हैं वेदों को जानते है उनका मत ही धर्म प्रमाण है ऐसा आपस्तम्ब का कथन है।[7] मनुस्मृति के अनुसार धर्म के पाँच उपादान है– सम्पूर्ण वेद, वेदज्ञों की परम्परा एवं व्यवहार, साधुओं का आचार तथा अत्मतुष्टि।[8] मनुस्मृति से मिलता–जुलता धर्म का अर्थ याज्ञ वलक्य स्मृति में भी मिलता है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार–वेद, स्मृति (परम्परा से चला आया हुआ ज्ञान), सदाचार (भद्र लोगों के आचार–व्यवहार, जो अपने को प्रिय अच्छा) लगे तथा उचित संकल्प से उत्पन्न अभिकाँक्षा या इच्छा, ये ही परम्परा से चले आये हुये धर्म के उपादान है।[9]

वैदिक धर्म का समान्य परिचय-

प्राचीन भारतीयों के धर्म के विषय में सुनिश्चित ज्ञान हमें सर्वप्रथम वैदिक साहित्य से प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य में वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक तथा उपनिषद की गणना की जाती है। इस साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है जिसमें हमें सर्वप्रथम बहुदेववाद के दर्शन होते हैं। आर्य विभिन्न देवताओं के अस्तित्वमें विश्वास करते थे। उनके अधिकांश देवता प्रकृति की विविध शक्तियों के प्रतीक हैं जिनका मानवीकरण किया गया है तथा यह माना गया है कि देवताओं की कृपा से ही संसार के समस्त क्रिया–कलाप संचालित होते हैं प्रत्येक देवता को संसार के स्त्रष्टा तथा नियन्ता के रूप में दर्शाया गया है।

मुख्यतः वैदिक देवताओं के तीन वर्ग है–

1- द्युस्थान (आकाश) के देवता-

इनमें वरुण, पूषन्, मित्र, सूर्य, विष्णु, अश्विन्, उषा आदि है।

2- अंतरिक्ष के देवता-

इनमें इन्द्र, अपाम्, पर्जन्य, आपः रूद्र, मरूत आदि की गणना की गयी है।

3- पृथ्वी के देवता -

इनमें अग्नि, बृहस्पति, सोम इत्यादि सम्मिलित है।

ऋग्वेद में उल्लिखित अधिकांश देवता पुरुष हैं तथा देवियों का स्थान गौण है। अदिति ही इस काल की महत्वपूर्ण देवी है। कुछ देवता अमूर्त भावनाओं के घोतक हैं जैसे–श्रद्वा,

मन्यु, द्यातृ, प्राण, काल आदि। देवताओं की उपासना यज्ञों द्वारा की जाती थी। इस अवसर पर मन्त्रों द्वारा देवताओं का आवाहन किया जाता था। यज्ञों में अग्नि, घृत, अन्न, माँस आदि की आहुतियाँ दी जाती थी। ऐसी मान्यता थी कि अग्नि द्वारा आहुति देवता तक पहुँचती है। देवता स्वयं उपस्थित होकर आहुतियाँ ग्रहण करते हैं तथा मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं। वैदिक देवताओं को सदाचार तथा नैतिक नियमों का संरक्षक माना गया है उनका सम्बन्ध 'ऋत' से बताया गया है। ऋत का अर्थ है सत्य तथा अविनाशी सत्ता।

वैदिक ऋषियों ने देवताओं की कल्पना मनुष्यों के रूप में की तथा उनमें सभी मानवीय गुणों को आरोपित कर दिया। देवता तथा मनुष्य में अन्तर यह था कि देवता अमर तथा सर्वव्यापी थे। उनमें मानवोचित दुर्बलतायें भी नहीं थीं। वे अपार शक्ति तथा नैतिकता से युक्त होते थे। इसके विपरीत मनुष्य मर्त्य एवचं सीमित साधनों वाला था। वह देवता की कृपा का अभिलाषी रहता था तथा मनुष्य का उत्थान उसकी कृपा द्वारा ही सम्भव था। देवताओं के कोप से उसका सर्वनाश हो सकता है अतः मनुष्य उन्हें प्रसन्न करने के लिये सतत् प्रयत्नशील रहता था।

वैदिक धर्म की एक विशिष्टता यह है कि इसमें जिस देवता की स्तुति की गयी है उसी को सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोपरि मान लिया गया है। कभी वरुण तथा कभी इन्द्र को सर्वोपरि मानकर अन्य देवताओं की उत्पत्ति उनसे मानी गयी है। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से पता लगता है कि ऋषियों ने देवताओं की बहुलता से घबड़ाकर यह खोज करना प्रारम्भ किया कि सर्वशक्तिमान एवं सर्वश्रेष्ठ देवता कौन है ? अपने चिन्तन के अन्तिम चरण में उन्होने यह महत्वपूर्ण तथ्य खोज निकाला कि परम तत्व (सत्) एक ही है जिसे ज्ञानी लोग अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि विभिन्न नामों से जानते हैं– ''एक सम् विप्राः बहुधा वदन्ति।'' यह एकेश्वर वाद की अनुभूति है। इस प्रकार ऋग्वैदिक धर्म साधारण बहुदेववाद से प्रारम्भ होकर एकेश्वरवाद के रूप में बदल गया। एकेश्ववाद की विस्तृत व्याख्या बाद के दर्श में मिलती है।

ऋग्वेद में परमतत्व सम्बन्धी विचार दो रूपों में प्राप्त होते है–

(1) सर्वेश्वरवाद-

इसका विवेचन ऋग्वेद के नारदीय सूक्त में मिलता है जिसमें कहा गया है कि सृष्टि के आदि में एक ही परमतत्व था। उसी से सृष्टि की उत्पत्ति हुयी। वही पूर्णरूपेण सृष्टि

में व्याप्त है।

(2) एकत्ववाद-

इसका विवेचन पुरुष सूक्त में हुआ है जहाँ बताया गया है कि सृष्टि का मूलतत्व विराट पुरुष है। वह विश्व में व्याप्त होते हुये भी उससे कुछ अंशों में परे है।

ऋग्वैदिक धर्म का उद्देश्य मुख्यतः लौकिक सुखों को प्राप्त करना था। देवताओं की उपासना, युद्ध में विजय, अच्छी खेती, सन्तान की प्राप्ति आदि के लिये की जाती थी। यज्ञों द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति में भी आर्यो का विश्वास था। उनके विचार पूर्णतया आशवादी थे। वे जीवन के सुखों का पूरा–पूरा उपभोग करना चाहते थे। तपस्या कायाक्लेश आदि में उनका विश्वास नहीं था। प्रारम्भ में यज्ञों का विधान अत्यन्त सरल था किन्तु बाद में चलकर यह जटिल एवं विस्तृत हो गया। कुछ यश्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यवसाध्य होते थे। उपनिषदकाल में यज्ञों का महत्व घट गया तथा कर्मकाण्ड के स्थान पर ज्ञान की प्रतिष्ठा की गयी। तप, त्याग, सन्यास आदि पर बल दिया जाने लगा। मोंक्ष के लिये कायाक्लेश तथा सन्यास को आवश्यक समझा गया। उपनिषदों की प्रमुख शिक्षा व्यक्ति के सारभूत तत्व आत्मा का जगत के सारभूत तत्व ब्रह्म के साथ तादात्म्य स्थापित करना है।

महाकाव्य कालीन धर्म -

पूर्ववैदिककालीन कर्मकाण्ड प्रधान तथा उत्तरवैदिककालीन ज्ञानमार्गी धर्मों का समन्वय कर महाकाव्यों के समय में एक लोकधर्म का विकास किया गया, जो सर्वसाधारण के लिये सुलभ था। इसकाल तक आते–आते कुछ वैदिक देवताओं का महत्व घट गया, जबकि कुछ देवताओं के प्रभाव में वृद्दि कर दी गयी। देवसमूह में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की सर्वोच्च प्रतिष्ठा दी गयी। इनमें भी विष्णु तथा शिव की लोकप्रियता अधिक थी। अन्य देवताओं की औपचारिक मान्यता थी। इन देवताओं की कल्पना मनुष्य रूप में की गयी तथा प्रत्येक मे कुछ विशिष्ट गुणों को आरोपित कर दिया गया। दैवी शक्ति से विशिष्ट होने पर भी वे मनुष्यों की भाँति पृथ्वी पर निवास करते तथा लीलायें किया करते थे। शीघ्र ही ब्रह्मा का महत्व समाप्त हो गया तथा शिव और विष्णु ही महाकाव्य कालीन धर्म के प्रमुख देवता रह गये। राम तथा कृष्ण को विष्णु का ही अवतार माना लिया गया तथा उनमें समस्त गुणों को प्रतिष्ठित कर दिया गया। इस प्रकार

अवतारवाद का विकास हुआ। रामायण में चरित्र पर विशेष बल दिया गया है। चरित्र ही मनुष्य को देवता बनाता है। यही धर्म है। नैतिकता, सत्यनिष्ठा, सदाचरण आदि रामायण के अनुसार धर्म के गुण हैं। राम के चरित्र में सभी गुण विद्यमान है, अतः वे महामानव हैं बाद में उन्हें देवता माना गया है। महाभारत में भी लोक धर्म की प्रतिष्ठा है तथा कृष्ण को विष्णु का अवतार बताया गया है। इन महाकाव्यों की लोकप्रियता का प्रधान कारण यह था कि इन्होने सामान्य जनता को मोक्षप्राप्ति के लिये एक सरल उपाय बताया। यह उपाय है भक्ति अथवा उपासना का, जो सभी के लिये समान रूप से सुलभ था। ईश्वर, भक्ति से प्रसन्न होकर उपासक को उसके पापों से मुक्ति दिलाते है। गीता में कृष्ण अर्जुन से कहते है।–

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्ष्ययिष्यामि मा शुचः।।"[10]

अर्थात् सभी धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आओ।मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त करूँगा, शोक मत करो।

गीता कृष्ण का चित्रण सर्वशक्तिमान ब्रह्म के रूप में करती है जो जगत् के निर्माता एवं अधीश्वर हैं। उनमें उपनिषदों के ब्रह्म तथा लोकधर्म के वासुदेव दोनों के रूपों का समन्वय है। कृष्ण भक्ति आन्दोलन के केन्द्र–बिन्दु बन गये तथा जनमानस पर उनके व्यक्तित्व का व्यापक प्रभाव पड़ा। उपनिषद दर्शन अपनी गूढ़ता के कारण सभी के लिये बोधगम्य न था, तथा सामान्य जनता के लिये उपयोगी धर्म की महती आवश्यकता थी। जनता को एक ऐसे देवता की आवश्यकता थी जिस पर वह भरोसा कर सकती तथा जो संकट के समय उसकी सहायता कर सकता। महाकाव्यों ने ऐसा लोकधर्म प्रस्तुत कर दिया। भगवद्गीता हमारे समक्ष ऐसे ईश्वर का जीवित व्यक्तित्व प्रस्तुत करती है जो अपने भक्तों की सहायता के लिये पृथ्वी पर अवतार लेता है। धर्म की स्थापना करता है, सज्जनों की रक्षा करता है तथा दुष्टों का विनाश करता है यथा–

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे—युगे।।''[11]

गीता में औपनिषदिक् ज्ञान के महत्व को स्वीकार करते हुये भी भक्ति को प्रमुखता प्रदान की गयी है। यही मोक्ष प्राप्त करने का सर्वसुलभ साधन है।

महाकाव्य कालीन धर्म में वैदिक तथा अवैदिक विश्वासों का समावेश दिखायी देता है। यज्ञों, शिव, कृष्ण, दुर्गा, इन्द्र आदि देवी—देवताओं की पूजा की गयी है। पर्वत, नाग, राक्षस, यक्ष, पूजा का भी उल्लेख प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार के यज्ञों का विस्तारपूर्वक उल्लेख मिलता है। राजाओं द्वारा अश्वमेघ तथा राजसूय जैसे विशाल यज्ञ किये जाते थे। महाकाव्यों का मुख्य लक्ष्य समाज में सत्य और न्याय की प्रतिष्ठा करना था। इनमें विभिन्न कथाओं तथा चरित्रों के माध्यम से असत्य पर सत्य की तथा अन्याय पर न्याय की विजय प्रदर्शित की गयी है।

पौराणिक धर्म का सामान्य परिचय-

पौराणिक धर्म कोई नवीन उत्पन्न होने वाला धर्म नहीं है जो वेदविदित मौलिक धर्म से विभेद रखता है। पौराणिक धर्म के भी मूलतत्व समस्त वैदिक ही है केवल परिवर्तित स्थिति की आवश्यकता पूर्ण करने के लिये कतिपय प्राचीन विषयों का परिहार किया गया है और कतिपय नवीन विषयों का ग्रहण। वैदिक युग में कर्मकाण्ड पर विशेष आग्रह , पौराणिक युग में भक्ति के ऊपर विशेष महत्व दिया गया।

हिन्दू धर्म का व्यापक प्रचार—प्रसार पुराणों के माध्यम से सम्भव हुआ। पौराणिक धर्म में हमें वैदिक, अवैदिक तथा जनसाधारण के धार्मिक विश्वासों का समन्वय मिलता है। पुराण अपनी सरल एवं सुन्दर शैली में हिन्दू धर्म का सर्वागींण चित्रण प्रस्तुत करते है। पौराणिक धर्म का उद्देश्य वैदिक धर्म को सरल ढ़ग से आम जनता के समक्ष प्रस्तुत करना है। शिव, विष्णु, आदि वैदिक देवताओं को ग्रहण कर पुराणों ने उन्हें नवीन रूप दिया। ब्रम्हा की कल्पना ब्रह्मा के रूप में की गयी तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश को त्रिदेव माना गया। ये त्रिदेव विश्व के क्रमशः कर्ता, धर्ता और संहर्ता थे। विष्णु के विभिन्न अवतारों की कल्पना हुयी। परमतत्व ईश्वर को साकार मानते हुये उन्हें अद्भुव शक्तियों से युक्त माना गया तथा उनके विभिन्न नाम और रूपों का विधान हुआ। भक्ति का पूर्ण विकास पौराणिक धर्म में ही देखने को मिलता है। पौराणिक

काल में ही मूर्तिपूजा का प्रचलन हुआ। देवता को पुरूष या नारी के रूप में मानकर पुष्प, धूप, दीप, नैवेध आदि के द्वारा उसकी पूजा करने का विधान प्रस्तुत किया है। वैदिक यज्ञों को सरल रूप प्रदान कर पुराणों ने उन्हें सबके लिये सुलभ बना दिया। ईश्वर की कृपा से ही मुक्ति सम्भव है तथा यह कृपा व्यक्ति को भक्ति के भक्ति से ही मिल सकती है ऐसी पुराण की दृढ़ मानता है। भक्ति के लिये गुरू के निर्देशन की भी आवश्कयता होती है। गुरू की कृपा से ही ज्ञान प्राप्त होता है।

अवैदिक विचारधारा के प्रभाव से पुराणों में अनेक प्रकार के देवियों तथा–दुर्गा, काली, चामुण्डा आदि की पूजा का विधान प्रस्तुत किया गया। साथ ही साथ ही इस धर्म में अनेक प्रकार के बाह्यचारों के दर्शन होते हैं। व्रत, दान, तीर्थयात्रा ब्राम्हणों को भोजन कराना आदि धार्मिक जीवन के अंग थे। शरीर पर भस्म पोतने तथा तिलक लगाने की प्रथा का प्रचलन भी इसी धर्म से हुआ। ऐसी मान्यता थी कि व्रतों के अनुष्ठान द्वारा शरीर तथा आत्मा शुद्ध होती है जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है विभिन्न देवताओं से सम्बन्धित भिन्न–भिन्न व्रतों का विधान प्रस्तुत किया गया है। पुराण वर्णाश्रम, धर्म के पालन पर विशेष बल देते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिये ज्ञान के साथ–साथ वर्णाश्रम धर्म का पालन करना भी अनिवार्य बताया गया है। वायुपुराण में वर्णित है कि जो व्यक्ति वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं करता उसे यमलोक के कष्ट भोगने पड़ते हैं।

पुराणों में जिन विभिन्न देवी–देवताओं का उल्लेख मिलता है उनसे सम्बन्धित अनेक स्वतंत्र सम्प्रदायों का हिन्दू धर्म में विकास हुआ। विष्णु से वैष्णव, शिव से शैव, शक्ति उपासना से शाक्त आदि सम्प्रदायों का उद्भव हुआ जिनकी उपासना पद्धतियाँ अलग–अलग थीं। ये हिन्दू धर्म के प्रमुख सम्प्रदाय हैं। कालान्तर में इनके भी कई उपसम्प्रदाय बन गये।

हरिवंश पुराण में वर्णित धर्म–

यद्यपि हरिवंश वैष्णव पुराण है किन्तु इसके बावजूद इसमें शैव, वैष्णय शाक्त जैन तथा बौद्ध आदि अनेकों धार्मिक विचार मिलते हैं। हरिवंश पुराण के अन्तर्गत इन धार्मिक प्रवृत्तियों के अध्ययन से तत्कालीन धार्मिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है। निस्संदेश हरिवंश एक वैष्णव पुराण है। विण्टर निट्स [12] तथा आर0सी0 हाजरा [13] आदि सुप्रसिद्ध विद्वानों ने

हरिवंश को वैष्णव धर्म के प्रमुख पुराणों में एक माना है। हरिवंश के विष्णु पर्व में कृष्ण के चरित्र का विशद वर्णन है। हरिवंश के अन्य पर्वों तुलना में यह पर्व सबसे बड़ा है। विष्णु पुराण के पँचम अंश में अत्यन्त विस्तृत रूप से कृष्ण चरित्र का वर्णन है। भागवत पुराण का दशम् स्कन्ध कृष्ण चरित्र का विशाल और भावपूर्ण चित्रण करता है। विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण की भाँति हरिवंश पुराण में कृष्ण का विशद् चरित्र तथा हरिवंश पर्व और भविष्य पर्व में विष्णु की महिमा का प्राधान्य हरिवंश को वैष्णव पुराण सिद्ध करते है।

इस संदर्भ में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि हरिवंश पुराण विष्णु पुराण और भागवत पुराण के अन्तर्गत वैष्णव धर्म का प्राधान्य होते हुये भी वैष्णव भक्ति की अलग–अलग प्रवृत्तियां दिखलाई देती है। हरिवंश में वैष्णव धर्म अपने प्रारम्भिक रूप में है जबकि विष्णु पुराण और भागवत पुराण में यही धर्म अधिक विकसित हो गया है इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विष्णु पुराण और भागवत पुराण में यही धर्म अधिक हो गया इस प्रकार हम कह सकते हैं विष्णु पुराण और भागवत पुराण वैष्णव धर्म की पूर्व विकसित और हरिवंश की तुलना में उत्तर कालीन धार्मिक विचाराधारा का परिचय देते हैं।

शैव धर्म-

शिव से सम्बद्ध धर्म को शैव कहा जाता है जिसमें शिव को इष्टदेव मानकर उनकी उपासना किये जाने का विधान है। शिव के उपासक शैव कहे जाते हैं शिव तथा उनसे सम्बन्धित धर्म की प्राचीनता प्रागैतिहासिक युग तक जाती है। सैन्धव सभ्यता की खुदाई में मोहन-जोदड़ो से एक मुद्रा पर पद्मासन में विराजमान एक योगी का चित्र मिलता है। सर जांन मार्शन ने इस देवता की पहचान ऐतिहासिक काल के शिव से स्थापित की है।

ऋग्वेद में शिव का 'रूद्र' कहा गया है जो अपनी उग्रता के लिये प्रख्यात है क्रुद्र होने पर वे मानव तथा पशुजाति का संहार करते थे अथवा महामारी फैला देते थे। अतः ऋग्वैदिक काल में रूद्र की उपासना उनके क्रोध से बचने के निमित्त किया करते थे। वस्तुतः रूद्र में विनाशकारी तथा मंगलकारी दोनो ही प्रकार की शक्तियाँ निहित थी। न मानने वाले मनुष्यों को वे अपने बाणों से छिन्न–भिन्न कर डालते है किन्तु अपने भक्तों के प्रति वे अत्यन्त उपकारी है जिससे उनकी संज्ञा शिव है। भक्ति द्वारा वे आसानी से प्रसन्न किये जा सकते हैं

वे प्राणियों के रक्षक तथा संसार के स्वामी हैं। उनके पास सहस्त्रों औषधियां थीं जिनसे रोगों से छुटकारा मिलता था। ऋग्वेद की देवमण्डली में रूद्र का स्थान विशेष महत्वपूर्ण नहीं था। किन्तु बाद की संहिताओं तथा ब्राम्हण ग्रन्थों में हम उनकी महत्ता में उत्तरोत्तर वृद्धि पाते हैं। बाजसनेयी संहिता के शतरूदीय मंत्र में रूद्र को समस्त लोको का स्वामी बताया गया है। वे अन्नों खेतों तथा वनों के अधिपति होनेके साथ ही साथ चोर, डाकुओं, ठगों आदि जघन्य जीवों के भी स्वामी बताये गये हैं। अथर्ववेद में उन्हें भव, शर्व, पशुपति, भूपति आदि कहा गया है उन्हें व्रात्यों का भी स्वामी कहा गया है। ब्राम्हण ग्रन्थों में रूद्र की गणना सर्वप्रमुख देवता के रूप में मिलती है जिनकी शक्ति से देवता तक डरते थे उन्हें 'सहस्त्राक्ष' कहा गया है उनके आठ नाम बताये गये हैं—रूद्र, सर्व, उग्र, अशनि भव, पशुपति, महादेव तथा ईशान। इनमें प्रथम चार उनके उग्ररूप तथा अन्तिम चार मंगलरूप के घोतक हैं। ऐतरेय ब्राम्हण में बताया गया है, कि प्रजापति ने अपनी कन्या से समागम किया, जिससे क्षुद्र होकर देवताओं ने उसे दण्डित करने का निश्चय किया। उन्होंने अपने रौद्ररूपों से 'भूतपति ' का सृजन किया जिसने प्रजापति का वध कर डाला और इस कार्य से वह 'पशुपति' संज्ञा से विभूषित हुआ। इससे ऐसा संकेत मिलता है, कि ब्राम्हण काल में शैवधर्म ठोस आधार प्राप्त कर रहा था।

उपनिषद काल में हम रूद्र की प्रतिष्ठा में और अधिक वृद्धि पाते हैं। श्वेताश्वतर तथा अथर्वशिरस में रूद्र की महिमा का प्रतिपादन मिलता है। श्वेताश्वतर उपनिषद रूद्र की समता परमब्रह्म से स्थापित करते हुये कहता है कि जो अपनी शक्ति से संसार पर शासन करता है जो प्रलय के समय प्रत्येक वस्तु के सामने विद्यमान रहता है तथा उत्पत्ति के समय जो सभी वस्तुओं को सृजन करता है, वह रूद्र है। वह स्वयं अनादि एवं अजन्मा है। अथर्वशिरस में भी इसी प्रकार के विचार मिलते हैं।

महाकाव्यों के समय में आते—आते शैवधर्म को व्यापक लोकाधार प्राप्त हो गया। रामायण से पता चलता है कि शिव न केवल उत्तरी अपितु दक्षिणी भारत के भी देवता बन गये थे। लंका तक में उनकी पूजा की जाती थी। उन्हें महादेव शम्भु, त्रयम्बक, भूतनाथ आदि विरूद्ध प्रदान किये गये हैं। किन्तु रामायण मूलतः एक वैष्णव ग्रन्थ है। अतः यहां विष्णु को शिव की अपेक्षा अधिक महान देवता बताया गया है। महाभारत में शिव की प्रतिष्ठा का व्यापक विवेचक

मिलता है। इसके प्रारम्भिक अंशों में तो शिव कोई महत्वपूर्ण देवता नहीं लगते किन्तु बाद में अंशों में हम उनका चित्रण सर्वोच्च देवता के रूप में पाते हैं। उन्हें वासुदेव विष्णु के समक्ष अथवा कहीं–कहीं उनसे भी महत्तर दिखाया गया है। द्रोणपर्व से पता चलता है कि कृष्ण तथा अर्जुन शिव से पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के लिये हिमालय पर्वत पर जाकर उनकी आराधना करते हैं। वे उन्हें विश्व की आत्मा बताते हैं। भक्ति से प्रसन्न होकर शिव अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान करते हैं। महाभारत में विभिन्न स्थलों पर शिव को सर्वदेव, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, आदि संज्ञा प्रदान की गयी है तथा बताया गया है कि देवता ब्राम्हा से लेकर विशाच तक उनकी आराधना करते हैं। अनुशासन पर्व में कहा गया है कि स्वयं कृष्ण ने पुत्र प्राप्त करने के निमित्त हिमालय पर्वत पर जाकर शिव की आराधना की थी। तथा शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें मनोवाच्छित फल प्राप्त करने के लिये वरदान दिया था। इस विवरण से संकेत मिलता है कि शिव सर्वोच्च देवता के रूप में मान्य थे। एक स्थान पर कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं कि शिव सभी चल–अचल वस्तुओं के स्पष्ट है तथा उनसे बढ़कर कोई दूसरा नहीं है।

यद्यपि हरिवंश एक वैष्णव पुराण है लेकिन इसके बावजूद इसमें शैव, शाक्त आदि सम्प्रदायों का विवरण भी प्राप्त होता है। हरिवंश के तीनों पर्वों में शैवधर्म से सम्बन्धित उद्वरण प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ हरिवंश में हरिवंश पर्व के उन्तीसवें अध्याय में दिवोदास के राज्यपाल में भगवान शिव की आज्ञा से गणेश्वर निकुम्भ के द्वारा वाराणसी को जनशून्य बनाने का प्रयत्न, वहां शिव और पार्वती का निवास आदि का विवरण मिलता है।[14] हरिवंश पुराण के विष्णपर्व में भी शैव धर्म का उल्लेख प्राप्त होता है। विष्णुपर्व के उनहत्तरवें अध्याय में स्वर्ग में महादेवी जी की परिचर्या के लिये नृत्य गीत आदि उत्सव का विवरण मिलता है इस उत्सव में आदित्यगण, सुरश्रेष्ठ , वसुगण, अपने शुभकर्मों से स्वर्ग में गये हुये विद्धान राजषिगण, नाग यक्ष, सिद्ध,चारण तपोधन ब्रम्हार्षि, सैकड़ों देवषि और मनु, महामना गरुड़ पक्षी, महाबली मरूद्गण तथा देवताओ के जो अन्य सैकड़ों समुदाय हैं वे सब उस उत्सव में पधारे थे इन सबके ऊपर उमासहित अमित पराक्रमी भगवान महेश्वर अपने प्रमथगणों से घिरे हुये थे जिनका सहस्त्रों कल्पान्तरों में भी विनाश नहीं होता है। इस उत्सव में रूद्रगण, कश्यप जी के पुत्र (देवगण) भगवान स्कन्द, अग्निदेव, सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा तथा अर्चिष्मान, तुम्बुरू और वक्ताओं में श्रेष्ठ

भारि (ये तीनों गन्धर्व) वहां महादेव जी की सेवा में उनके पास ही खड़े थे। उस उत्सव के समय वहां श्रीमान् गन्धर्वराज चित्ररथ पुत्र सहित प्रसन्नतापूर्वक देवसम्बन्धी बाघ बजा रहे थे। उर्वशी, विप्रचित्त, हेमा, रम्भ, हेमदत्ता, घृताची और सहजन्या, ये अप्सरायें भी अपने नृत्य और गीत कला का प्रदर्शन करती थी। आत्म संयमशील जगदाधार भगवान महादेव अपनी आराधना से सम्बन्ध रखने वाले उस नृत्य गीत आदि को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करते थे तथा उसका आनन्द लेते थे। इन्द्र के उस बर्ताव एवं व्यवहार से संतुष्ट हो वे भगवान शिव पुनः अपने स्थान को चले गये। [15]

विष्णु पर्व के 72वे अध्याय में जब भगवान श्रीकृष्ण इन्द्र के पारिजात वृक्ष न देने पर कुपित हो जाते हैं और अमरावती पर आक्रमण करने का संदेश इन्द्र के पास भेजते है तो उस संदेश को सुनकर इन्द्र देवताओं के गुरू बृहस्पति से विचार विमर्श करते हैं। बृहस्पति जी, कश्यपजी को यह समाचार बताते हैं उस समय कश्यप जी युद्ध की शान्ति के लिये भगवान शंकर की विभिन्न श्लोकों द्वारा प्रस्तुति करते है और शिव को सबसे बड़ा देवता कहते हैं।[16] जब इन्द्र और श्रीकृष्ण के मध्य पारिजात वृक्ष को लेकर युद्ध होता है तो रात्रि में युद्ध स्थगित होने पर स्वयं श्रीकृष्ण गंगाजल और बेल का फल लेकर सर्वेश्वर रूद्रदेव का आवाहन करते हैं आवाहन करने पर पार्वती सहित भगवान महादेव प्रथमगणों के साथ वहां प्रकट होते हैं तब श्री कृष्ण पारिजात के फूलों द्वारा उनकी पूजा करते हैं और उनकी स्तुति करते हैं। स्तुति करने पर भगवान शिव प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण को अभीष्ट मनोरथों की प्राप्ति का वरदान देते हैं। [17]

विष्णुपर्व के ही 82वें अध्याय में षटपुरावासी असुरों का संक्षिप्त परिचय तथा उन्हें ब्रम्हा और भगवान शिव के वरदान का विवरण प्राप्त होता है।[18]

विष्णु के 87 वें अध्याय में अत्यन्त अत्याचारी एवं दुराचारी महान पराक्रमी दैत्य अन्धकासुर का भगवान शंकर द्वारा वध का विवरण मिलता है।[19] विष्णु पर्व के ही 116 में अध्याय में भगवान शंकर का बाणासुर को और देवी पार्वती के पुत्र के रूप में स्वीकार करना और बाणासुर का भगवान शंकर से युद्ध के लिये वर मांगने और पाने विवरण मिलता है।[20] विष्णुपर्व के 124वें अध्याय में श्रीकृष्ण द्वारा बाणासुर को पराजित कर दिये जाने पर स्वयं भगवान शंकर का अपने गणों के साथ युद्ध के लिये आगमन तथा भगवान श्रीकृष्ण और रूद्र का युद्ध का विवरण मिलता

है।[21]

125 वें अध्याय में श्रीकृष्ण के जृम्भास्त्र से भगवान शंकर का जंभाई के वशीभूत होने, ब्रम्हाजी के द्वारा शिवाजी को विष्णु के साथ उनकी एकता का स्मरण दिलाना तथा ब्रम्हा जी के पूंछने पर मार्कण्डेयजी का हरिहर की एकता स्थापित करते हुये महात्म्य सहित हरिहरात्मक स्तोत्र के वर्णन करने का उल्लेख प्राप्त होता है।[22]

हरिवंश पुराण में भविष्यपर्व में भी भगवान श्री कृष्ण द्वारा पुत्र की प्राप्ति के निमित्त कैलाश पर्वत पर जाने और वहां 12 वर्षों तक शिव की कठोर तपस्या किये जाने का विवरण प्राप्ता होता है।[23] कृष्ण की तपस्या से प्रसन्न होकर इन्द्र आदि देवताओं सहित भगवान शिव का श्रीकृष्ण के पास आगमन, तथा भगवान श्री कृष्ण द्वारा महादेवी जी स्तुति एवं भगवान शिव द्वारा श्रीविष्णु की स्तुति, भगवान शंकर का ऋषियों को श्रीकृष्ण तत्व का उपदेश देना, तथा भगवान शंकर द्वारा श्री कृष्ण की स्तुति और श्रीकृष्ण का कैलाश से बदरिकाश्रम में लौटना आदि विवरण प्राप्त होते हैं।[24] भविष्य पर्व के 104वें अध्याय में राजा ब्रम्हदत्त को भगवान शंकर की अराधना से हंस और डिम्भक नामक पुत्रों की प्राप्ति का वृतान्त प्राप्त होता है।[25]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हरिवंश पुराण में भगवान शिव तथा उनसे सम्बन्धित धर्म का समाज में महत्वपूर्ण स्थान था तथा काफी बड़ी संख्या में लोग शैव धर्मावलम्बी भी थे।

शाक्तधर्म-

शक्ति को इष्टदेवी मानकर पूजा करने वालों का सम्प्रदाय 'शाक्य' कहा जाता है। प्राचीन भारतीय देवसमूह में देवताओं के साथ–साथ देवियों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। तथा शक्ति (देवी) की पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से होती रही है। वैष्णव तथा शैव धर्मों के ही समान शाक्त धर्म भी अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। क्रमशः शक्ति के साथ कई नाम संयुक्त हो गये–दुर्गा, काली, भवानी, चामुण्डा, रूद्राणी, लक्ष्मी, सरस्वती आदि। दुर्गा को आदि शक्ति स्वीकार कर उन्हें सृष्टि पालन तथा संहारकत्री के रूप में मान्यता प्रदान की गयी।

शाक्त धर्म का शैवधर्म के साथ घन्ष्ठि सम्बन्ध रहा है। शिव की पत्नी पार्वती (उमा) को जगज्जननी कहा जाता हैं शैवमत के ही समान शाक्त मत की प्राचीनता भी

प्रागैतिहासिक युग तक जाती है। सैन्धव सभ्यता में मातृदेवी की उपासना व्यापक रूप से प्रचलित थी। खुदाई में माता देवी की बहुसंख्यक मूर्तियां प्राप्त होती है। वैदिक साहित्य से अदिति, उषा, सरस्वती, श्री लक्ष्मी आदि देवियों के विषय में विस्तृत सूचना मिलती है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में देवी सूक्त मिलता है जिसमें वाक्शक्ति की उपासना की गयी है वह एक स्थान पर कहती है–

"अहं राष्ट्री–संगमनी वसूनां चिकितुर्षा प्रथमा यज्ञियानाम।

तां देवा व्यदधुः पुरूत्रा भूरिस्थात्रां भूर्या वेशयन्त्मिा।।"[26]

अर्थात् मैं समस्त जगत की अधीश्वरी हूं अपने भक्तों को धन प्राप्त कराने वाली, ब्रम्हा को अपने से अभिन्न मानने वाली तथा देवताओं में प्रधान हूं। मैं सभी भूतों में स्थित हूं। विभिन्न स्थानों में रहने वाले देवगण जो कुछ भी कार्य करते हैं वह सब मेरे लिये ही करते हैं।

इसी प्रकार अदिति का माता के रूप में कई ऋचाओं में वर्णन मिलता है। वह माता पिता तथा पुत्र सब कुछ है। सभी देवगण पंचजन, भूत तथा भविष्य सभी कुछ अदिति ही है। सरस्वती की ऋग्वेद में सौभाग्यदायिनी कहकर स्तुति की गयी है। अर्थर्ववेद में पृथ्वी को माता कहकर उसकी पुत्र, धन, मधुर वचन प्रदान करने के लिये स्तुति की गयी है। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि शक्ति की महत्ता को वैदिक ऋषियों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था। शक्ति की उपासना के उद्रभव के पीछे वैदिक तथा अवैदिक दोनों ही प्रवृत्तियों का योगदान रहा है। महाभारत तथा पुराणों में देवी माहात्म्य का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। महाभारत के समय तक शक्ति सम्प्रदाय समाज में ठोस आधार प्राप्त कर चुका था। भीष्म पर्व में वर्णित है कि कृष्ण की सलाह पर अर्जुन ने युद्ध में विजय प्राप्त करने के निमित्त देवी दुर्गा की स्तुति की थी।[27] वहीं बताया गया है कि प्रातः काल शक्ति की उपासना करने वाला व्यक्ति युद्ध में विजय प्राप्त करता है तथा उसे लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। यथा–

"य इदं पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः।

संग्रामें विजयेन्नित्यं लक्ष्मी प्राप्नोति केवलाम्।।"[28]

महाभारत के विराटपर्व में युधिष्ठिर ने देवी को विन्ध्यवासिनी, महिषासुर मर्दिनी, यशोदा के गर्भ से उत्पन्न, नारायण की परमप्रिया तथा कृष्ण की बहन कहकर उनकी स्तुति की

है।[29] महाभारत में ही कहा गया है कि देवी ने नन्दगोप के कुल में यशोदा के गर्भ से जन्म लिया। कंस द्वारा कन्या रूप में शिला पर पटके जाने पर वह आकाश मार्ग में चली गयी तथा विन्यपर्वत पर जाकर बस गयी। यथा–

"यशोदागर्भसंभूता......................नन्द गोपकुले जाता...................... ।
शिलातट विनिक्षिप्तामाकाशं प्रतिगामिनीम।।"[30]

पुराणों में भी विन्ध्यपर्वत को देवी का निवास स्थान बताया गया है। मार्कण्डेय पुराण में देवी की महिमा का विस्तृत गुणगान करते हुये उनकी स्तुति की गयी है। उसे स्वर्ग तथा अपवर्ग एवं सभी प्रकार के मंगलों को देने वाली कहा गया है। इसी पुराण में वर्णित है कि महिषासुर का वध करने के लिये विष्णु, शिव, ब्रम्हा, इन्द्र चन्द्र , वरूण,सूर्य आदि देवताओं के मुख से निःसृत तेजपुंज से शक्ति की उत्पत्ति हुई। उसे सभी देवताओं ने अपने–अपने अस्त्र प्रदान किये। उस शक्ति ने महिषासुर का वध किया, जिससे वह 'महिषासुरमर्दिनी' नाम से विख्यात हुई।[31] एक अन्य कथा में बताया गया है कि देवता जब शुम्भ तथा निशुम्भ जैसे असुरों से पीड़ित हुये तब उन्होंने हिमालय पर्वत पर जाकर आराधना की। इससे प्रसन्न होकर देवी ने अपने को प्रकट किया तथा असुरों का विनाश कर डाला। वह अम्बिका, काली, चामुण्डा, कौशिकी आदि नामों से विख्यात हुई।[32]

देवी की उपासना तीनो रूपों में की जाती थी–

(1) शान्त या सौम्य रूप।

(2) उग्र या प्रचण्ड रूप।

(3) कामप्रधान रूप।

उपर्युक्त तीनों के अन्तर्गत अनेक देवियों की कल्पना की गयी है। सामान्यतः देवी के सौम्य रूप की ही उपासना की जाती थी। उमा, पार्वती, लक्ष्मी आदि नाम उसके सौम्य रूप के ही प्रतीक है। दुर्गा, चण्डी, कपाली, भैरवी आदि नाम उग्र रूप प्रकट करते हैं। कापालिक तथा कालमुख सम्प्रदाय के लोग इसी रूप की अराधना करते हैं। इसमें देवी को प्रसन्न करने के लिये पशुओं की बलि दी जाती है तथा सुरा मांस आदि का प्रयोग मुक्त रूप से होता है। काम प्रधान रूप में देवी की उपासना शाक्त लोगों द्वारा की जाती है जो उसे आनन्द भैरवी,

त्रिपुर–सुन्दरी, ललिता आदि नाम प्रदान करते हैं।

हरिवंश पुराण में देवी विषयक वृतान्त शक्ति–प्रभाव की ओर संकेत करता है। देवी के दो विभिन्न स्वरूपों का समन्वय यहाँ पर सर्वव्यापिनी मातृशक्ति के रूप में हुआ है। शक्ति का पहला स्वरूप कृष्ण की भगिनी एकानंशा और योगमाया में मिलता है।[33] और दूसरा रूप शिव की सहचरी भवानी में।[34] प्रद्युम्न तथा अनिरूद्ध के द्वारा आर्या के स्तवन तथा कंस के एकानंशा को मारने के प्रयास में दुर्गा और योगमाया का मिश्रित रूप दिखलाई देता है।[35]

विष्णु पर्व के प्रारम्भ में कृष्णावतार के पूर्व योगमाया के जन्म का वर्णन है। हरिवंश में योगमाया का सम्बन्ध योगनिद्रा से स्थापित किया गया हैं निद्रा को कालरूपिणी तथा काली कहा गया है यथा–

"लोकानामन्तकालज्ञा काली नयनशालिनी।

उपतस्थे महात्मानं निद्रातं कालरूपिणी।।"[36]

योगनिद्रा अपनी शक्ति से समस्त जगत को आक्रान्त कर लेती है।"[37] योगनिद्रा ही विष्णु के आदेश से देवकी के गर्भ में योग माया के रूप में जन्म लेती है।"[38]

सुप्रसिद्ध विद्वान फरक्यूहर हरिवंश के अन्तर्गत शक्ति के विषय के सम्बन्ध में नवीन विचार प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार दुर्गा का प्रारम्भिकतम् रूप महाभारत में मिलता है।महाभारत में दुर्गा विनयपर्वत में निवास करने वाली कौमारी देवी' के रूप में प्रस्तुत की गयी है। दुर्गा का सम्बन्ध यहॉ पर कृष्ण के वृतान्त से स्थापित हो गया है। किन्तु शिव के साथ दुर्गा के सम्बन्ध की कल्पना अभी तक नहीं हुयी है।[39] फरक्यूहर का यह मत पुराणों में शाक्त विषय के अध्ययन के लिये महत्वपूर्ण है।

हरिवंश में एकानंशा तथा पार्वती के व्यक्तित्व के समन्वय का आदि रूप देखा जा सकता है। आर्या एकानंशा तथा पार्वती के समन्वित रूप के दर्शन इस प्रसंग के दो प्रकार के विशेषणों में होते हैं। महाभारत के बाद सर्वप्रथम दुर्गा का व्यापक व्यक्तित्व प्रस्तुत करने के कारण शक्ति पूजा के विकास के दृष्टिकोण से हरिवंश का स्थान महत्वपूर्ण है। फरक्यूहर महोदय ने महाभारत में एकानंशा अथवा योग माया की अनुपस्थिति की ओर संकेत किया है।

अतः फरक्यूहर के अनुसार एकानंशा (योगमाया) का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम हरिवंश तथा विष्णुपुराण में हुआ है। इस आधार पर उन्हों ने हरिवंश की शक्ति विषयक सामग्री को महाभारत से उत्तर कालीन माना है।[40] महाभारत और हरिवंश के शाक्त विषयों का अध्ययन करने पर फरक्यूहर के कथन की सत्यता प्रमाणित हो जाती है। इस आधार पर हम कह सकते है कि हरिवंश काल में शक्ति का स्वरूप लगभग निश्चित हो गया है।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हरिवंश में कृष्णजन्म के प्रसंग में शक्ति का प्रारम्भिक रूप दिखलाई देता है। यहाँ देवी के व्यक्तित्व में एकानंशा (योगमाया), दुर्गा तथा अन्य देवियों के अतिरिक्त 'शिवपत्नी' के स्वरूप का समन्वय नहीं हुआ है। शिव की सहचरी, नवमातृ तथा अन्य देवियों के समन्वय के कारण विष्णु के व्यक्तित्व की भाँति शक्ति का स्वरूप व्यापक बन गया है। शक्ति के इस व्यापक रूप की प्रसिद्धि के कारण कदाचित उससे सम्बद्ध स्वतन्त्र सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ है।[41] हरिवंश के आर्यास्तव में शक्ति का सम्बन्ध शिव से स्थापित नहीं हुआ है। देवी का स्वतन्त्र व्यक्तित्व कृष्ण तथा महेन्द्र भगिनी, नारायणी तथा कौमारी के रूप में प्रचलित दिख[42]लाई देता है। शबर, बर्वर और पुलिन्दों से पूजित तथा कुक्कुट, बकरी, भेड़, सिंह और व्याघ्र से आवृत देवी का स्वरूप यहाँ पर निश्चित हो चुका है।[43] हरिवंश पुराण के एक स्थल में देवी को सिद्धसेन की माता कहा गया है–(जननी सेद्धसेनस्य)[44] देवी के इस मातृरूप से उनके शिवपत्नीत्व का भ्रम होता है। किन्तु शिवपत्नी के रूप में उनका अनुल्लेख देवी के मातृरूप की प्राचीनता का परिचय देता है। इस प्रसंग में देवी को 'नारियों में प्राचीन तथा पार्वती' के विशेषणों से सम्बोधित किया गया है यथा–

"नारीणां पार्वतीं च त्वां पौराणी मृषयो विदुः।"[45]

देवी के प्रति यह सम्बोधन उनके शिव–साहचर्य का पोषक नहीं है। देवी का पार्वती नाम सम्भवतः उनके पर्वत निवास की सूचना देता है तथा पौराणी विशेषण देवी के इस स्वरूप की प्राचीनता की सूचना देता है।

आर्या के प्रसंग में शक्ति का स्वरूप हरिवंश के अन्तर्गत शक्ति के अन्य प्रसंगों से प्राचीन है। सम्भवतः आर्या के प्रसंग में देवी का व्यक्तित्व महाभारत की कौमारी देवी का निकटवर्ती है। महाभारत के अन्तर्गत देवी का कृष्ण तथा इन्द्र के भगिनीत्व के द्वारा कृष्ण चरित्र

के साथ दीव का निकट सम्बन्ध स्थापित हो गया है। महाभारत के अन्तर्गत मारिष नामक दैत्य का विनाश करने वाली देवी हरिवंश में शुम्भ–निशुम्भ दैत्यों की वधकर्ती के रूप में प्रसिद्ध हो गयी है।[46] महाभारत में विन्ध्यवासिनी 'कौमारी देवी' तथा हरिवंश में आर्यास्तव की आर्या के तुलनात्मक अनुशीलन के द्वारा हरिवंश में देवी के स्वरूप का यह स्वरूप–विकास देखा जा सकता है।

हरिवंश में प्रद्युम्न तथा अनिरूद्ध के द्वारा किये गये देवी के स्तवन में शक्ति का रूप 'आर्यास्तव' की आर्या से भिन्न तथा विकसित दिखलाई देता है। देवी का सम्बन्ध यहाँ पर शिव की पत्नी के रूप में स्थापित हो चुका है। यथा–

"नमः कात्यायन्यै गिरीशायै नमो नमः"[47]

"नमः शत्रु विनाशिन्यै नमो गौर्ये शिवप्रिये।"[48]

"ब्रह्माणीन्द्राणि रूद्राणि भूतभव्यभवे शिवे"[49]

"रूद्रप्रिये महाभागे"[50]

देवी की स्तुतियों में प्रयुक्त अन्य विशेषण आर्यास्तव में विशेषणों से समानता रखते हैं।[51] प्रद्युम्न और अनिरूद्ध के द्वारा देवी के स्तव के प्रसंग में उनका स्वरूप आर्यास्तव के अन्तर्गत देवी के रूप से पर्याप्त उत्तरकालीन है।

वैष्णव धर्म एवं कृष्णोपासना :–

भगवान विष्णु को अपना प्रधान इष्टदेव और परमात्मा के रूप में मानने वाले भक्त वैष्णव कहे गये तथा तत्सम्बन्धी धर्म–दर्शन और सिद्धान्त वैष्णव–धर्म। वैष्णव–धर्म का विकास भागवत धर्म से हुआ। परम्परा के अनुसार इसके प्रवर्तक वृष्णि (सात्वत्) वंशी कृष्ण थे। जिन्हें वसुदेव का पुत्र होने के कारण वासुदेव कृष्ण कहा जाता है। वे मूलतः मथुरा के निवासी थे। छान्दोग्य उपनिषद् में उन्हें देवकी–पुत्र कहा गया है तथा घोर अंगिरस का शिष्य बताया गया है। कृष्ण के अनुयायी उन्हे 'भगवत्' (पूज्य) कहते थे इस कारण उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म की संज्ञा भागवत हो गयी। महाभारत काल में वासुदेव कृष्ण का समीकरण विष्णु से स्थापित किया गया तथा भागवत धर्म वैष्णव धर्म बन गया। विष्णु एक ऋग्वैदिक देवता है तथा अन्य देवताओं के सामान वे प्रकृति के देवता हैं वे सूर्य के क्रियाशील रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं।

विष्णु का सर्वाधिक महत्व इस कारण है कि उन्होने तीन पगों से सम्पूर्ण पृथ्वी को नाप डाला है यथा –

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेघानिदघे पद्रम्।

समूढ़मस्य पांसुरे।।"[52]

बाद की संहिताओं तथा ब्राह्याण ग्रन्थों में हम विष्णु के प्रभाव में वृद्धि पाते हैं। शतपथ ब्राह्यण में उन्हें यज्ञ का प्रतिरूप माना गया है तथा बताया गया है कि देवताओं के युद्ध में वे सर्वशक्तिशाली सिद्ध हुये तथा सर्वाधिक प्रसिद्ध घोषित किये गये।"[53] ऐतरेय ब्राह्यण में भी विष्णु को 'सर्वोच्च देवता' बताया गया है। महाभारत में हम विष्णु को सर्वश्रेष्ठ देवता के रूप में प्रतिष्ठित पाते हैं।"[54] वस्तुतः समस्त महाभारत ही विष्णु से व्याप्त है। इसमें विष्णु के विभिन्न अवतारों का उल्लेख मिलता है जिनमें से एक अवतार कृष्ण वासुदेव हैं। इस समय से भागवत धर्म वैष्णव धर्म बन जाता है तथा विष्णु उसके अधिष्ठाता देवता हो जाते है। पतंजलि ने भी वासुदेव को विष्णु का रूप बताया है। विष्णु पुराण में वासुदेव को विष्णु का एक नाम बताते हुये कहा गया है कि विष्णु सर्वत्र है उनमें सभी का वास है अतः वे वासुदेव हैं। यथा–

"सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै मतः।

ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते।।"[55]

इस प्रकार हम देखते है कि प्राचीन भागवत धर्म ही कालान्तर में वैष्णव धर्म में परिवर्तित हो गया ह। इसी प्रकार जब कृष्ण–विष्णु का तादात्म्य नाराण्यण से स्थापित हुआ तब वैष्णव धर्म की एक संज्ञा 'पाञ्चरात्र धर्म' हो गयी क्योंकि नारायण के उपासक पाञ्चरात्र कहे जाते थे। महाभारत के शान्तिपूर्ण में नारायण का तादात्म्य वासुदेव विष्णु के साथ स्थापित करते हुये उन्हे सर्वव्यापी एवं सभी को उत्पन्न करने वाला बताया गया है।

वासुदेव अथवा भागवत धर्म की प्राचीनता ईसा–पूर्व पॉचवी शती तक जाती है। महर्षि पार्णिन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाघ्यायी में भागवत धर्म तथा वासुदेव की पूजा का उल्लेख किया है उन्होने वासुदेव के उपासकों को वासुदेवक कहा है।[56] प्रारम्भ में मथुरा तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में यह धर्म प्रचलित था। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज शूरसेन (मथुरा) के लोगों को 'हेराक्लीज'का उपासक बताता है जिससे तात्पर्य वासुदेव कृष्ण से ही है। सिकन्दर के

समकालीन यूनानी लेखक हमें बताते है। कि पोरस की सेना अपने समक्ष हेराक्लीज की मूर्ति रखकर युद्ध करती थी। भागवत धर्म प्रचलित था। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज शूरसेन (मथुरा) के लोगों को 'हेराक्लीज' का उपासक बताता है जिससे तात्पर्य वासुदेव कृष्ण से ही है। सिकन्दर के समकालीन यूनानी लेखक हमें बताते हैं कि पोरस की सेना अपने समक्ष हेराक्लीज की मूर्ति रखकर युद्ध करती थी। भागवत् धर्म में कृष्ण को सर्वोच्च देवता मानकर उनकी भक्ति द्वारा मोक्ष प्राप्ति का विधान प्रस्तुत किया गया है। महावीर तथा बुद्ध की ही भॉति वासुदेव कृष्ण को सर्वोच्च देवता मानकर उनकी भक्ति द्वारा मोक्ष प्राप्ति का विधान प्रस्तुत किया गया हैं। वे वृष्णि कबीले के प्रमुख थे। ईस्वी सन् के प्रारम्भ होने से पूर्व ही उनकी देवता के रूप में पूजा प्रारम्भ हो चुकी थी। गीता में स्वयं कृष्ण ने अपने को वृष्णियों में वासुदेव कहा है–

'वृष्णीनां वासुदेवाऽस्मि'[57]

हरिवंश में वर्णित कृष्ण चरित्र का विवरण और उसकी विशेषता निम्नलिखित है–

प्रायः सभी पुराणों में कृष्ण चरित्र का प्रारम्भ विष्णु की स्तुति तथा कृष्ण के वैष्णव स्वरूप पर प्रकाश डालने के उपरान्त होता हैं हरिवंश में भारत से पीड़ित वसुन्धरा के दुःख को दूर करने के लिये ब्रह्म नारायणाश्रम में प्रवेश करते है।''[58] ब्रह्म की स्तुति के द्वारा योगनिद्रा का परित्याग करके विष्णु पृथ्वी की करूण कथा सुनते है।''[59] ब्रह्मविष्णु को वसुदेव के घर में अवतरित होने की सलाह देते हैं।''[60]

हरिवंश में कालियदमन का वृतान्त है।[61] किन्तु नागपत्नियों के द्वारा कृष्ण की स्तुति का उल्लेख नहीं हैं

हरिवंश में रासलीला का संक्षिप्त वर्णन है। शारदी ज्योत्सना को देखकर कृष्ण गोपिकाओं के साथ विविध क्रीड़ायें करते है।[62]

हरिवंश में अक्रूर के द्वारा जल के अन्तर्गत कृष्ण और अनन्त के ध्यान का उल्लेख है, उनकी स्तुति का नहीं।[63]

हरिवंश में कंस धनुर्भंग, कुवलयापीडमारण, चाणूर तथा मुष्टिकवध के प्रसंग में कंस के विशाल प्रेक्षागार का वर्णन हैं।[64] जबकि अन्य पुराणों में मथुरा के इस प्रेक्षागार का उल्लेख

नहीं हैं कृष्ण के द्वारा कंस के वध करने पर वसुदेव और देवकी की स्तुति का भी हरिवंश में अभाव है।[65]

हरिवंश में बलराम के गोकुलगमन का वर्णन है। बलराम के लिये गोपाल बालक वारूणी तथा विविध वस्त्राभूषण लाते हैं।[66]

हरिवंश में रूक्मिणीहरण का वृतान्त है इस वृतान्त के साथ जरासन्ध, सुनीथ, शाल्व तथा दन्तवक्त आदि की मन्त्रणा, रूक्मिणी स्वयंबर में शाल्व का कालयवन के पास कृष्ण के विरूद्ध लड़ने के लिये गमन, कृष्ण का द्वारवती–प्रयाण तथा कालयवन का वध आदि घटनाओं का वर्णन हैं।[67]

हरिवंश में कालयवन का वृतान्त है। गार्ग्य मुनि के नियोग के द्वारा गोपाली का वेष धारण करने वाली अप्सरा से कालयवन की उत्पत्ति होती है। कृष्ण को कालयवन के पास एक काला सर्प भेजते हुये चित्रित किया गया हैं। कालयवन को कृष्णसर्प से युक्त घट में चीटियॉ डालकर कृष्ण के पास वापस भेजते हुये कहा गया है। अनेकों चीटियों द्वारा खाये गये उस भीषण सर्प को देखकर कृष्ण भय से मथुरा का परित्याग कर द्वारका में राज्य स्थापित कर लेते है।[68]

पारिजातहरण का वृतान्त हरिवंश में विस्तृत रूप में मिलता है। अध्याय 64 के परिजातहरण के कथानक की आवृत्ति 65–75 अध्यायों में हुयी है।[69] हरिवंश में छालिक्य क्रीड़ा का वर्णन है। कृष्ण अपनी समस्त रानियों तथा बलराम, प्रघुम्न, अनिरूद्ध और यादवों को लेकर समुद्र के तट में विविध क्रीड़ायें करते हैं।''[70] हरिवंश में वज्रनाभ का वृतान्त है। प्रघुम्न अपनी नाट्यकला से व्रजपुरवासियों को मुग्ध करके प्रभावती नामक वज्रनाभ की कन्या से विवाह करते है।[71]

हरिवंश में प्रघुम्नहरण का वृतान्त चार अध्यायों में विस्तृत रूप से वर्णित है। शम्बर प्रघुम्न का हरण करके उन्हे मायावती को दे देता है। बालक का पोषण करके उसमें आसक्त मायावती उसे अपने पुत्र न होने के प्रमाण देती है। स्वयं को शम्बर के द्वारा हरण किया हुआ जानकर प्रद्युम्न वैष्णवास्त्र के द्वारा शम्बर का वध कर देते हैं।[72]

हरिवंश में बाणासुर का आख्यान है। पार्वती के वरदान के अनुसार स्वप्न में

ऊषा का मिलन अनिरूद्ध से होता है तथा अनिरूद्ध को स्वप्न में उषा के दर्शन होते है। चित्रलेखा की सहायता से उषा का संयोग अनिरूद्ध से होता है।[73]

हरिवंश में पौण्ड्रक का वृतान्त है। कृष्ण के बदरिकाश्रम जाने पर पौण्ड्रक द्वारका पर आक्रमण करता है। तप करके बदरिकाश्रम से लौटने पर कृष्ण पौण्ड्रक का वध कर देते हैं। हरिवंश में ही कृष्ण के कैलासगमन, बदरिकाश्रम में उनकी तपस्या, उनको शिव आदि देवताओं के दर्शन तथा कृष्ण और शिव की परस्पर स्तुति का प्रसंग है।[74]

हरिवंश में कृष्ण के स्वर्गगमन तथा द्वारका नगरी के समुद्र में निमज्जन का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है। द्वारका के समुद्र में डूबने का उल्लेख केवल दो श्लोकों के द्वारा हुआ है।[75]

हरिवंश में कृष्ण का व्यक्तित्व मानवीय तथा दैवी दोनों विशेषताओं को व्यापक रूप में दिखाता है। हरिवंश के अनेक स्थल कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित करते हैं यथा–

" छादयित्वात्मनात्मानं मायया योगरूपया।
तत्रावतर लोकानां भवाय मधुसूदन।।"76

" अंशावतरणं विष्णोर्यदिदं त्रिदशैः कृतम।
क्षयार्थ पृथिवीन्द्राणां सर्वमेतदकारणम्।।"[77]

हरिवंश में कृष्ण को परब्रम्हा तथा विराट माना गया है।"[78] साथ ही साथ उन्हें सांख्य का पुरुष बतलाया गया है।"[79] हरिवंश के अन्य अनेक स्थल कृष्ण को वीर योद्धा तथा महापुरूष के रूप में अंकित करते हैं।"[80]

कृष्ण के अत्यन्त प्राचीन व्यक्त्वि को नया रूप देने के कारण हरिवंश तथा महाभारत का स्थान महत्वपूर्ण है। हरिवंश में गोपाल कृष्ण तथा दार्शनिक कृष्ण के व्यक्तित्व के समन्वय का प्रयास स्पष्ट दिखलाई देता है। हरिवंश के विष्णु पर्व के अनेक स्थलों में कृष्ण के पराक्रमों का वर्णन नारद तथा अन्य व्यक्तियों के द्वारा हुआ है। [81] नारद के द्वारा बाल्यकाल से लेकर द्वारका में कृष्ण के जीवनकाल तक की घटनाओं का वर्णन कृष्ण चरित्र के रहस्यपूर्ण भागों में प्रकाश डालता है। इन स्थलों में गोपाल कृष्ण तथा दार्शनिक कृष्ण के परस्पर सम्बन्ध को

स्थापित करने के लिये महत्वपूर्ण सामग्री मिलती है।

हरिवंश के भविष्यपर्व में कृष्ण की स्तुतियों के अन्तर्गत उनके द्विविध व्यक्तित्व के अनेक प्रमाण मिलते हैं। बदरिकाश्रम में शिव के द्वारा कृष्ण के प्रति की गयी स्तुति में कृष्ण को 'ब्रम्हाविद' 'ज्योतियों' का पति' 'सूर्य' 'सूर्यपुत्र' तथा 'तेज का स्वामी ' कहा गया है।''[82] ब्रह्मविद शब्द दर्शन शास्त्र से कृष्ण के सम्बन्ध को स्थापित करता है दर्शन शास्त्र से कृष्ण का सम्बन्ध छांदोग्ध तथा गीता के कृष्ण की सूचना देता है। इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ0 रॉय चौधरी का मत है कि 'हरिवंश के इस स्तर पर 'ब्रह्मविद' 'ज्योतिषा पति' 'सूर्य' 'सूर्यपुत्र' तथा 'तेजसांपति' के विशेषण स्पष्ट ही उपनिषद तथा गीता के कृष्ण से एक स्थापित करते हैं।''[83] हरिवंश के अन्य स्थल में कृष्ण के मुख से गीता से समता रखने वाले भावों की अभिव्यक्ति इस मत को पुष्ट करती है।''[84]

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हरिवंश में कृष्ण के प्रति 'सूर्यपुत्र' विशेषण सूर्यवंशी राजा के अर्थ में नही लिया जा सकता। कृष्ण का वंश मनु की पुत्री इला से प्रवर्तित चन्द्रवंश है। मनु वैवस्वत को सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश दोनों के जन्मदाता के रूप में मानने पर कृष्ण के 'सूर्यपुत्र' विशेषण को सूर्यवंश का घोतक माना जाता है। किन्तु इन्हीं विशेषणों के साथ "ज्योतिषां पति" और "तेजसांपति" शब्द सूर्यवंश से भिन्न अन्य अर्थ को प्रस्तुत करते हैं। सूर्यवंश से कृष्ण का सम्बन्ध स्थापित करने पर ज्योति और तेज शब्दों के प्रयोग की उपयोगिता नहीं रह जाती।

हरिवंश के कृष्ण चरित्र में केवल कृष्ण का व्यक्तित्व ही प्रधान विषय है। कृष्ण चरित्र के अन्तर्गत सभी विशेषताओं की गणना इस अध्याय के अन्तर्गत की गयी है। इसी कारण कृष्ण कथा के साथ विष्णुपर्व तथा भविष्यपर्व में मिलने वाली वैष्णव विचार धारा पर भी प्रकाश डाला गया है। हरिवंश के कृष्ण चरित्र में कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध सभी वृतान्तों की अन्य पुराणों से तुलना की गयी है। हरिवंश में कृष्ण को शकटासुर, पूतना, अरिष्ट धेनुक, केशी तथा कंस आदि दैत्वों का निहन्ता बतलाया गया है।''[85] ब्रम्ह्म पुराण तथा विष्णु पुराण को छोड़कर अन्य पुराण कृष्ण को तृणावर्त, अधासुर, बकासुर आदि असुरों के हन्ता के रूप में भी प्रस्तुत करते हैं।

सुप्रसिद्ध विद्वान विल्सन हरिवंश में अक्रूर के द्वारा भुजगेश्वर के ध्यान के वृतान्त को बलराम और कृष्ण में एकता स्थापित करने के निमित्त बतलाते है।''[86] लेकिन इनका यह मत उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि हरिवंश में ''भोगिनी के स्वामी'' एकार्णवेश्वर की गोद में आसीन विष्णु तथा उनके समीप स्थित बलराम का वर्णन है।''[87] अतः कृष्ण और बलराम में एकता स्थापित करने का प्रयास नहीं दिखलाई देता।

हरिवंश में तप करने के लिये कृष्ण बदरिकाश्रम जाने का उल्लेख है।''[88]लेकिन यहां पर नर और नारायण नामक विष्णु के अवतार को कृष्ण से अधिक महत्व नहीं दिया गया है। हरिवंश का यह स्थल अर्वाचीन प्रतीत होता है क्योंकि हरिवंश के प्राचीन स्थलों में नर–नारायण का एक साथ उल्लेख नहीं मिलता है। इसमें केवल नारायण का उल्लेख अवश्य है। यहां नारायण दैत्वों के विनाश के उपरान्त नारायणाश्रम में योगनिद्रा में मग्न चित्रित किये गये हैं।''[89]

अन्य पुराणों में (भागवत पुराण में) जहां कृष्ण को सोलह कलाओं से युक्त कहा गया है।''[90] वहीं हरिवंश के किसी भी स्थल में सोलह कलाओं का उल्लेख तक नहीं है।

हरिवंश में कृष्ण की बहन एकानंशा का वृतान्त विशेषता रखता है।[91] सुप्रसिद्ध विद्वान अमलानन्द घोष ने हरिवंश की एकानंशा को विन्ध्वासिनी देवी का एक स्वरूप माना है। उन्होंने 'कौमुदी महोत्सव' में उन वाक्यों की ओर संकेत किया है जो विन्ध्यवासिनी तथा यादवों की एकानंशा में ऐक्य स्थापित करते हैं। 'कौमुदी महोत्सव' में एकांनगा को श्री घोष एकानंशा का बिगड़ा रूप मानते हैं।''[92] महाभारत में भी एकानंशा का एकानंगा कहा गया है।''[93] महाभारत का यह भाग अर्वाचीन है अथवा प्राचीन यह निश्चित रूप से बतलाना कठिन है।

हरिवंश में यशोदा की कन्या को कंस के द्वारा शिला पर पटकने पर आकाश में सिद्धों और देवताओं आदि से स्तुत होकर उड़ते हुये कहा गया है।''[94] आकाश में उड़कर विन्ध्यपर्वत में निवास करने वाली इस कन्या को विन्ध्यवासिनी तथा आर्या कहा गया है। विष्णु पर्व के अंतिम भाग में संकट के क्षणों में ''प्रद्युम्न तथा ''अनिरूद्ध'' इसी आर्या का स्तवन करते हैं।''[95] हरिवंश में आकाश में उड़कर विन्ध्यपर्वत पर निवास करने वाली देवी की अंशभूत कन्या को एकानंशा कहा गया है।''[96] एकानंशा को श्रीकृष्ण की रक्षा के लिये उत्पन्न बतलाया गया

है। एक संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि अन्य पुराणों में एकानंशा को योग माया तथा योगनिद्रा कहा गया है।''[97] हरिवंश को छोड़कर अन्य पुराण एकानंशा के देवी रूप का ही उल्लेख करते हैं उनके मानव रूप से परिचित नहीं प्रतीत होते।[98] पुराणों में योगमाया के स्वरूप की समीक्षा से ज्ञात होता है कि हरिवंश की एकानंशा का वृतान्त साधारण पौराणिक परम्परा से भिन्न है।

कृष्ण चरित्र में रासलीला का स्थान महत्वपूर्ण है। प्रत्येक पुराण में यह अपनी विशेषता के साथ प्रस्तुत की गयी है। हरिवंश में रासलीला की विशेषता इसकी संक्षिप्तता में है। हरिवंश के विष्णुपर्व में रास का प्रसंग है। रासलीला को इसमें ''हल्लीस्कक्रीडन"कहा गया है। हरिवंश के विष्णुपर्व में शरद ऋतु की ज्योत्सना का सौन्दर्य तथा कृष्ण की मानसिक अवस्था का वर्णन अत्यन्त सीमित शब्दों में करने वाले श्लोक से हरिवंश के हल्लीसक की संक्षिप्ता का परिचय मिलता है। कृष्ण शारदी निशा तथा अपनी अवस्था को देखकर रास की इच्छा करते हैं यथा–

''कृष्णस्तु यौवनं दृष्ट्वा निशि चन्द्रमसो वनम्।
शारदीं च निशां रम्यां मनश्चक्रे रतिं प्रति।।''[99]

हरिवंश के हल्लीसक की संक्षिप्तता पुराणों में रासलीला के प्राचीन रूप का परिचय देती है। हरिवंश के हल्लीसक में राधा तथा मुक्ति को प्राप्त करने वाली गोपिका के स्वरूप का अभाव इस बात की पुष्टि करता है।

जरासंध का वृतान्त हरिवंश में ऐतिहसिक और राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण वृतान्त है। महाभारत तथा हरिवंश में इसको मगधेश्वर कहा गया है।''[100] इसकी राजधानी राजगृह बतायी गयी है। जरासन्ध की शक्ति को देखकर कृष्ण ने द्वारका में जाकर नगरी बसायी यथा–

''कृष्णऽपि कालयवनं ज्ञात्वा केशिनिपूदनः।
जरासन्ध भयाच्चैव पुरीं द्वारवतीं ययौ।।''[101]

हरिवंश में कृष्ण तथा प्रमुख यादवों को जरासन्ध की शक्ति से आतंकित प्रस्तुत किया गया है। श्रृगाल, कालयवन, रुक्मी, शिशुपाल आदि राजा जरासन्ध की ओर से लड़ रहे थे। मन्त्रणा करके बलराम और कृष्ण दक्षिण में करवीरपुर गये। वहां उनकी भेंट परशुराम से हुई।''[102]

परशुराम की सलाह से कृष्ण और बलराम गोमन्त पर्वत पर गये। यहां कृष्ण और बलराम का जरासन्ध की सेना से घोर युद्ध हुआ।''[103] इस युद्ध में कृष्ण का पक्ष विजयी हुआ और जरासन्ध हारकर युद्धक्षेत्र से लौट गया।'' [104] जरासन्ध के साथ कृष्ण और बलराम के इस युद्ध चाक और मौसल युद्ध कहा गया है।''[105] हरिवंश में जरासन्ध के वृतान्त के विषय में पर्याप्त सामग्री होने पर भी महाभारत में आये हुये जरासन्ध का उल्लेख नहीं है। महाभारत में कृष्ण, भीम तथा अर्जुन ब्राम्हणवेश में राजगृह जाते हैं यहां पर भीम का जरासन्ध से द्वन्दयुद्ध तथा जरासन्ध की मृत्यु का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि जरासन्ध के वध का वृतान्त महाभारत में होने के कारण आवृत्ति के भय से हरिवंश में छोड़ दिया गया है। कृष्ण पर जरासन्ध के आक्रमणों की संख्या पुराणों में पारस्परिक अन्तर रखती है। महाभारत, हरिवंश तथा ब्रम्हापुराण में जरासन्ध के अठारह आक्रमण का उल्लेख है।[107] जबकि विष्णुपुराण जरासन्ध के साथ कृष्ण के आठ युद्धों की सूचना देता है। [108] वही भागवत पुराण तथा देवी भागवत में जरासन्ध के सत्रह युद्धों का वर्णन है। [109] महाभारत, हरिवंश तथा ब्रह्मपुराण में जरासन्ध के अठारह युद्धों का उल्लेख अतिशयोक्ति पूर्ण प्रतीत होता है ऐसी स्थिति में विष्णुपुराण में आठ युद्धों का वर्णन ही विश्वसनीय ज्ञात होता है।

पारिजातहरण का वृतान्त हरिवंश में विशिष्ट स्थान रखता है। यह वृतान्त हरिवंश में दो बार वर्णित है। हरिवंश में यह वृतान्त कुछ अविकृत तथा संक्षिप्त रूप में है।[110] कृष्ण पारिजात का हरण करते हैं। इन्द्र कृष्ण के पराक्रम का देखकर पारिजात वृक्ष ले जाने की अनुमति दे देते हैं।[111] परिजात–हरण का वृतान्त विष्णु पर्व के चौसठवें अध्याय के आगे बड़े विस्तार पूर्वक तथा कुछ कल्पना का सम्मिश्रण करके बनाया गया ज्ञात होता है। सुप्रसिद्ध विद्वान रयूबेन ने इस विस्तृत वृतान्त को चौंसठवें अध्याय की पुनरूक्तिमात्र बतलाया है। परिजात हरण का यह द्वितीय वृतान्त विष्णुपर्व के बारह अध्यायों (65–76) में वर्णित है। इस वृतान्त के यहाँ पर इतना विस्तृत होने के अनेक कारण है। सर्वप्रथम इस वृतान्त की मुख्य कथा में अनेक नवीन घटनायें जुड़ गयी हैं इन वृतान्तों का कथासूत्र इस प्रकार है। रैवतक पर्वत में नारद के द्वारा दिये गये परिजात कुसुम को कृष्ण रूक्मिणी को दे देते हैं। इस पुष्प के प्रदान से सत्यभामा रूष्ट हो जाती है। उनके आग्रह से कृष्ण स्वर्ग से पारिजात का हरण करते हैं। दूसरी बात है मुख्य

वृतान्त में शिव की स्तुति और पुण्यकव्रत कासम्मिश्रण। कृष्ण और इन्द्र के युद्ध की शान्ति के लिये कश्यप ऋषि शिव की तपस्या करते हैं।[112] कृष्ण स्वयं पारिजातहरण की सफलता के निमित्त महादेव की स्तुति करते है।[113] सत्यभामा सौभाग्य की प्राप्ति के लिये नारद को पुरोहित बनाकर तथा कोमल तन्तु के द्वारा पारिजात वृक्ष से कृष्ण को बॉधकर प्रभूत धन के साथ कृष्ण का दान करती है।[114] पारिजात हरण के इस वृतान्त को विस्तृत बनाने में तीसरा कारण है युद्ध का विस्तृत वर्णन।[115] इस प्रकार हरिवंश में पारिजातहरण का पहला वृतान्त संक्षिप्तता के लिये तथा द्वितीय वृतान्त अन्य पुराणों से भिन्न कथावस्तु के लिये अन्य पुराणों में विशिष्ट स्थान रखते है।

हरिवंश में जलक्रीड़ा तथा छालिक्य का वृतान्त भी अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसकी कथा इस प्रकार है—एक बार यादव, यादव स्त्रियों और सोलह हजार तथा सौ रानियों से युक्त कृष्ण पिण्डारतीर्थ में समुद्र यात्रा करने गये। समुद्र में यादव तथा अपनी रानियों के साथ कृष्ण ने जलक्रीड़ायें की। क्रीड़ा के बाद भोज हुआ। कृष्ण के द्वारा बुलाई गयी पॉच दिव्य अप्सराओं ने यादवों का मनोविनोद किया।[116] जलक्रीड़ा का यही वृतान्त 'छालिक्यक्रीड़ा' नाम से हरिवंश के विष्णुपर्व के दूसरे अध्याय में वर्णित है।[117]

इस अध्याय के अन्त में छालिक्य की प्रशंसा की गयी है। देव, गन्धर्व तथा महर्षियों से प्रतिष्ठित संगीत तथा वाद्यमिश्रित इस अभिनय को कृष्ण के द्वारा प्रवर्तित माना गया है यथा—

"छालिक्यगान्धर्वगुणोंदयेषु ये देवगन्धर्वमहर्षि संघाः।

निष्ठां प्रयान्तीत्यवगच्छ बुद्ध्या छालिक्यमेवं मधुसूदनेन।।[118]

हरिवंश में इन दो अध्यायों के कथानक की समानता से ज्ञात होता है कि अध्याय 89 में इससे पूर्व अध्याय की आवृत्ति मात्र हुई है। इन दो अध्यायों की तुलना से अध्याय 88 की प्राचीनता सिद्ध हो जाती है। अध्याय 88 में वंशघोष, हल्लीसक आदि का उल्लेख नहीं है जबकि अध्याय 89 में इसका उल्लेख है। इसी प्रकार 'रास' शब्द का उल्लेख अध्याय 88 में नहीं है तथा अध्याय 89 में है।[119]

इससे ज्ञात होता है कि जलक्रीड़ा का 'पूर्ववृतान्त' कृष्णचरित्र के मूल वृतान्त

से निकट सम्बन्ध रखता है। हरिवंश के पारिजात हरण के वृतान्त की भॉति इस प्राचीन प्रसंग को दूसरे अध्याय में विस्तृत कर दिया गया है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेख नीय है कि हरिवंश में प्रस्तुत जलक्रीड़ा का वर्णन महाभारत तथा अन्य पुराणों में नहीं मिलता।

हरिवंश के कृष्णचरित्र में वज्रनाभ का वृतान्त सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसका उल्लेख अन्य किसी भी पुराण में नहीं है। बज्रनाभ का वृतान्त इस प्रकार है– ''बज्रनाभ नामक एक असुर ने तपस्या की। उसकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर ब्रम्हा ने उसे देवों से अपराजित होने का वरदान दिया। वज्रनाभ ने वज्रपुर नामक नगरी बसायी। पराक्रम के गर्व से उसने पृथ्वी में अत्याचार किये। इन्द्र ने कृष्ण को वज्रनाभ के दुष्कार्यों से विदित कराया। कृष्ण ने यज्ञ किया इसमें अनेक ऋषि आये थे। इस यज्ञ में एक नट ने अपने अभिनय से महर्षियों का सन्तुष्ट किया। इसी समय देवलोकवासी हंसों को बुलाकर कृष्ण ने उन्हे वज्रपुर में भेजने का आयोजन किया। हंसों का कार्य था वज्रनाभ की कन्या प्रभावती को प्रद्युम्न के प्रति आसक्त करना। हंस ने प्रभावती को प्रद्युम्न के रूप और गुणों से परिचित कराया। प्रभावती ने प्रद्युम्न के दर्शन की इच्छा प्रकट की। प्रद्युम्न तथा साम्ब आदि ने वेष बदलकर वज्रपुर में प्रवेश किया। अपनी कला से उन्होने वज्रपुर वासियों को प्रसन्न कर लिया। प्रद्युम्न ने प्रभावती से गन्धर्व–विवाह किया। साम्ब तथा गद आदि ने प्रभावती की सखियों से विवाह किया। प्रद्युम्न, साम्ब और गद के पुत्रों को देखकर वज्रनाभ वासियों को शत्रु के नगर में प्रवेश का पता चला। बज्रनाभ तथा यादवों की सेना का परस्पर युद्ध हुआ। कृष्ण के चक्र से प्रद्युम्न ने बज्रनाभ का वध किया।''[120]

वज्रनाभ का वृतान्त हरिवंश में केवल एक ही स्थल में मिलता है, अन्यत्र इस वृतान्त का संकेत तक नहीं है। कृष्ण के अन्य पराक्रमों का उल्लेख हरिवंश में अनेक बार हुआ है। हरिवंश में विष्णु के केशवावतार के वर्णन में कृष्ण के सभी मुख्य पराक्रमों का उल्लेख है किन्तु बज्रनाभ के वृतान्त का उल्लेख नहीं है।[121] इसी प्रकार हरिवंश में नारद बज्रनाभ का वध करके द्वारका आये हुये कृष्ण के सभी पराक्रमों का वर्णन करते हैं किन्तु वज्रनाभ के प्रसंग के लिये वे मौन है।''[122] सुप्रसिद्ध विद्वान विण्टरनित्स ने हरिवंश में वज्रनाभ के वृतान्त को अत्यन्त प्राचीन माना है।[123] इन्होंने इसे हरिवंश का सुन्दरतम अंश बतलाया है। हरिवंश में कृष्ण के पराक्रमवर्णन के प्रसंग में बज्रनाभ के वृतान्त के अभाव से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता

है कि यह प्राचीन वृतान्त उत्तरकालीन कृष्णचरित्र में स्थान प्राप्त न कर सका।

इस प्रकार हम कह सकते है कि हरिवंश का कृष्ण चरित्र अनेक पुराणों के कृष्ण चरित्र की पृष्ठभूमि है। अतः हरिवंश में कृष्णचरित्र तथा विष्णुभक्ति का प्रारम्भिक रूप देखा जा सकता है। हरिवंश के अनेक प्रसंग समस्त साहित्यों में कृष्ण के अस्पष्ट चरित्र को आलोकित करते है। अन्य वैष्णव पुराणों से भिन्न हरिवंश की यह विशेषता इस पुराण के कृष्णचरित्र को महत्व देती है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हरिवशं प्रारम्भिक वैष्णव पुराण है इस कारण जिन वैष्णव विचार धाराओं के दर्शन इस पुराण में होते है, वे धार्मिक विकास के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। प्रारम्भिक वैष्णव पुराण होते हुये भी हरिवंश में उत्तरकालीन विष्णुभक्ति के बीज देखे जा सकते है। यहॉ पर विष्णु–कृष्ण को सॉख्य पुरूष तथा वेदान्त के ब्रम्ह से एकीभूत किया गया है।[124]

इसके साथ ही कृष्ण को योगीश्वर कहा गया है। यहॉ पर हरिवंश, गीता, भागवत पुराण, विष्णु पुराण की धार्मिक विचार धाराओं से समानता रखता है कि न्तु गीता और भागवत में भक्ति को जो प्रश्रय मिला है वह हरिवंश में अपने मूलरूप में है। भविष्य पर्व में घण्टाकर्ण का वृतान्त तथा शिव और कृष्ण का कैलास पर्वत परपरस्पर स्तवन क्रमशः शैव और वैष्णव मतों का परिचायक है।[125] भक्ति का यह प्रसंग भी उत्तर कालीन शैव वैष्णवों मतों से प्रभावित ज्ञात नहीं होता। अन्य पुराणों में प्रमुख स्थान ग्रहण करने वाले पांचरात्र का एक स्थल को छोड़कर (जो बाद में जोड़ा गया ज्ञात होता है।) हरिवंश में पूर्ण अभाव है।[126]

हरिवंश में दार्शनिक तत्व की विशेषतायें :-

हरिवंश का दार्शनिक तत्व पौराणिक दर्शन के क्षेत्र में महत्व रखता है। इस पुराण में भविष्य पर्व के अन्तर्गत सात से बत्तीसवें अध्याय तक आदि सृष्टि का और प्रकृति पुरुषात्मक विष्णु के स्वरूप का चिन्तन है। इस स्थल में सांख्य और योग के विषयों पर अलग–अलग विचार प्रस्तुत किये गये है। हरिवंश में दार्शनिक प्रसंग प्रलय के एकार्णव के वर्णन से प्रारम्भ होता है। प्रलयकाल में जलमग्न पृथ्वी को एकार्णव कहा गया है यथा–

"ते नगा जलसंछन्नाः पयसः सर्वतोघराः।

एकार्णवजला भूत्वा सर्वसत्वविवर्जिताः।।"[127]

अव्यक्त विष्णु योगावस्था में स्थित होकर सुदीर्घ काल तक उस एकार्णव में निवास करते हैं यथा–

"एकार्णवजले योगी हासीद्योगमुपागतः।

अयुतानां सहस्त्राणि गतान्येकार्णवेऽम्भसि।।"[128]

एकार्णव में मार्कण्डेय का आख्यान अन्य पुराणों की भाँति हरिवंश में भी है। हरिवंश में सांख्यय तथा योग से सम्बन्धित विचार निम्नवत है–

सांख्य :-

हरिवंश में सांख्य विषयक विचार अनेक स्थलों में मिलते है। इस पुराण में विष्णु पर्व के अन्तर्गत अर्जुन के प्रति कृष्ण की उक्ति में सांख्य प्रकृति का विवेचन हुआ है। प्रकृति को व्यक्ताव्यक्त और सनातन कहा गया है। इसमें प्रवेश करके योगविद् मुक्तावस्था को प्राप्त होते हैं यथा–

" प्रकृतिः सा मम् परा व्यक्ताव्यक्ता सनातनी।

यां प्रविश्य भवन्तीह मुक्ता योगविदुत्तमाः।।"[129]

प्रकृति के इसी स्वरूप का विवेचन गीता में हुआ है यथा–

"महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।

भजन्व्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।"[130]

हरिवंश में इस प्रकृति को परम्ब्रम्ह कहा गया है।[131] गीता में प्रकृति को सांख्यपुरूष की सहचरी बताकर अनादि कहा गया है। जगत के विकार प्रकृति से ही उद्भूत माने गये है। यथा–

"प्रकृतिं पुरूषं चैव विद्वयनादी उभावपि।

विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान्।।"[132]

हरिवंश में प्रकृति को 'विकृतात्मिका' कहा गया है। विष्णुपर्व में वरूण कृष्ण को विकृतात्मिकता प्रकृति का श्रष्टा बतलाते है।[133]

इसी प्रसंग में कृष्ण को 'प्रकृति के विकारो के विकार का शमयिता कहा गया है' यथा–

इसी प्रसंग में कृष्ण को 'प्रकृति के विकारों के विकार का शमयिता कहा गया है यथा–

"प्रकृतिर्या विकारेषु वर्तते पुरूषर्षम्।

तस्या विकारशमने वर्तसे त्वं महाद्युते।।"[134]

प्रकृति का विकार दृश्य जगत है इस जगत के विकार दृष्टजन हैं इनके शमन के लिये कृष्ण का बार–बार अवतार ग्रहण ही प्रकृति के विकारों का शमन है।

हरिवंश के भविष्य पर्व में प्रकृति को कारण कहा गया है जिससे महत् की उत्पत्ति हुयी।[135] कृष्ण को उस प्रकृति का 'कारणात्मक प्रधान पुरूष' कहा गया है। महत् से अन्धकार की उत्पत्ति होती है। अहंकार से पंचतन्मात्रायें तथा पंचमहाभूत उत्पन्न होते है। पुरूषरूप कृष्ण को इन कारणों का परिणाम कहा गया है।[136]

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हरिवंश में कृष्ण का सांख्य पुरूष से एकीभाव विशुद्ध सांख्यमत का पोषण नहीं करता। इस पुराण के सांख्य पुरूषरूप कृष्ण में वेदान्त के परमब्रम्ह का समन्वय हुआ है। कृष्ण को प्रकृति का स्त्रष्टा कहने के साथ ही प्रकृति के विकारों के विकार का शमयिता कहा गया है।[137] इस भाव को प्रकट करने के लिये कृष्ण और विश्व की सत्ता खिलौनों से खेलने में साथ बालक से की गयी है।[138] जिस प्रकार बालक खिलौनों से क्रीड़ा करते हुये उसको स्वयं तोड़ डालता है, उसी प्रकार पुरूषरूप कृष्ण जगत् में विविध क्रीड़ायें करते हुये स्वयं इसका संहार कर लेते हैं। अतः हरिवंश के कृष्ण चरित्र में पुराणों के सेश्वर सांख्य के दर्शन होते है।

वरूण के द्वारा कृष्ण के स्वरूप–कथन के प्रसंग में सांख्य पुरूष और कृष्ण में एकता स्थापित की गयी है। यहॉ पर पुरूष के विभिन्न क्रियाकलापों के साथ पुरूषरूप विष्णु के अवतार की सूचना दी गयी है। दुष्ट लोगों के कामक्रोधादि विकारों को शान्त करने के लिये पुरुष–रूप विष्णु समय–समय में प्रादुर्भूत होते है।[139] हरिवंश में सेश्वर सांख्य का यह अन्य प्रमाण है।

योग :-

सांख्य के संक्षिप्त विवेचन के बाद हरिवंश में योग का विस्तृत प्रसंग आता है। प्रारम्भ में योगोपसर्ग का वर्णन है। ब्रम्ह के चिन्तन से सनातन ब्रम्हयज्ञ का प्रवर्तन होता है। यह ब्रम्हयज्ञ नव द्वारों से युक्त पंचेन्द्रिय ग्राम में होता है। मस्तिष्क में तेज से धूम का संचार होता है। यह धूम अनेक वर्णों से युक्त है।[140] धूम के समूह से अग्नि की अग्नि की ज्वालायें और चिनगारियॉ प्रस्फुटित होती है। अग्नि की लपटों के साथ ही अनेकों ही अनेकों जलधारायें बह जाती है। जल तथा अग्नि के श्वेत तथा लोहित वर्ण के सम्भ्रिण से वायु की उत्पत्ति होती है। यह वायु 'सूक्ष्म–प्राण' कहा गया है। वेगमयी गति और शब्द इसका परम् गुण हैं। सहस्त्रों विभिन्न रूपों को धारण करके अग्नि, वायु, जल और भूमि चित् के प्रवेश से संघातावस्था के बाद समवायत्व को प्राप्त होते है। चक्षुओं के बीच में ब्रम्ह, सूक्ष्म और विराट् पुरूष है। पुरूषोत्तम ने उनसे भिन्न अनेक सूक्ष्म और विराट् पुरूषों को उत्पन्न किया। इसी सूक्ष्म और विराट् स्वरूप पुरुष को व्यक्ताव्यक्त और सनातन नारायण कहा गया है।[141]

हरिवंश के अन्तर्गत सांख्य की भॉति योग में भी ब्रम्ह को जगत् की आदि शक्ति माना गया है। योग दर्शन के विकास का मूल प्रेरक यह ब्रम्ह ही है। ब्रम्ह के चिन्तन के कारण मस्तिष्क में अग्निज्वाला और जलधाराओं के संघर्ष से क्रमशः वायु और भूमि की उत्पत्ति गयी है। यहॉ पर सृष्टि के आदि तत्वों के रूप में केवल चार वस्तुयें मिलती हैं। सांख्य के आकाश तत्व का इस स्थल में अभाव है। इन चार तत्वों का निर्माण करने के बाद 'व्यक्तात्यक्त सनातन विष्णु' अनेकों सूक्ष्म और विराट पुरूषों की उत्पत्ति करते हैं। योगसम्बन्धी सृष्टिविकास का यह क्रम सांख्य और वेदान्त के सृष्टिविकास सम्बन्धी क्रम से बहुत अंश में भिन्न है।

हरिवंश के योग के अन्य विवेचन में युगधर्म का वर्णन है। योगात्मा ब्रम्हसंभूत भगवान अनेक प्राणियों को उत्पन्न करते है।[142] सृष्टि के पूर्व ब्रम्हराजोगुण अधिक होने के कारण क्षुब्ध होते है।[143] ब्रम्हा के योग और वेदात्मक ब्रम्हयज्ञ के द्वारा ब्रम्हसम्बन्धी विपुल ज्ञान तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।[144] ब्रम्हज्ञान में क्रमशः चरम्शिखर पर आरूढ़ होने वाले योगी को सर्वप्रथम आकाश ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। आकाश ऐश्वर्य को 'अव्याकृत (निर्विघ्न) ऐश्वर्य' माना गया है।[145] आकाश ऐश्वर्य को प्राप्त योगी क्रमशः वायुभूत ऐश्वर्य को पाता है। योगी के

ऐश्वर्य को चरम् रूप 'ध्रुव–ऐश्वर्य' की प्राप्ति पर पूर्ण होता है।[146] ध्रुव–ऐश्वर्य को 'निर्मल–ब्रम्ह' कहा गया है।[147] ध्रुव–ऐश्वर्य की प्राप्ति योग की वह अन्तिम् अवस्था है जब योगी शारीरिक बन्धन से मुक्त होकर उन्मुक्त रूप से आकाश मार्ग में विहार करने लगता है। आकाश में भ्रमण करने वाले इस योगी को इन्द्र के अनेकों नेत्र भी नहीं देख सकते है।[148] सिद्ध योगी के दर्शन मानसिक रूप से ओंकार का चिन्तन करने वाले ब्रम्हवादियों को होता है। ओंकार को प्राणिजगत की चेतना से युक्त मनीषियों का परम्बम्ह माना गया है। यह ओंकार ब्रम्हसंभूत महानाद है और ब्राम्हण इस ओंकार को वायुरूप से अक्षरत्व को प्राप्त होने वाला कहते हैं।[149] रूपरहित यह प्रणव धातुओं से युक्त होकर स्वतन्त्र और असंग अवस्था में प्राणियों में संचरण करता है।[150] योग का यह प्रसंग योगसाधना में व्यस्त योगी के क्रमिक विकास की स्थिति का प्रदर्शन करता है। इसमें सिद्ध योगी के लक्षण के साथ प्रणवरूप ब्रम्ह की अवस्था का वर्णन है।

योग का प्रसंग योगमार्ग से भ्रष्ट योगी की मानसिक अवस्था को भी प्रस्तुत करता है। महासागर में उत्ताल तरंगों की भॉति अनेक विघ्न योगी के चित्त को क्षुब्ध करते हैं।[151] क्षुब्ध योगी चेतनाहीन होकर आसन से भ्रष्ट हो जाता है।[152] शुक्ल और पीत विद्युत की ज्योति विघ्न रूप में योगी के मार्ग में बाधा पहुँचाती है किन्तु इन विकारों से मन पर नियंत्रण रखने वाला योगी 'निर्मल ब्रम्ह' या उन्मुक्त अवस्था की प्राप्ति से सिद्ध हो जाता है। सिद्ध योगी जिस ब्रम्ह की प्राप्ति करता है, वह ब्रम्ह रसस्वरूप है। यह रसस्वरूप ब्रम्ह ही जगत् की सृष्टि का कारण है।

'तेजरूप ऐश्वर्य' को विकारों का सहकारी कहा गया है, तेजरूप ऐश्वर्य उग्ररूप, दण्डधारी तथा कोलाहलपूर्ण मानवशरीरों के द्वारा योगी के चित्त के क्षोभ का कारण होता है।[153] वायुरूपधारी यह ऐश्वर्य स्त्रियों का वेश धारण करके नृत्य और संगीत के द्वारा योगी के मन को चंचल बनाता है।[154] इन विकारों से मन को नियंत्रित करके सिद्ध होने वाला योगी 'ध्रुव ऐश्वर्य' अथवा 'निर्मलब्रम्ह' को पाकर सिद्ध हो जाता हैं यथा–

"एतैर्विकारैः संवृत्तैनिरूद्धैश्चैव सर्वशः।

ध्रुवमैश्वर्यमासाद्य सिद्धो भवति ब्राम्हण।।"[155]

आकाश में देदीप्यमान नक्षत्र और ग्रहमण्डल यह सिद्ध योगी हैं तथा चन्द्र और

सूर्य की गतियों का अनुसरण करते हैं।[156] काल का विभाजन और उसकी गति ये दोनों ही इन ग्रहों का अनुसरण करते है।[157] अतः समाधि की अवस्था को पाने वाले योगी सुकृतियों का स्थान पाते है।[158]

पूर्वोक्त स्थल में योग का विवेचन हुआ है। ब्रम्हयोगी के लक्षण तथा उनका स्वरूप, योगी की साधना तथा सिद्धी ही इस स्थल का मुख्य विषय है। योग के इन लक्षणों के अतिरिक्त उसका लाक्षणिक विवेचन मधुकैटभ तथा विष्णु के यहाँ पर मधु और कैटभ को मोह तथा विष्णु को विवेक का प्रतीक माना गया है। मधु–कैटभ का विष्णु से युद्ध और विष्णु के द्वारा उनका वध मोह पर विवेक की विजय को सूचित करता है।

मधुकैटभ–युद्ध में विवेकरूप विष्णु को मानस–शरीर के द्वारा तीनों लोकों में संचरणशील बतलाया गया है। ब्रम्हरूप यह विष्णु सूक्ष्म, योगमय नागरूप में पृथ्वी का वहन करते हैं।[159] यही विष्णु सनातन, दिव्य, शाश्वत् तथा ब्रम्हसंभव माने गये है।[160] अन्य स्थल में उन्हें पुराण पुरूष, विराट्, अक्षय, अप्रमेय, कर्मशील तथा जितेन्द्रिय कहा गया है।[161]

देवताओं के तप को प्रोत्साहन देने वाले प्रमुख देवता विष्णु माने गये है। समस्त सृष्टि के विकास का एकमात्र कारण तप विष्णु से प्रेरणा ग्रहण करता है। विष्णु सभी देवताओं की तपस्या के अध्यक्ष है।[162] अन्य स्थल में विष्णु को अपने सहचारियों की संरक्षा में तत्पर कहा गया है।[163] अतः योग के क्षेत्र में विष्णु तप के अग्रणी है।

तप के उच्चतम् प्रतीक के रूप में विष्णु का उल्लेख हरिवंश के अन्य स्थल में भी हुआ है। यहाँ पर रूक्मिणी की प्रार्थना के अनुसार कृष्ण बदरिकाश्रम में तप करने के लिये जाते हुये बताये गये है। बदरिकाश्रम में समाधिमग्न कृष्ण को देखकर समस्त देवता तथा ऋषि अपने नेत्रों को सफल करते हैं।[164]

अतः तपस्या से कृष्ण–विष्णु का केवल योग सम्बन्धी स्थलों में ही नहीं है। वह कृष्ण चरित्र में भी मिलता है।

नर और नारायण का तप विष्णु के तपोशील चरित्र का अन्य प्रमाण है। देवी भागवत में नर और नारायण को सुदीर्घकाल तक तप करते हुये चित्रित किया गया है। उनके तप में विघ्न डालने के लिये इन्द्र ने अप्सरायें भेजीं किन्तु सफल नहीं हो पाये।[165] हरिवंश के

अनतर्गत ब्रम्हाणपुत्र को बचाकर अर्जुन के साथ सप्तसागर, सप्तपर्वत और लोका–लोक को पार करके अन्धकार–विवर से लौटने वाले कृष्ण नारायण के स्वरुप है। यहॉ पर नर से नारायण के उत्कर्ष का स्पष्ट कथन हुआ है। कृष्ण अर्जुन को अपनी व्यापकता का स्वरूप बतलाते हुये समस्त सृष्टि में अपने विराट् सूक्ष्म तत्व की उपस्थिति बतलाते है।[166] हरिवंश का यह स्थल गीता के अन्तर्गत कृष्ण के विराट् स्वरूप के प्रदर्शन से पूर्ण समानता रखता है।[167]

हरिवंश के अन्तर्गत तारकामय संग्राम में असुरों के वध के बाद विष्णु को नारायणाश्रम में विश्राम करते हुये कहा गया है। यहॉ पर विष्णु निद्रामय योग में मग्न रहते है। निद्रयोग में सोये हुये विष्णु को ब्रम्हर्षि और ब्रम्हा भी नहीं जान पाते।[168] योग निद्रा से विष्णु का उदबोधन किसी संकटकाल के आने पर ब्रम्हा तथा देवताओं के द्वारा होता है।[169] यहॉ पर निद्रा को योगनिद्रा का नाम देकर विष्णु की शयनक्रिया में भी तप का सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

इस प्रकार हरिवंश के अन्तर्गत योग का विस्तृत विवेचन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है, इस विवेचन के प्रारम्भ में योग के पारिभाषिक शब्दों का लगभग अभाव है। अष्टांग योग के यम–नियम, प्राणायाम, आदि का इस स्थल में उल्लेख नहीं है। हरिवंश में योग का यह स्वरूप इस दर्शन की प्रारम्भिक अवस्था को सूचित करता है हरिवंश के योगसम्बन्धी विवेचन के अन्तिम स्थलों में हठयोग का निरूपण हुआ है। यह प्रसंग योग के प्रारंम्भिक प्रसंग से अधिक अर्वाचीन ज्ञात होता है। इसका पहला कारण यह है कि हठयोग स्वयं योग की विकसित अवस्था का प्रतीक है। दूसरा कारण हठयोग के पारिभाषिक शब्द–कुण्डलिनी और कुण्डलिनीमूल तभी प्रचलित हो सकते है जब हठयोग के सिद्धान्तों का समुचित विकास हो चुका होगा अतः हरिवंश के योगनिरूपण में प्रारम्भिक स्थल प्राचीन है तथा अन्तिम स्थल अर्वाचीन।

इस प्रकार हम देखते है कि हरिवंश में वैष्णव परम्परा के विविध स्वरूपों के द्वारा विष्णुभक्ति के प्रारम्भिक रूप का परिचय मिलता है। इस पुराण में कुछ स्थलों पर प्रसिद्ध भागवत मन्त्र का उल्लेख हुआ है यथा–

"नमो भगवते तस्मै वासुदेवाय चक्रिणे।

नमस्ते गदिने तुभ्यं वासुदेवाय धीमते।।"[170]

"नमो विष्णो नमों विष्णों नमो विष्णो नमो हरे।

नमस्ते वासुदेवाय वासुदेवाय धीमते।।"[171]

किन्तु इस आधार पर हरिवंश में किसी भी निश्चित विष्णु भक्ति के रूप को नहीं देखा जा सकता। कृष्ण के बदरिकाश्रमगमन के प्रसंग में शिव की महिमा का वर्णन स्वयं कृष्ण के मुख से हुआ है किन्तु पुराण के अन्त में सभी देवताओं के गौरव को विष्णु में निमज्जित कर दिया गया है। ब्रम्हसदृश ऋषिगण, शिव, देवता और शूरवीर विस्मित होकर महायोगी विष्णु का नित्य स्तवन करते है।[172] यह स्थल हरिवंश के नानाविध वृतान्तों में वैष्णव धर्म की प्रमुखता को सूचित करता है।

वैष्णव धर्म में अवतारवाद का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तद्नुसार ईश्वर समय–समय पर अपने भक्तों के उद्धार के लिये पृथ्वी पर अवतरित होता है। गीता में कृष्ण कहते है।–

"यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

परित्राणामय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।"[173]

अर्थात् जब जब धर्म की हानि तथा अधर्म की वृद्धि होती है तब–तब में अवतरित होता हूँ साधुओं की रक्षा तथा दुर्जनों के विनाश एवं धर्म की स्थापना के लिये युग–युग में मैं उत्पन्न होता हूँ।" हरिवंश पुराण में भी अवतार वाद का वर्णन मिलता है। हरिवंश में कहा गया है कि "समस्त भूतों के आत्मा भगवान् श्री हरि देवता और मनुष्यों का कल्याण तथा लोकों का अभ्युदय करने के लिये आवश्यकतावश बारंबार अवतीर्ण होते है" यथा–

"हितार्थं सुरमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च।

बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादूर्भवति कार्यतः।।"[174]

हरिवंश में भगवान विष्णु के निम्न अवतारों का वर्णन मिलता है–

1. पौष्कार अवतार :-

पूर्वकाल में जब कमलनाभ भगवान विष्णु समुद्र के जल में शयन कर रहे थे, उनकी नाभि से एक कमल प्रकट हुआ, जिसमें पहले ऋषियों सहित सम्पूर्ण देवताओं का प्रादुर्भाव

हुआ। पुराण में यह परमात्मा विष्णु का पौष्कर नाम का अवतार या सर्ग कहा जाता है यथा–

"पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि।

पुष्करे गत्र सम्भूता देवाः सर्षिगणाःपुरा।।

एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावों महात्मनः।

2.वाराह अवतार :-

परमात्मा का जो वाराह नामक अवतार है, वह श्रुति में वर्णित है उस अवतार के समय सुरश्रेष्ठ भगवान् विष्णु ने वाराह रूप धारणकर पर्वत और वनसहित समुद्र तक ही सारी पृथ्वी का जल से उद्धार किया था–

"वाराहस्तु श्रुतिमुखः प्रादुर्भावो महात्मनः।

यत्रविष्णुःसुरश्रेष्ठो वाराहं रूपमास्थितः।

महीं सागरपयनतां सशैलवनकाननम्।।"[176]

3.नरसिंह अवतार :-

नरसिंह अवतार में भगवान् ने नरसिंह रूप धारण करके हिरण्यकशिपु नामक दैत्य का वध किया था–

"वाराह एष कथितो नारसिंहमतः श्रणु।

यत्रभूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः।।"177

4. वामन अवतार :-

अपने इस अवतार में भगवान् विष्णु ने वामन रूप धारण करके दैत्यों का विनाश किया था। इस अवतार में भगवान् विष्णु वामन रूप धारण कर बलवान बलि के यज्ञ में गये और वहाँ उन्होने अपने तीन ही पगों से त्रिलोकी को नापकर बड़े–बड़े असुरों को क्षुब्ध कर डाला–

"नृसिंह एष कथितो भूयोऽयं वामनोऽपरः।

यत्र वामनमाश्रित्य रूपं दैत्य विनाशकृत।।

बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा।

विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः।।''[178]

5. दत्तात्रेय अवतार :-

इसके बाद भूतात्मा परमात्मा विष्णु का फिर जो अवतार हुआ, वह दत्तात्रेय के नाम से विख्यात् है–

''भूयो भूतात्मनों विष्णोः प्रादुर्भावों महात्मनः।

दत्तात्रेय इति ख्यातः क्षमया परया युतः।।[179]

उस समय वेद लुप्त हो गये थे वैदिकी प्रक्रिया और यज्ञ भी नष्टप्राय हो गये थे। चारो वर्णों में संकरता आ गयी थी, धर्म शिथिल हो चला था, अधर्म बड़े जोरों के साथ बढ़ रहा था। सत्यमिटता जा रहा था और सबओर असत्य का बोलबाला था। प्रजाक्षीण हो रही थी और धर्म पाखण्ड से मिश्रित हो गया था। ऐसे समय में भगवान् दत्तात्रेय ने यज्ञों और क्रियाओं सहित बेदों का पुनरूद्धार किया और चारो वर्णों को पृथक–2 करके उन्हे व्यवस्थित रूप दिया।

6.परशुराम अवतार :-

परमात्मा श्रीहरि ने जमदग्निनन्दन परशुराम के रूप में भी अवतार लिया। इस अवतार में भगवान् परशुराम ने सेना के बीच में खड़े हुये उस राजा अर्जुन का वध किया था जो अपनी सहस्त्र भुजाओं के कारण घमंड में भरा रहा था और समराड़गण में शत्रुओं के लिये दुर्जय बना हुआ था–

''यत्र बाहुसहस्त्रेण विस्मितं दुर्जयं रणे।

रामोऽर्जुन मनीकस्थं जघान नृपति प्रभुः।।[180]

7.राम अवतार :-

चौबीसवें त्रेतायुग में भगवान् विष्णु राजा दशरथ के पुत्र कमलनयन श्रीराम के रूप में प्रकट हुये और कुछ काल तक विश्रवामित्र के अनुयायी रहे–

''चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुरस्सरः।

राज्ञो दशरथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः।।[181]

महायशस्वी श्रीराम सबलोगों को प्रसन्न रखने, राक्षसों को मारने और धर्म की वृद्धि करने के लिये उस समय अवतीर्ण हुये थे।

8.मत्स्य अवतारः-

भगवान विष्णु न पृथ्वी की रक्षा तथा जगत के कल्याण के लिये मत्स्य अवतार लिया था।

9.कूर्म अवतार :-

भगवान विष्णु ने पृथ्वी की रक्षा के लिये कूर्म अवतार लिया था।

10.कृष्ण अवतार :-

अट्ठाइसवें द्वापर में भगवान् विष्णु ने श्री कृष्ण नाम अवतार लिया था।

"नवमें द्वापरे विष्णुरष्टाविशे पुराभवत्"[182]

11.वेदव्यास अवतार :-

भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार के कुछ पहलेही भगवान विष्णु ने एक और अवतार लिया था जो जातूकर्ण्य के साथ प्रकट हुआ था, वह वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध है। उन सत्यवती पुत्र महात्मा व्यास ने एक वेद के चार विभाग किये और उन्होने ही भरतवंश की लुप्त हुयी परम्परा को पुनः प्रचलित किया।

"वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरस्सरः।।
एकोवेक्ष्चतुर्धा तु कृतस्तेन महात्मना।
जनितो भारते वंशः सत्यवत्याः सुतेन च।।"[183]

12.कल्कि अवतार :-

भविष्य में भगवान् विष्णु का विष्णुयशा नाम से प्रसिद्ध कल्कि अवतार होने वाला है। भगवान् विष्णु शम्भल नामक ग्राम में सम्पूर्ण जगत के हित के लिये पुनः एक ब्राम्हण के रूप में प्रकट होंगे–

"कल्किर्विष्णुयशा नाम शम्भले ग्रामके द्विजः।
सर्वलोकहितार्थय भूयश्रचोत्पत्स्यते प्रभुः।।"[184]

इस प्रकार हरिवंश में वैष्णव धर्म का विवेचन करने के पश्चात् निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि हरिवंश प्रारम्भिक वैष्णव पुराण है। इस कारण जिन वैष्णव विचारधाराओं के दर्शन इस पुराण में होते है, वे धार्मिक विकास के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं। प्रारम्भिक वैष्णव

पुराण होते हुये भी हरिवंश में उत्तरकालीन विष्णुभक्ति के बीज देखे जा सकते है। यहॉ पर विष्णु–कृष्ण को सांख्य पुरूष तथा वेदान्त के ब्रम्ह से एकीभूत किया गया हैं।[185] इसके साथ ही कृष्ण को योगीश्वर कहा गया है। यहॉ पर हरिवंश, गीता, भागवत विष्णु की धार्मिक विचारधाणाराओं से समानता रखता है किन्तु गीता और भागवत में भक्ति को जो प्रश्रय मिला है, वह हरिवंश में अपने मूलरूप में है। भविष्य पर्व में घण्टाकर्ण का वृतान्त तथा शिव और कृष्ण का कैलाश पर्वत पर परस्पर स्तवन क्रमशः शैव और वैष्णव मतों का परिचायक है।[186] भक्ति का यह प्रसंग भी उत्तर कालीन शैव और वैष्णव मतों से प्रभावित ज्ञात नहीं होता अन्य पुराणों से प्रमुख स्थान ग्रहण करने वाले पांचरात्र का एक स्थल को छोड़कर (जो बाद में जोड़ा गया ज्ञात होता है) हरिवंश में पूर्ण अभाव है।[187]

13.रामोपासना :-

हरिवंश पुराण के हरिवंश पर्व के इकतालीसवें अध्याय में दशावतारों के अन्तर्गत रामावतार का वर्णन है यहॉ राम का चरित्र संक्षिप्त रूप में मिलता है।[188] संक्षिप्त रामावतार के अन्त में लिखी गयी गाथा में राम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन इस प्रकार किया गया है।–

"श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषिता।

आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धे महाभुजः।।

दशवर्षसहस्त्राणि दशवर्षशतानि च।

अयोध्याधिपति र्भूत्वा रामो राज्यमकारयत्।।"[189]

लेकिन रामावतार के इस वर्णन में रामायण का उल्लेख नहीं है विष्णुपर्व के 93 वें अध्याय के अन्तर्गत यादवों के द्वारा वज्रपुर–वासियों को 'रामायण महाकाव्य' के अभिनय से मुग्ध करते हुये चित्रित किया गया है यथा–

"रामायणं महाकाव्यमुदेश्यं नाटकीकृतम्।

जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया।।"[190]

'वाल्मीकि के गीत'[191] तथा 'रामायण'[192] का उल्लेख क्रमशः हरिवंश के आदि और अन्तिम अध्यायों में है। हरिवंश पुराण में रामायण तथा रामावतार के वर्णन के आधार पर हम कह सकते है हरिवंश पुराण के काल में रामोपाख्यान से लोग परिचित थे तथा राम को

आदर्श मानकर लोग राम के जीवन एवं चरित्र से प्रेरणा ग्रहण करते थे।

इस प्रकार हरिवंश पुराण में यद्यपि रामोपासना का विशुद्ध स्वरूप नहीं मिलता लेकिन हरिवंश पुराण रामोपाख्यान तथा रामके आदर्श चरित्र से पूर्णतः परिचित है।

अन्य धार्मिक विचारधारायें :-

स्वतन्त्र सम्प्रदायों के रूप में प्रसिद्ध इन प्रधान वैष्णव, शैव तथा शाक्त विचारों के अतिरिक्त अन्य परम्परायें हरिवंश में अत्यन्त नगण्य स्थान रखती हैं। सूर्य, गणेश, गंगा, तुलसी आदि की पूजा तथा माहात्म्य हरिवंश में पूर्ण रूप से अनुपस्थित है किन्तु इन उत्तर कालीन देवी तथा देवताओं का प्रादुर्भाव अर्वाचीन पुराणों में हुआ है।[193] इन पुराणों में विविध देवताओं का प्राधान्य उत्तरकालीन विचारधाराओं का परिचय देता है।

सुप्रसिद्ध विद्वान ब्यूलर ने मानवगृहासूत्र में गणेश के प्रारम्भिक रूप को विनायक माना है। विनायक के इसी रूप का संकेत उन्होने महाभारत तथा हरिवंश में किया है।[194]

महाभारत तथा हरिवंश में विनायक गण, राक्षस, पिशाच तथा भूतों के दल के साथ चित्रित किये गये हैं। ब्यूलर ने याज्ञवल्क्य स्मृति के विनायक के साथ गणेश का तादात्म्य स्थापित किया है। मानवगृहासूत्र, महाभारत, हरिवंश तथा याज्ञवल्क्य स्मृति के आधार पर ब्यूलर का अध्ययन गणेश के व्यक्तित्व के उत्तरोत्तर विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

किन्तु ब्यूलर ने हरिवंश के अन्तर्गत दानवों के दल में विनायक को प्रस्तुत करने वाले जिस अध्याय का उल्लेख किया है, वह हरिवंश के मौलिक स्थलों में नहीं माना जा सकता। हरिवंश का यह अध्याय उत्तरकालीन ज्ञात होता है। अतः विनायक का स्वरूप हरिवंश कालीन सभ्यता का अंग नहीं माना जा सकता। विनायक को प्रस्तुत करने वाली हरिवंश की यह संस्कृति शान्तिपर्व तथा मानवगृहसूत्र की समकालीन प्रतीत होती है।

बौद्ध एव जैनधर्म :-

हरिवशं में बौद्धधर्म का उल्लेख कलिधर्म निरूपण के अन्तर्गत किया गया है। हरिवंश में इस अवैदिक धर्म के प्रति घृणा के भाव की अभिव्यक्ति हुयी है। शुक्लदन्त, अंजिताक्ष केशहीन सिर तथा काषायवस्त्रधारी शूद्रों को यहाँ बौद्ध धर्म के प्रवर्तक कहा गया है यथा–

"शुक्लदन्ताजिजताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः।

शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति शाक्यबुद्धोपजीवनः।।"[195]

इसके आगे के स्थल में बौद्धों की भिक्षावृत्ति पर आक्षेप किया गया है। बौद्ध वर्णान्तर से भिक्षा ग्रहण कर लेते है यथा–

"बहुयाचनको लोको न दास्यति परस्परम्।

अविचार्य ग्रहीष्यन्ति दानं वर्णान्तरात्तथा।।"[196]

कलिधर्मनिरूपण में वेदों की बढ़ती हुयी उपेक्षा की सूचना मिलती है। इस काल में स्वयं को पण्डित मानने वाले व्यक्ति वेदों को अप्रमाणित सिद्ध करेंगे। यथा–

"प्रमाणेकं करष्यिन्ति नेति पण्डित मानिनः।

अप्रमाणं करिष्यन्ति वेदोक्तमपरे जनाः।।"[197]

वेद को अप्रामाणिक बताने वाले लोगों को नास्तिक कहा गया है।[198] यह 'शास्त्रज्ञान बहिष्कृत' तथा दम्भिक है इस प्रकार के व्यकित्यों के राज्य में प्रजा को भीत होकर वनों में आश्रय लेना पड़ेगा।[199] इन राजाओं के दुराचार से पीड़ित जनता अंग, वंग, कलिंग, काश्मीर, मेकल, हिमालय और लवणसागर के तट का आश्रय लेगी।[200] कलिधर्म का यह वर्णन हरिवंश कालीन समाज में वैदिकधर्म के मिटते हुये रूप की ओर संकेत करता है। अवैदिक धर्मों (बौद्ध एवं जैनधर्म) के प्रति वैदिक समाज की अवहेलनासूचक सामान्य दृष्टि वेदमूलक और अवेदमूलक धर्मों के परस्पर वैमनस्य की ओर संकेत करती है।

हरिवंश में रजि के वृतान्त के अन्तर्गत जिन धर्म के ज्ञान का अभाव हरिवंश पुराण की उस धार्मिक स्थिति कापरिचय देता है जब 'जिन' का रजि के वृतान्त के अन्तर्गत रखने की परम्परा नहीं चली थीं। हरिवंश को छोड़कर अन्य वैष्णव पुराणों के रजि के वृतान्त में 'जिन' अथवा वेदविरुद्ध बौद्ध धर्म के किसी प्रचारक अथवा सम्प्रदाय का स्पष्ट उल्लेख है।[201] यहॉ पर हरिवंश अन्य पुराणों की सामान्य परम्परा से भिन्न दिशा की ओर प्रवृत्त दिखलाई देता है।

धर्म समन्वय :-

हरिवंश के अन्तर्गत शैव और वैष्णव मतों को समान घोषित करने वाले अनेक स्थल धार्मिक समन्वय के प्रयास की सूचना देते है। हरिवंश पुराण के भविष्य पर्व के अन्तर्गत

कृष्ण की कैलाश–यात्रा के प्रसंग में कृष्ण के द्वारा शिव की स्तुति कावर्णन है–

"नमस्ते शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय वेध से।

नमस्ते शोचिषे अस्तु नमस्ते उपवासिने।।"[202]

भगवान् शिव की स्तुति करते हुये कृष्ण शिव से अपने अपराधों को क्षमा करने की प्रार्थना करते है यथा–

"क्षमस्व भगवन् देव भक्तोऽहं त्राहि मां हर।

सर्वात्मन् सर्वभूतेश त्राहि मां सततं हर।।

रक्ष देव जगन्नाथ लोकान् सर्वात्मना हर।

त्राहि भक्तान् सदा देव भक्तप्रिय सदा हर।।"[203]

इसके बाद शिव कृष्ण की स्तुति करते हैं यथा–

"किमुच्यते मया देव सर्वत्वं भूतभावन।

नमः सर्वात्मना देव विष्णों माधव केशव।।"[204]

इस स्तुति में शिव विष्णु को सांख्य, योग और ब्रम्हमय बताने के साथ ही उनकी विविध संज्ञाओं की व्युतपत्ति करते हैं।[205]

स्तुति के अन्त में शिव के द्वारा विष्णु और शिव में अभेद की स्थापना हुयी है यथा–

"अहं त्वं सर्वगो देव त्वमेवाहं जनार्दन्।

आवयोरन्तरं नास्ति शब्दैरर्थैर्जगत्पते।।"[206]

विष्णु और शिव में अभेद की स्थापना हरिवंश के अन्य भाग में भी दिखलाई देती है। बाणासुर की सहायता करने वाले रूद्र में तथा अनिरूद्ध की ओर से लड़ने वाले कृष्ण में भयंकर युद्ध को देखकर ब्रम्हा मध्यस्थ का काम करते हैं। ब्रम्हा दोनों देवताओं का वैमनस्य देखकर शिव तथा विष्णु में एकता स्थापित करने वाले किसी वृतान्त का वर्णन करते हैं। यह वृतान्त अत्यन्त अर्वाचीन शैव और वैष्णवों के धार्मिक–समन्वय का परिचय देता है।[207] नीलकण्ठ की टीका के अनुसार इस प्रसंग मे यह कथा पाखण्डियों को निरूत्तर करने के लिये गढ़ी गयी है।[208] यह शैव वैष्णव सिद्धान्तों में एकता का सम्पादन करने वाले हरिवंश के स्थल साम्प्रदायिक असहिष्णुता को दूर करने के उद्देश्य से निर्मित ज्ञात होते है। इस प्रकार विष्णु और शिव में

अभेद की स्थापना करने वाले स्थलों पर त्रिमूर्ति की कल्पना अपने परिपक्व रूप में पहुँच गयी है। इसी प्रकार हरिवंश में शाक्त धर्म के साथ भी शैव और वैष्णव धर्म का समन्वय दिखाया गया है। कहीं पर शक्ति को शिव की पत्नी के रूप में तो कहीं पर शक्ति को कृष्ण की भगिनी के रूप में चित्रित किया गया है।

इस प्रकार हरिवंश में शैव, वैष्णव तथा शाक्त धर्म में परस्पर समन्वय स्थापित किया गया है वास्तव में ये सभी सम्प्रदाय हिन्दू धर्म के ही विविध अंग हैं तथा इनके मध्य परस्पर धर्म–समन्वय है।

यज्ञ (पारिवारिक स्तर पर) :-

वैदिक काल से ही पंच महायज्ञों के सम्पादन की व्यवस्था पायी जाती है। शतपथ ब्राम्हण काकथन है–"केवल पॉच ही महायज्ञ हैं, वे महान् सत्र है और वे है– भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ एवं ब्रम्हयज्ञ।"[209] जब अग्नि में आहुति दी जाती है, भले ही वह मात्र समिधा हो, तो यह देवयज्ञ है। जब पितरों को स्वधा (या श्राद्ध) दी जाती है, चाहे वह जल ही क्यों न हो, तो वह पितृयज्ञ है। जब जीवों को बलि (भोजन या ग्रास का पिण्ड) दी जाती है तो वह भूतयज्ञ कहलाता है। जब ब्राम्हणों (या अतिथियों) को भोजन दिया जाता है, उसे मनुष्य यज्ञ कहते हैं। चाहे और जब स्वाध्याय किया जाता है एक ही ऋचा हो या यजुर्वेद या सामवेद का एक ही सूक्त हो, तो वह ब्रम्हयज्ञ कहलाता है।

यहॉ पर यह उल्लेखनीय है कि पंच महायज्ञों एवं श्रौतयज्ञों में दो प्रकार के अन्तर है। पंच महायज्ञों में गृहस्थ को किसी व्यावसायिक पुरोहित की सहायता की अपेक्षा नहीं होती, किन्तु श्रौत यज्ञों में पुरोहित मुख्य है और गृहस्थ का स्थान केवल गौण रूप में रहता है। दूसरा अन्तर यह है कि पंच महायज्ञों में मुख्य उद्देश्य है विधाता प्राचीन ऋषियों, पितरों जीवों एवं सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड के प्रति (जिसमें असंख्य जीव रहते हैं) अपने कर्तव्यों का पालन। किन्तु श्रौतयज्ञों में क्रिया की प्रमुख प्रेरणा है स्वर्ग, सम्पत्ति, पुत्र आदि की कामना।

पंच महायज्ञों के मूल में क्या है? इनके पीछे कौन से स्थायी भाव है? इन प्रश्नों का उत्तर देते हुये सुप्रसिद्ध विद्वान पी0वी0 काणे ने अपने ग्रन्थ धर्मशास्त्र का इतिहास में लिखा है" ब्राम्हाणों एवं श्रौतसूत्रों में वर्णित पवित्र श्रौत्र यज्ञों का सम्पादन सबके लिये सम्भव नहीं था,

किन्तु स्वर्ग के मुख अग्नि में एक समिधा डालकर सभी कोई देवों के प्रति अपने सम्मान की भावना को अभिव्यक्त कर सकते थे। इसी प्रकार दो एक श्लोकों का जप करके कोई भी प्राचीन ऋषियों, साहित्य एवं संस्कृति के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर सकता था और इसी प्रकार एक अंजलि या एक पात्र जल के तर्पण से कोई भी पितरों के प्रति भक्ति एवं प्रिय स्मृति प्रकट कर सकता था और पितरों को सन्तुष्ट कर सकता था। सारे विश्व के प्राणी एक ही सृष्टि–बीज के द्योतक है अतः सबमें आदान–प्रदान तथा 'जिओं एवं जीने दो' का प्रमुख सिद्धान्त कार्यरूप में उपस्थित रहना चाहिये। उपर्युक्त वर्णित भक्ति, कृतज्ञता सम्मान, प्रिय स्मृति, उदारता, सहिष्णुता की भावनाओं ने प्राचीन आर्यों को पंच महायज्ञों की महत्ता प्रकट करने को प्रेरित किया।''[210] हरिवंश पुराण में भी अनेक स्थलों पर पंच महायज्ञों के समाज में प्रचलन के विवरण मिलते हैं।

हरिवंश पुराण में पंच महायज्ञों के साथ–साथ श्रौत यज्ञों के प्रचलन के प्रमाण भी मिलते हैं। इस काल तक आते–आते अनेक विशाल यज्ञो का अस्तित्व समाप्त हो चुका था लेकिन राजसूय यज्ञ, अश्वमेद्य यज्ञ आदि विशाल यज्ञों का प्रचलन हरिवंश पुराण के काल में भी था और अनकों राजाओं ने इन यज्ञों को किया था।[211] इन यज्ञो के अतिरिक्त भी अनेक यज्ञ किये जाने के उल्लेख हरिवंश पुराण में मिलते है।[212]

उपासना पद्धति-(जप, तप, दान, भक्ति) :-

पुराणों ने सभी वर्णों के लिये लोक तथा परलोक में आनन्द से जीवन प्राप्त करने का सबसे सुगम उपाय बतलाया हैं। वेदों में भी उस जीवन मय जीवन की उपलब्धि के साधन बतलाये गये हैं। परन्तु वे कलियुगी जीवों के लिये कष्ट साध्य तथा शौचसाध्य है। कलियुग का प्राणी न तो इतना अर्थ सम्पन्न है और न ही इतना पवित्र है कि यज्ञों के लिये अत्याअवश्यक उपकरण को भी वह संचित कर सके । इसलिये पुराणों में मनुष्यों को सरल साधनों अर्थात जप, तप, दान, भक्ति द्वारा मोक्ष की प्राप्ति का सुगम मार्ग बतलाया गया है।

हरिवंश पुराण में जप एवं तप से सम्बन्धित अनेक वृतान्त मिलते हैं। हरिवंश पुराण में वर्णित है कि विष्णु ने उत्तर दिशा में पैर से खड़े होकर दस हजार वर्षों तक तप किया।[213] नौ सहस्त्र वर्षों तक भस्म से आच्छादित होकर तप किया।[214] विष्णु के साथ अन्य अनेक देवता भी तप में लीन हो गये। ये देवता सोम और वृषरूप धारी महेश्वर थे। आठ सहस्त्र

वर्षों तक महेश्वर के तप के फलस्वरूप वायु धनीभूत होकर उनके अन्तःकरण में प्रविष्ट हो गया। यह वायु उद्गार के द्वारा फेनरूप में बाहर निकला।[215] वायु के संसर्ग से वह फेन निराधार आकाश में बादल बन गया। ये बादल परस्पर संहर्ष से भूमि में जलवर्षा करते हैं।[216] सृष्टि की इस प्रक्रिया के बाद वायु, अग्नि,, वासुकि और पृथ्वी ने तप किया।[217] इन देवताओं के अतिरिक्त आदित्य, वसु, मरूत्, अश्विन, गन्धर्व, किन्नर, नाग और वरूण ने तप किया।[218]

इस प्रसंग में तपोशील शेष को कालकूट विष का कारण बतलाया गया है। वासुकि ने वृक्ष से उलटे लटककर एक सहस्त्रवर्षों तक निराधार रूप में तप किया। तब कालकूट विष की उत्पत्ति से समस्त लोक त्रस्त हो गये। ब्रम्हा ने विष के प्रभाव को मिटाने कि लिये अहिंसक ब्रम्हाक्षर मन्त्र की सृष्टि की।[219] इस मन्त्र के द्वारा विष का पूर्ण प्रतिकार हो गया।

पृथ्वी के तप का फल भी शेष के तप की भॉति सृष्टि में परिवर्तन का कारण बतलाया गया हैं। सूर्य ने अपनी किरणों के द्वारा तपोशील पृथ्वी के रस काग्रहण किया। यह रस बादलों के द्वारा मेघजल के रूप में पुनः वापस आया तथा इससे नदियों की सृष्टि हुयी। सूर्य की किरणों से समन्वित स्वर्णमय धातुओं वाली नदियॉ स्फटिक मणि की भॉति शोभित हुयी।[220] यहॉ पर पृथ्वी के साथ जल तथा सूर्य का अभिन्न सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

देवताओं के तप को प्रोत्साहन देने वाले प्रमुख देवता विष्णु माने गये है। समस्त सृष्टि के विकास का एक मात्र कारण तप विष्णु से प्रेरणा ग्रहण करता है विष्णु सभी देवताओं की तपस्या के अध्यक्ष हैं यथा–

"विष्णुरेव तपोऽध्यक्षस्तेजसोऽन्ते विजृम्भति।
न हि कश्चित् पुमानस्ति य एवं तप आचरेत्।
त्रिषु लोकेषु राजेन्द्र ऋते विष्णुं सनातनम्।।[221]

तप के उच्चतम् प्रतीक के रूप में विष्णु का उल्लेख हरिवंश के अन्य स्थल में भी हुआ है। यहॉ पर रूक्मिणी की प्रार्थना के अनुसार कृष्ण बदरिकाश्रम में तप करने के लिये जाते हुये बताये गये है। बदरिकाश्रममें समाधिमग्न कृष्ण को देखकर समस्त देवता तथा ऋषि अपने नेत्रों को सफल करते हैं।[222]

नर और नारायण का तप विष्णु के तपोशील चरित्र का अन्य प्रमाण है।

देवीभागवत में नर और नारायण को सुदीर्घ काल तक तप करते हुये चित्रित किया गया हैं। उनके तप में विघ्न डालने के लिये इन्द्र ने अप्सरायें भेजी किन्तु सफल नहीं हो पायें।[223] अन्य स्थलों में अर्जुन नर के तथा नारायण विष्णु के अवतार माने गये है।[224] हरिवंश के अन्तर्गत ब्राम्हण पुत्र को बचाकर अर्जुन के साथ सप्तगार, सप्तपर्वत और लोकालोक को पार करके अन्धकार–विवर से लौटाने वाले कृष्ण नारायण के स्वरूप है। यहॉ पर नर से नारायण के उत्कर्ष का स्पष्ट कथन हुआ है। कृष्ण अर्जुन को अपनी व्यपकता का स्वरूप बतलाते हुये समस्त सृष्टि में अपने विराट् सूक्ष्म तत्व की उपस्थिति बतलाते है। [225]

हरिवंश के अन्तर्गत तारकामय संग्राम में असुरों के वध के बाद विष्णु को नारायणाश्रम में विश्राम करते हुये कहा गया है। यहॉ पर विष्णु निद्रामय योग में मग्न रहते है। यहॉ पर निद्रा को योगनिद्रा का नाम देकर विष्णु की शयनक्रिया में भी तप का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। इस प्रकार हरिवंश में तप की महत्ता दर्शायी गयी है तथा तप से ही सृष्टि की उत्पत्ति एवं विकास दिखाया गया है।

हरिवंश में जप एवं तप की महत्ता के साथ–साथ दान औचित्य तथा महत्व का प्रतिपादन भी किया गया हैं हरिवंश के पुण्यकव्रत में सत्यभामा द्वारा पारिजात वृक्ष में बॉधकर कृष्ण के नारद को दान दिये जाने का उल्लेख है।[226] विभिन्न व्रतों की समाप्ति पर विविध वस्तुओं का दान किये जाने का विधान प्रस्तुत किया गया है ये वस्तुयें वस्त्र, शय्या, आसन, गृह धान्य, दास–दासी, आभूषण, तिलों से मिश्रित रत्नमय पर्वत, हाथी, घोड़े, गौ, नमक, माखन, गुड़, मधु, स्वर्ण, सुगन्धित पदार्थों, रसों, फूलों, चॉदी, चित्र, काष्ठ, प्रस्तर, दूध, दही, घी, काला मृगचर्म, दर्पण कुशासन, कमण्डलु, खीर, यज्ञोपवीत, अन्न, रत्नमय वृक्ष , आदि हैं।[227] इसी प्रकार हरिवंश के भविष्य पर्व में हरिवंश के श्रवण का फल बतलाया गया हैं अठारह पुराणों के श्रवण से जो फल मिलता है, वह हरिवंश के श्रवण से प्राप्त बतलाया गया है अतः में हरिवंश के वाचक के लिये विविध दानों का विधान है।[228]

हरिवंश में वैष्णव भक्ति का अत्यन्त सरल रूप मिलता है। इसमें वैष्णव भक्ति के पांच रात्र के लिये विशेष स्थान नहीं है। यद्यपि इस पुराण में कुछ स्थलों पर प्रसिद्ध भागवत मन्त्र का उल्लेख हुआ है यथा–

"नमो भगवते तस्मै वासुदेवाय चक्रिणे।
नमस्ते गदिने तुभ्यं वासुदेवाय धीमते।।[229]
नमो विष्णें नमो विष्णो नमो विष्णों नमो हरे।
नमस्ते वासुदेवाय वासुदेवाय धीमते।।"[230]

किन्तु इस आधार पर हरिवंश में किसी भी निश्चित् विष्णुभक्ति के रूप को नहीं देखा जा सकता।

इसी प्रकार हरिवंश के कृष्ण चरित्र में गोपियॉ विष्णु पुराण और भागवत पुराण में कृष्ण से भिन्न रूप में प्रदर्शित की गयी है। यहॉ गोपियों का उल्लेख सामूहिक रूप में हुआ है, व्यक्तिगत रूप में नहीं। विष्णु पुराण और भागवत पुराण में कृष्ण के सहवास का सौभाग्य प्राप्त करने वाली गोपी (जिसमें राधा की कल्पना की जाती है) के अतिरिक्त अन्य गोपी का भी उल्लेख हुआ है। कृष्ण के वियोग-जन्य दुःख से समस्त पाप और उनके स्मरण–जन्य सुख से समस्त पुण्यों का फल तत्काल प्राप्त करके मुक्त होने वाली गोपी का उल्लेख विष्णु पुराण और भागवत पुराण की भगवद्भक्ति का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।[231]

कृष्ण के चिन्तनमात्र से प्राप्त मुक्ति कर्मयोगी ऋषियों के कठोर तप और ज्ञानियों के ज्ञानवाद को चुनौती देती हुयी प्रतीत होती है। इस दृष्टान्त के द्वारा कर्म और ज्ञानकाण्ड पर उपासना के महत्व का प्रवर्तन हुआ है। विष्णु की उपासना को सर्वजन–सुलभ और सरल बताकर वैष्णवों ने नामस्मरण की महिमा गायी है। भगवद्भक्ति का यह प्रभावशाली भाग हरिवंश में अनुपस्थित है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि भगवद्भक्ति का व्यापक रूप हरिवंश के बहुत बाद की वस्तु है इसी कारण हरिवंश में भगवद्भक्ति की पारिभाषिक शब्दावली का पूर्ण अभाव है।

धार्मिक उत्सव (तीज त्योहार आदि) :-

हरिवंश पुराण से तत्कालीन समाज में प्रचलित धार्मिक उत्सवों के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है। विष्णुपर्व में इन्द्रयाग के उत्सव का वर्णन मिलता है इस उत्सव में देवताओंऔर मेघों के स्वामी देवराज इन्द्र का उत्सव मनाये जाने का विवरण है।[232] इस उत्सव द्वारा देवराज इन्द्र को प्रसन्न करने का प्रयास किया जाता था जिससे कि इन्द्र वर्षा करें और

खेती हो सकें। कृष्ण द्वारा इन्द्रयाग उत्सव के स्थान पर गिरिराज पर बल दिया जाता है सभी गोप श्रीकृष्ण की बात से सहमत होकर स्वस्तिवाचन आदि कर्मकरके वृक्षों के नीचे (पर्वत के समीप) किसी सुखद स्थान पर पवित्र पशुओं को एकत्र करके उनके पास जाकर उनका पूजन करते हैं और सारे व्रज की गौओं का दूध एकत्र कर सभी गोप इस गिरियज्ञ उत्सव को मनाते हैं।[233]

हरिवंश में पुण्यकव्रत का विस्तार से उल्लेख प्राप्त होता है। पार्वती यहॉ पर वक्त्री है तथा नारद श्रोता। पुण्यकव्रत का नियम एवं विधि को बताती हुयी उमा कहती है– "व्रत धारण करने वाली साध्वी स्त्री को प्रातःकाल उठकर स्नान करने के पश्चात्पति को सूचित करना चाहिये कि आज मुझे उपवास अथवा व्रत करना है वह सास–ससुर तथा साधु–महात्माओं के चरणों में सदा प्रणाम करे फिर कुश और अक्षत से युक्त ताम्रपत्र लेकर गाय के दाहिने सींग को नहलाकर उस जल को ग्रहण कर ले। इसके बाद स्नान करके एकाग्रचित हुये पति के मस्तक पर उस जल को छिड़के। तदनन्तर अपने मस्तक पर भी उस जल के छींटे डाले। इस व्रत में नारी के लिये ऐसी शैर ग्रा होना चाहिये जो कण्टविद्ध न हो तथा आसन भी ऐसा ही होना चाहिये। प्रसन्न चित रहते हुये उपवास तथा व्रत में सदा श्वेत वस्त्र धारण करना उत्तम है। वेन्त आदि त्रणों की पादुका पहननी चाहिए। चमड़े की पादुका नहीं धारण करनी चाहिए। व्रत के अवसर पर अ जन, गोरोचन, भॉति–भॉति के गन्ध और फूलों का सदा ही परित्याग करे। इस व्रत में नारी के लिये काठ का दातौन करना, सिर के ऊपर से नहाना अथवा अंगों में उबटन लगवाना वर्जित है। सब प्रकार की शुद्धि के लिये मृत्तिका के ही उपयोग का विधान है। पैरों अथवा समूचे शरीर में तेल लगाना भी वर्जित है। व्रत में बैल, ऊँट और गदहों से जुते हुये वाहन का उपयोग वर्जित है। व्रत में कमलों से मण्डित, सुन्दर एवं विस्तृत पोखरे या बावड़ी आदि में जाकर स्नान करना उत्तम माना गया है लेकिन जिसके लिये बाहर जाने पर रोक है वह नारी तड़ाग आदि में स्नान का सुयोग न मिलने पर घड़ो के जल से स्नान करें। पतिव्रता स्त्री इस सम्पूर्ण विधि के साथ एक वर्ष या छः मास अथवा एक मास तक सदा इन्द्रिय–संयम पूर्वक व्रत का आचरण करें। इसमें ग्यारह साध्वी स्त्रियों को बुलाना चाहिये। मूल व्रत का अनुष्ठान करने वाली प्रधान स्त्री अपने यहॉ आमन्त्रित की गयी उन समस्त ग्यारह सतियों का दान करे और

देश–काल के अनुसार उनका निष्क्रय दे दे। तदनन्तर मास के अन्त में शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को देवाराधना करके व्रत को समाप्त करना चाहिये।"[234] पुण्यक व्रत की समाप्ति पर ब्राम्हणों को बहुमूल्य दान देने का विधान तथा दान में धातुनिर्मित कृत्रिम वस्तुओं का उल्लेख है।[235]

पुराणों में तीर्थों की महिमा का विपुल वर्णन मिलता है। मत्स्य पुराण में वर्णित है कि महर्षि तथा देवताओं ने यज्ञ का विधान अवश्य किया है, परन्तु दरिद्र मनुष्य यज्ञ करने में समर्थ नहीं है। यज्ञ में अनेक उपकरण तथा सामग्री की अपेक्षा रहती है। इसें राजा अथवा श्रीसंवृद्ध व्यक्ति ही सम्पन्न कर सकते है। इसीलिये ऋषियों ने इस परम् रहस्यमय तीर्थ–गमन को पुण्यमय तथा यज्ञ की अपेक्षा विशिष्ट माना है। यह दरिद्र के लिये भी सम्भव है।[236] प्रयाग तीर्थ के विषय में वर्णन आया है कि वहॉ जाने से पग–पग पर अश्वमेघ यज्ञ का फल मिलता है।[237] इसी सन्दर्भ में विवेचित है कि गंगा–यमुना के संगम पर अभिषेक करने से राजसूय और अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है।[238]शुकततीर्थ से जो फल मिलता है वह तपस्या, ब्रम्हचर्य, यज्ञ अथवा दान के द्वारा भी असम्भव है।[239]

ऐसा व्यक्ति जो कभी यज्ञ न करें अपवित्र अथवा चोर ही क्यों न हो, यदि वह अविमुक्त क्षेत्र में वास करें तो उसे शिव के आलय में आवास मिलता है।[240] वायु और ब्रम्हाण्ड पुराणों के अनुसार सप्त गोदावर तथा गोकर्ण नामक तीर्थो में स्नान करने से अश्वमेध का फल मिलता है।[241] दशाश्वमेध तथा पंचाश्वमेध नामक तीर्थो में निस्सन्देह दस तथा पॉच अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है।[242]

हरिवंश पुराण में यद्यपि पृथक रूप में तीर्थ माहात्म्य का आख्यान नहीं मिलता किन्तु प्रसंगतः अनेक तीर्थे का उल्लेख किया गया है। विष्णु पर्व में बलदेव जीके द्वारा प्रद्युम्न को आह्निकस्तोत्र का उपदेश के प्रसंग में प्रभास, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, गंगातीर्थ कुरूक्षेत्र, श्रीकंठ, गौतमाश्रम, परशुरामकुण्ड, विनशनतीर्थ, रामतीर्थ, गंगाद्वार कनखलतीर्थ, जहॉ सोम का उत्थान हुआ था वह सोमोत्सान तीर्थ, कपालमोचनतीर्थ, सुविख्यात जम्बूमार्ग, सवर्णविन्दु नाम से विख्यात तीर्थ, कनकपिंगल तीर्थ, दशाश्वतमेधिक तीर्थ, सुविख्यात बदरीतीर्थ, नर–नारायण का आश्रम, फल्गुतीर्थ, चन्द्रवटतीर्थ, कोकामुखतीर्थ, गंगासागर, मगधदेशीय तपोद् तथा गंगोद्भेद

नाम से विख्यात तीर्थ,सूकर तीर्थ, योगमार्ग, श्वेतद्वीप, ब्रम्हतीर्थ, वैकुण्ठकेदार, उत्तम् सूकरोद्भेदन तीर्थ, शपमोचनतीर्थ आदि प्रसिद्ध तीर्थो का उल्लेख किया है।[243] हरिवंश पुराण के काल में उक्त स्थान प्रसिद्ध तीर्थस्थान के रूप में विख्यात थे।

स्त्री और पुरूषो के धर्म में समानता एव भिन्नताः-

हरिवंश पुराण में स्त्री और पुरूषों के धर्म में समानता के साथ—साथ कई क्षेत्रों में भिन्नता भी दिखायी देती है। यद्यपि धार्मिक क्षेत्र में ईश्वर की आराधना पुरूष के समान ही स्त्रियों का भी अधिकार था, किन्तु उन्हे यज्ञ करने तथा वेदों को सुनने का अधिकार नहीं था। शैव-धर्म,वैष्णवधर्म, शाक्त धर्म आदि का पौराणिक स्वरूप इस समय तक प्रचलन में आ चुका था। पुराणों में स्मृतियों की अपेक्षा स्त्रियों के प्रति अधिक उदारता दिखायी गयी है। पुण्यक व्रत की समाप्ति पर सत्यभामा द्वारा श्रीकृष्ण को नारद को दान कर देना इस बात को दर्शाता है कि स्त्रियों का अपने पति के ऊपर कुछ नियंत्रण होता था और पति भी स्त्रियों को व्रत उपवास करने तथा उनके उपलक्ष में दान देने की स्वतंत्रता देते थे। हरिवंश पुराण में स्त्रियों के लिये अनेक प्रकार के व्रतों तथा दानों के देने का ब्योरा मिलता है।[244] जब कि पुरूषों के लिये इन व्रतों का विधान नहीं हैं। स्त्री एवं पुरूषों दोनों को ही तीर्थयात्रा पर जाने, वहॉ विविध प्रकार के दान देते तथा भगवद् आराधना करने की स्वतन्त्रता दिखायी देती है। इस प्रकार हरिवंश पुराण में स्त्री और पुरूषों के धर्म में समानता के लक्षण अधिक मिलते है लेकिन कुछ मामलों में स्त्री और पुरूषों के लिये भिन्न—2 धार्मिक दृष्टिकोण मिलते हैं।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. ऋग्वेद, 1.22.18:5.26.6:7.43.24:9.64.1
2. अथर्ववेद, 9.9.17
3. छान्दोग्योपनिषद, 2.23
4. तैत्तिरीयोपनिषद, 1.11
5. मनुस्मृति, 1.2
6. गौतमधर्मसूत्र, 1.1.2
7. अस्तम्ब–धर्मसूत्र, 1.1.1.2
8. मनुस्मृति, 2.6
9. याज्ञवल्क्य–स्मृति, 1.7
10. श्रीमद्भगवद्गीता, 18.66
11. वही, 4.7–8
12. विन्टरनित्ज, एम0, हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, भाग–1, कलकत्ता, 1927, पृष्ठ 460
13. हाजरा, आर0सी0, पुराणिक रिकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, ढाका, 1940 पृष्ठ 23 व 64
14. हरिवंश पुराण, 1.29.36–68
15. वही, 2.69.2–16
16. वही, 2.72.27–66
17. वही, 2.74.19–36
18. वही, 2.82.1–35
19. वही, 2.87.2–39
20. वही, 2.116.12–55
21. वही, 2.124.15–56
22. वही, 2.125.1–64

23. वही, 3.84.1—28
24. वही, 3.85.1—22,3.86.1—18,3.87.1—38,3.88.1—67,3.89.1—20,3.90.1—38
25. वही, 3.104.1—19
26. ऋग्वेद, 10.125.3
27. महाभारत, भीष्मपर्व, 30.23.4
28. वही, 23.21—24
29. वही, विराटपर्व,अध्याय, 6.
30. वही, 6.3—3
31. मार्कण्डेयपुराण, 74.1—19
32. वही, 77.1—45
33. हरिवंश पुराण, 2.3.1—32,2.4.36—45
34. वही, 2.107.6—13:2.120.6—33
35. वही, 2.107.1—13,2.120.6—33,2.4.36:45
36. वही, 1.50.8
37. वही, 1.50.29—30
38. वही, 2.2.34—55
39. फरक्यूहर, जे0एन0, एन आउटलाइन आफ द रिलीजियस लिटरेचर आफ इंडिया, आक्स फोर्ड, 1920, पृष्ठ 149—50.
40. वही, पृष्ठ 151
41. विलियम्स, एम0, हिन्दूज्म, चतुर्थ संस्करण, 1893, पृष्ठ 123
42. हरिवंश पुराण, 2.2.46—48,2.3.1
43. वही, 2.3.7—8
44. वही, 2.3.3
45. वही, 2.3.23
46. वही, 2.2.51
47. वही, 2.107.6

48. वही, 2.107.7

49. वही, 2.120.44

50. वही, 2.120.47

51. वही, 2.107.6–12:2.120.6.43–47

52. ऋग्वेद, 1.22.7

53. शतपथ ब्राम्हण, 7.5.15.

54. महाभारत, शान्तिपर्व, 43.5

55. विष्णु पुराण, 1.2.7–12

56. अष्टाध्यायी, 4.3.98

57. गीता, 10.37

58. हरिवंश पुराण, 1.51.1–33

59. वही, 1.52.14–50

60. वही, 1.55.18–48

61. वही, 2.12

62. वही, 2.20–21

63. वही, 2.26

64. वही, 2.27–30

65. वही, 2.30.89–90

66. वही, 2.46

67. वही, 2.47–60

68. वही, 2.57

69. वही, 2.64–75

70. वही, 2.88–89

71. वही, 2.91–97

72. वही, 2.104–108

73. वही, 2.116–128

74. वही, 3.74–101

75. वही, 2.102.31–35

76. वही, 1.55.40

77. वही, 1.54.13

78. वही, 3.88.36–67

79. वही, 2.127.72–84,3.88.18–20

80. वही, 2.101.55–73,2.102.140

81. वही, 2.101–102,2.110.23.88,2.115.4–23

82. वही, 3.90.17,3.90.20–21

82. वही, 3.90.17,3.90.20–21

83. रायचौधरी, हेमचन्द्र, दि अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव सेक्ट, कलकत्ता, 1920.पृष्ठ 57–58

84. हरिवंश पुराण, 2.114.9–16,2.114.18–21

85. वही, 2.6.4–23,2.21.1–23,2.13.14–23,2.24.5–66

86. विल्सन, एच0एच0, सेलेक्ट स्पेसीमेन आफ दि थियेटर आफ दि हिन्दूज, 2 भागों में, तृतीय संस्करण, लन्दन, 1871 पृष्ठ 546

87. हरिवंश पुराण, 2.26.54–59

88. वही, 3.76–77

89. वही, 1.50.3–7

90. भागवत पुराण, 1.2.1

91. हरिवंश पुराण, 2.3–4,101.11–18

92. घोष, अमलानन्द, इंडियन कल्चर, भाग 4, पृष्ठ 271–72

93. महाभारत, 2.39.135–139

94. हरिवंश पुराण, 2.3.4

95. वही, 2.107.6–13:2.120.4–33

96. वही, 2.4.46–48

97. भागवत पुराण, 10.4.8—13, विष्णुपुराण, 5.1.71—87, देवी भागवत, 4.23.32—33: ब्रम्हपुराण, 181—182

98. भागवत पुराण, 10.4.8—13: विष्णु पुराण, 5.1.71—87,3.26—29, देवी भागवत पुराण, 4. 23.32—33: ब्रम्हपुराण, 181—182

99. हरिवंश पुराण, 2.20.15

100. महाभारत, 2.22—23:हरिवंश पुराण, 2.35.92—94:2.36.1

101. हरिवंश पुराण, 2.56.35

102. वही, 2.39.21—83

103. वही, 2.40—43

104. वही, 2.43.75

105. वही, 2.43.94

106. महाभारत, 2.22—23

107. महाभारत, 2.15.35—41: हरिवंश पुराण, 2.36.37.37.4—5, ब्रम्हपुराण, 193

108. विष्णु पुराण 5.22

109. भागवत पुराण, 10.53.42, देवी भागवत पुराण, 4.24.18

110. हरिवंश पुराण, 2.64.65—70

111. वही, 2.67.68—70

112. वही, 2.72.29—66

113. वही, 2.74.22—34

114. वही, 2.76.3—26

115. वही, 2.73—75

116. वही, 2.88—89

117. वही, 2.89

118. वही, 2.89.83

119. वही, 2.88—89

120. वही, 2.90—91

121. वही, 1.41.156–160

122. वही, 2.101–102

123. विण्टरनित्स, एम0, हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, भाग 1, कलकत्ता, 1927. पृष्ठ 451

124. हरिवंश पुराण, 3.6.72

125. वही, 3.89–90

126. वही, 2.221.16

127. वही, 3.9.16

128. वही, 3.9.19

129. वही, 2.114.10

130. गीता, 9.13

131. हरिवंश पुराण, 2.114.11

132. गीता, 13.19

133. हरिवंश पुराण, 2.127.76

134. वही, 2.127.8

135. वही, 3.88.18–20

136. वही, 3.88.18'23

137 वही, 2.127.76.81–82

138. वही, 2.127.80

139. वही, 2.127.81–82

140. वही, 3.18.5–10

141. वही, 3.19.3

142. वही, 3.18.13–19

143. वही, 3.19.4

144. वही, 3.19.6–7

145. वही, 3.19.8

146. वही, 3.19.11.

147. वही,

148. वही, 3.19.7—13

149. वही, 3.19.14—16

150. वही, 3.19.17

151. वही, 3.19.26

152. वही, 3.19.28

153. वही, 3.19.34—36

154. वही, 3.19.37.38

155. वही, 3.19.41

156. वही, 3.19.43

157. वही, 3.19.45—46

158. वही, 3.19.54—55

159. वही, 3.26.27—28

160. वही, 3.26.35

161. वही, 3.26.4—5

162. वही, 3.28.28—30

163. वही, 3.28.71

164. वही, 3.77.1—20

165. देवी भागवत, 4.5

166. हरिवश पुराण, 2.113.20:2.114.9—15

167. गीता, 10.20—41

168. हरिवंश पुराण, 1.50.15.—16

169. वही, 1.57.36—37

170. वही, 3.80.59

171. वही, 3.90.27

172. वही, 3.133.83

173. गीता, 4.3–4

174. हरिवंश पुराण, 1.41.14

175. वहीं, 1.41.26–27

176. वही, 1.41.28

177. वही, 1.41.39

178. वही, 1.41.79–80

179. वही, 1.41.104

180. वही, 1.41.112

181. वही, 1.41.121

182. वही, 1.41.161

183. वही, 1.41.161–162

184. वही, 1.41.164

185. वही, 3.6.72

186. वही, 3.86–90

187. वही, 2.121.16

188. वही, 1.41.121–155

189. वही, 1.41.150–151

190. वही, 2.93.6

191. वही, 1.1.6

192. वही, 3.132.95

193. ब्रम्हवैवर्त पुराण, प्रकृति, 4.6.8.10–23,39–49,55–57:गरूण पुराण, पूर्व 24.38.39.40: स्कन्द पुराण, वैष्णवः कार्तिक मास माहात्म्य, 32

194. ब्यूलर, जर्नल आफ रायल एसियाटिक सासाइटी, लन्दन, 1898 पृष्ठ 382–283

195. हरिवंश पुराण, 3.3.15

196 वहीं, 3.3.25

197. वही, 3.4.7–8

198. वही, 3.4.9

199. वही, 3.4.24

200. वही, 3.4.31–32

201. मत्स्य पुराण, 24–47: देवी भागवत, 4.12–12:विष्णु पुराण, 3.10–18:पदमपुराण, सृष्टि 13

202. हरिवंश पुराण, 3.87.13

203. वही, 3.87.37–38

204. वही, 3.88.66

205. वही, 3.88.18–59

206. वही, 3.88.60

207. वही, 2.125.16–58

208. वही, 2.125.25 पर नीलकण्ठ की टीका

209. शतपथ ब्राम्हण, 11.5.6.1

210. काणे, पी0वी0, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–1, अनुवादक–अर्जुन चौबेकाश्यप, चतुर्थ संस्करण, लखनऊ, 1992, पृष्ठ–384

211. हरिवंश पुराण, 1.25:2.16.10:3.2.39.40:3.23:3.32:3.71

212. वही,

213. वही, 3.28.1–3

214. वही, 3.28.4

215. वही, 3.28.9–10

216. वही, 3.28.13–14

217. वही, 3.28.15–43

218. वही, 3.28.67–69

219. वही, 3.28.32–37

220. वही, 3.28.51–53

221. वही, 3.28.28—30

222. वही, 3.77.1—20

223. देवी भागवत, 4.5

224. वही, 4.1

225. हरिवंश पुराण, 2.113.20:2.114.9—15.12—13

226. वही, 2.76.5—8

227. वही, 2.79.22—72:2.80:2.81.20:44

228. वही, 3.135.7—14

229. वही, 3.80.59

230. वही, 3.90.27

231. विष्णु पुराण, 13.21—22 : भागवत पुराण, 29.11

232. हरिवंश पुराण, 2.15.3—8

233. वही, 2.17

234. वही, 2.78.19—35:2.79..1—5

235. वही, 2.79.22—72

236. मत्स्यपुराण, 112.12—15

237. वही, 108.9

238. वही, 106.21

239. वही, 192.23

240. वही, 184.8

241. वायु पुराण, 77.19:ब्रम्हाण्ड पुराण, 3.13.19

142. वही, 77.45: वही, 3.13.45—46

243. हरिवंश पुराण, 2.109.35—43

244. वही, 2.78—79

पंचम अध्याय

- क्षत्रिय राजवंश–परम्परायें
- इक्ष्वाकु वंश
- अजमीढ़ बंश
- अनेन्स का वंश
- काशी राजवंश
- उत्तर पांचाल वंश
- मगध राजवंश
- पुरु वंश–कक्षेयु वंश–अंगवंश
- वृष्णिवंश
- सात्वत वंश
- शुंग वंश
- ब्राह्मण ऐतिहासिक परम्परायें
- वसिष्ठ
- विश्वामित्र
- अत्रि
- भार्गव
- आर्यो के साथ अन्य जातियों की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परायें
- हरिवंश पुराण का ऐतिहासिक महत्व

हरिवंश पुराण में प्राप्त ऐतिहासिक राजवंश परम्परायें

पुराणों के विविध विषयों में इतिहास तत्व महत्वपूर्ण है। पुराणपंचलक्षण के अन्तर्गत वंश मन्वन्तर तथा वंशानुचरित पुराणों के ऐतिहासिक अध्ययन के लिये पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं। वंश के अन्तर्गत प्राचीन राजाओं की विस्तृत वंशावलियों है मन्वन्तर में युगों के काल का निर्धारण किया गया है। 'वंशानुचरित' में किसी राजा के जीवन से सम्बद्ध वृतान्तों का वर्णन होता है। वंशवर्णन के प्रसंग में किसी महान राजा के चरित्र का गान कभी–कभी संक्षेप में गाथाओं के द्वारा होता है। पुराणों की ये गाथायें अभिलेखों की प्रशस्तियों की भांति राजाओं के व्यक्तित्व और चरित्र का सूक्ष्म परिचय देती हैं। पुराणों के वंश मन्वन्तर वंशानुचारित तथा गाथाओं के द्वारा उनकी ऐतिहासिक प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है।

पुराणों के गम्भीर अध्ययन के द्वारा प्रामाणिक वंशवृत्तों की वास्तविकता अनेक विद्वानों के द्वारा स्वीकृति हो चुकी है। इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध विद्वान वी0एन0 स्मिथ ने अपने ग्रन्थ "The Eealy History of India" में लिखा है–

"Madern European writers have been included to disparage unduly the authority of the Puranic lists but closer study finds in them much more genuine and valuable historical tradition for instance the visns purana gives the outline of the history of the Maurya dynasty with a near apprach to accuracy and the Radcliff manuscript of the Matsya is equally trustworthy for the Andhra history" 1

पुराणों की ऐतिहासिक महत्ता का प्रतिपादन करते हुये डी0आर0 पाटिल ने अपने ग्रन्थ "Cultural History From the Vagu Purana" में लिखा हैं–"Recently Altekar in his Presidential address to the Indian History Congress 1939. has tried to show how the prebharata war history of India can be reconstructed from the evidence of the puranas and epics with the help of the vedic evidence"[2]

पुराणों के द्वारा भारतीय इतिहास के आन्ध्र, वाकाटक, भारशिव और गुप्त वंशों के इतिहास स्पष्ट हो जाता हैं। इस सन्दर्भ में के0पी0 जायसवाल का मत है–

"The Puranas are full on the Vakataka and Gupta empires the chronicles of those Periods seem to have composed in the vakataka country, wherem the Vakataka secretatriat, the details of both are available the imperial system of the Andhras is also attempted in the Puranas by recording their feudatories. The Puranas have followed a system of going back to the beginning of a dynasty from a critical point and giving an earlier history of the imperial families. This they have done in the case of the Andhras, the Vakatakas and the Nagas."[3]

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि पुराणों में इतिहास के अध्ययन के लिये बहुमूल्य सामग्री है।

इस सन्दर्भ में राजवंशों की अधिकता के कारण हरिवंश में वंशालियों का अध्ययन महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, ब्रह्म पुराण तथा कुछ अंश तक मत्स्य पुराण से तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा उन सभी पुराणों में हरिवंश के राजवंशों का स्थान निर्धारित किया जा सकता है। इस अध्याय में राजवंशो के वर्णन के साथ वंशावलियों में उपलब्ध कुछ ऐतिहासिक विशेषताओं की ओर भी संकेत किया गया है। हरिवंश के अन्तर्गत उत्तर पांचाल वंश की ऐतिहासिकता का निर्णय श्री पार्जिटर महोदय ने किया है पार्जिटर के ही शब्दों में, "The dynasty of the North Pancala, is the most important because of the important kings in this line. The Vayu, Matsya, Harivansa and Brahma based on a common original, but now form 2 verions. The Vayu and the Matsya generally agree though with variations in former having the older text. The Brahma & Harivansa largely agree, The former having the better text"[4]

पुराण–निर्माता सूत पुराणों की मूल ऐतिहासिक प्रवृत्ति के प्रबल प्रमाण हैं। पुराणों में सूतों को 'वंशशंसक' 'पौराणिक' और 'स्तावक' कहा गया है।[5] 'वंश शंसक' तथा 'पौराणिक' यह दो विशेषण वंशावलियों के संग्रह तथा उनके स्पष्ट वर्णन में सूतों के उत्तरदायित्व की ओर संकेत करते है। वायु पुराण में 'इतिहास–पुराण' के अन्तर्गत सुरक्षित देव, ऋषि तथा राजाओं के वशों का वर्णन सूतों का कर्तव्य माना गया है। यथा–

" स्वधर्म एव सूतस्य सद्भिर्दृष्टः पुरातनः।

देवतानां ऋषीणां च राज्ञां चामिततेजसाम्।।

वंशानां धारणं कार्यं श्रुतानां च महात्मनाम्।

इतिहास पुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभिः।।"[6]

वंशावलियों की सुरक्षा के उत्तर दायित्व के वल सूतों तक ही सीमित नहीं ज्ञात होता। हरिवंश के प्रारम्भ में जनमेजय सिद्ध वक्ता वैशम्पायन को 'वंशकुशल' तथा राजाओं को प्रत्यक्षवत् चित्रित करने वाले कहते है यथा–

" भवांश्च वंशकुशलस्तेषां प्रत्यक्षदर्शिवान्।

कथयस्य कुलं तेषां विस्तरेण तपोधन।।"[7]

पुराणों से ज्ञात होता है कि राजगृहों के सम्पर्क में आने वाले विद्वान ब्राम्हणों पर देवता, ऋषि तथा राजाओं के वंशों के क्रम रखने का उत्तरदायित्व था। 'प्रत्यक्षदर्शिवान्' विशेषण के द्वारा विद्वान ब्राम्हणों से सुरक्षित ऐतिहासिक परम्परा को सूतों की ऐतिहासिक परम्परा से भिन्न सिद्ध करने का प्रयत्न दिखलाई देता है। ज्ञान के द्वारा उचितानुचित में भेद स्थापित कर के शुद्ध रूप के प्रत्यक्ष प्रस्तुत करने के कारण ही सम्भवतः इनके लिये 'प्रत्यक्षदर्शिवान' शब्द का प्रयोग किया गया है।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि पुराण लक्षण के अन्तर्गत आने के कारणवंशवलियॉ लगभग सभी प्रारम्भिक पुराणों में मिलती है। पुराणलक्षण का पालन न करने वाले अर्वाचीन पुराणों में वंशावलियों का स्थान प्रायः नगण्य है। ब्रम्हवैवर्त्त पुराण, बृहन्नारदीय पुराण और बृहद्धर्म पुराण आदि इसी कोटि में आते है। पुराण पंचलक्षण का पालन करने वाले पुराणों में हरिवंश पुराण, ब्रम्हपुरण, वायु पुराण, ब्रम्हाण्ड पुराण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण तथा भागवत पुराण प्रमुख है। हरिवंश पुराण तथा ब्रम्ह पुराण की वंशावलियाँ बहुत अधिक समानता रखती है जबकि वायुपुराण तथा ब्रम्हाण्ड पुराण की वंशावली हरिवंश तथा ब्रम्हपुराण से भिन्न परम्परा को प्रस्तुत करती है। मत्स्य पुराण, वायु पुराण तथा ब्रम्हाण्ड पुराण से अनुप्राणित ज्ञात होता है। भागवत पुराण तथा विष्णु पुराण राजाओं के वंशवृत्तों का चित्रण करते हुये भी वंशवृत्तों की दृष्टि से अधिक विश्वसनीय नहीं माने जाते। वंशवालियों की तुलना करने पर विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण की वंशावलियों में काल्पनिकता का अंश अधिक दिखलाई देता है।इन दोनों ही पुराणो की वंशावलियॉ हरिवंश पुराण, ब्रम्ह पुराण, वायुपुराण तथा मत्स्य पुराण की वंशावलियों के बिगड़े पाठ

को प्रस्तुत करती है, किन्तु गुप्त राजाओं की वंशावली को प्रस्तुत करने के कारण विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण भी ऐतिहासिक दृष्टि से मान्य पुराण है।

आधुनिक विद्वान वायु पुराण तथा ब्रम्हाण्ड पुराण के सन्दर्भ में पार्जिटर की ऐतिहासिक प्रामाणिकता को स्वीकार करने में एक मत है। श्री पार्जिटर ने वायु पुराण तथा ब्रम्हाण्ड पुराण की वंशावलियों को प्रामाणिक–तम स्त्रोत माना है। पार्जिटर महोदय के ही शब्दों में–

This account of the origin of the Puranas is supported by copious direct allusions to ancient tradition in the Puranas. These might be cited from many Puranas, but will be taken here chiefly from the Vayu & Brahmanda, which have the oldest version in such traditional matters."[8]

जबकि श्री जायसवाल ने पंचलक्षणों का पालन करने वाले पुराणों की ऐतिहासिक उपादेयता की ओर संकेत करते हुये उनमें वाकाटक तथा भारशिव राजपरम्परा के अध्ययन के लिये नवीन सामग्री दिखलाई है।[9] पंच लक्षणों का पालन करने वाले पुराणों में हरिवंश पुराण, ब्रम्ह-पुराण, मत्स्य पुराण, विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण भी आते है। किन्तु जायसवाल महोदय का संकेत यहॉ पर वायु पुराण की ऐतिहासिक सामग्री के लिये है। पुराणों की इस ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में भारशिव, वाकाटक तथा अन्य राजाओं का इतिहास अन्धकार मय ही रहता। वायु पुराण तथा ब्रम्हाण्ड पुराण की परम्परा के बाद दूसरी प्रामाणिक ऐतिहासिक परम्परा हरिवंश तथा ब्रम्हपुराण की मानी गयी है।[10] इस श्रेणी में ब्रम्हपुराण हरिवंश पुराण का अनुकरण करता हुआ दिखलाई देता है। इसका कारण यह है कि दोनों पुराणों की वंशावलियों की तुलना करने पर ज्ञात होता है, कि ब्रम्हपुराण जहॉ पर अशुद्ध अथवा भ्रान्त मत प्रस्तुत करता है।, वहॉ पर हरिवंश शुद्ध तथा निश्चित परम्परा पोषक का दिखलाई देता है। सम्भवतः इसी कारण पार्जिटर ने अन्य अनेक पुराणों से तथा ब्रम्हा पुराण से हरिवंश में दिये गये राजवंशों को अधिक प्रमाणिक माना है। पार्जिटर महोदय के ही शब्दों में –

" The Harivams text is better than the Brahma, for the latter has suffered through losses ; thus it is manifestly in complete. in the Northe Pancala genealogy and most copies of it omit the cedi, magadha dynasty descended from Kuru"[11]

पुराणों की ऐतिहासिक सामग्री के क्षेत्र में श्री किरफेल का अध्ययन अन्य

महत्वपूर्ण विषय है। उन्होंने हरिवंश तथा ब्रम्ह पुराण को ऐतिहासिक सामग्री के दृष्टिकोण से सर्वोच्च स्थान दिया है। उन्होने पुराणों की प्रारम्भिकता तथा अर्वाचीनता के अनुसार उनकी तीन श्रेणियॉ निर्धारित की है। ब्रम्हपुराण तथा हरिवंश पुराण इस प्रकार के पुराणों की प्रंथम श्रेणी में आते है। वायुपुराण तथा ब्रम्हाण्ड पुराण दूसरी श्रेणी के पुराण है तथा मत्स्य पुराण तीसरी श्रेणी में आता है।इन तीनों श्रेणियों में ब्रम्हपुराण, हरिवंश पुराण को किरफेल महोदय प्राचीनतम् निश्चित करते है।[12] किरफेल महोदय का यह कथन ब्रम्हपुराण–हरिवंश पुराण को वायु पुराण–ब्रम्हाण्ड पुराण के पाठ से निम्न सूचित करने वाले पार्जिटर के कथन का विरोध करता है। यह कथन हरिवंश तथा ब्रम्हपुराण के विषय में प्रामणिक विचारों को प्रस्तुत करने के कारण पार्जिटर के कथन से अधिक विश्वसनीय ज्ञात होता है।

क्षत्रिय राजवंश-परम्परायें-

हरिवंश के प्रारम्भ से लेकर हरिवंश पर्व के उनतालीस अध्याय तक मन्वन्तरों तथा वंशो का वर्णन है।मन्वन्तर तथा वंशों के बीच विश्लेषणात्मक वृतान्तों के रूप में श्राद्धकल्प तथा राजाओं के चरित्रों वृतान्त आ जाते है। श्राद्ध कल्प और राजाओं के चरित्र चित्रण के कारण राजवंश के वर्णन का क्रम टूट जाता है, किन्तु 'वंशानुचरित' शब्दार्थ के अनुसार वंशवर्णन के बीच में किसी राजा के चरित्र का वर्णन स्वाभाविक है।

हरिवंश में राजवंशों का वर्णन अन्य पुराणों के वंशवर्णन से भिन्न है। हरिवंश की वंशावली जनमेजय के बाद समाप्त हो जाती है। हरिवंश के वंशक्रम में राजाओं के राज्यकाल का उल्लेख नहीं है। हरिवंश के वंशवर्णन की ये विशेषतायें इस पुराण की ऐतिहासिक सामग्री में नवीन तत्वों का समावेश करती है। हरिवंश के इस स्थल में जनमेजय के बाद के केवल तीसरी पीढ़ी के राजा अजपार्श्व से यह वंश समाप्त हो जाता है,[13] किन्तु ब्रम्हपुराण, वायुपुराण, मत्स्य पुराण तथा विष्णु पुराण, हरिवंश से भिन्न जनमेजय के बाद के राजाओं की एक लम्बी सूची देते है।[14] यहॉ पर हरिवंश अन्य पुराणों की प्रवृत्ति से भिन्न होने के कारण इन पुराणों से पूर्ववर्ती ज्ञात होता है। हरिवंश में देवता तथा पितरों के वंशक्रम का वर्णन भी मिलता है। पितरों और देवताओं के वंशक्रम को श्री पार्जिटर ने पूर्ण काल्पनिक माना हैं।[15] अतः ऐतिहासिक दृष्टि से इन वंशावलियों का मूल्य कम है। हरिवंश में मिलने वाले क्षत्रिय राजवंश–परम्पराओं का विवरण निम्नवत है।

इक्ष्वाकु वंश-

पुराण में सूर्यवंश तथा सोमवंश आदि पुरूष मनु वैवस्वत् से प्रारम्भ होते है। मनु के पुत्रों से सूर्यवंश तथा इला से सोमवंश की उत्पत्ति बतलाई गयी है। हरिवंश मनु के नौ पुत्रों का नामोल्लेख करता है। इन नौ पुत्रों के नाम क्रमशः इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्णु, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभागरिष्ट, करूष और पृषघ्र हैं।[16] इक्ष्वाकु वंश का वर्णन अनेक पुराणों की भाँति हरिवंश में भी विस्तृत रूप में मिलता है।[17] हरिवंश पुराण में इक्ष्वाकु वंश की वंशावली का क्रम निम्नवत् मिलता है–

1. इक्ष्वाकु
2. विकुक्षि (शशांद)
3. ककुत्स्थ
4. अनेना
5. पृथु
6. जिष्टराष्व
7. आर्द्र
8. युवनाश्व
9. श्राव
10. श्रावस्तक
11. बृहदश्व
12. कुवलाश्व
13. दृढ़ाश्व
14. हर्यश्व
15. निकुम्भ
16. संहताश्व
17. अकृशाश्व
18. प्रसेनजित् (संहताश्व की कन्या हेमवती का पुत्र)
19. युवनाश्व
20. मान्धाता
21. पुरूकुत्स
22. त्रसद्दस्यु
23. संभूत
24. सुघन्वा
25. त्रिघन्वा
26. त्रमारूण
27. त्रिशंकु
28. हरिश्चन्द्र
29. रोहित
30. हरित
31. चंचु
32. विजय
33. रूरूक
34. वृक
35. बाहु
36. सगर
37. असमंजस (पंचजन)
38. अंशुमान
39. दिलीप (खट्वांग)
40. भगीरथ
41. श्रुत
42. नाभाग
43. अम्बरीष
44. सिन्धुद्वीप
45. आयुताजित
46. ऋतुपर्ण
47. अतिपर्णि
48. सुदास
49. सौदास–मित्रसह (कल्माषपाद)
50. सर्वकर्मा
51. अनरण्य
52. निघ्न
53. अनमित्र
54. दुलिदुह
55. दिलीप
56. रघु
57. अज
58. दशरथ
59. राम
60. कुश
61. अतिथि

62. निषध
|
63. नल
|
64. नभ
|
65. पुण्डरीक
|
66. क्षेमधन्वा

67. देवानीक
|
68. अहीनगु
|
69. सुधन्वा
|
70. अनल
|
71. उक्थ

72. वज्रनाभ
|
73.शंख (घ्युषिताश्व)
|
74. पुष्प
|
75. अर्थसिद्धि
|
76. सुदर्शन

77. अग्निवर्ण
|
78. शीघ्र
|
79. मरु
|
80. बृहद्रबल''[18]

हरिवंश तथा भागवत पुराण में इक्ष्वाकुवंश की समाप्ति बृहद्बल के नामोल्लेख के बाद होती है।[19] मत्स्यपुराण में इक्ष्वाकुवंश का अन्तिम राजा श्रुतायु है।[20] बृहद्बल, श्रुतायु के बहुत बाद का राजा ज्ञात होता है। कुश के बाद राजाओं की नाम गणना करने पर बृहद्बल इक्कीसवॉ राजा प्रतीत होता है। श्रुतायु की संख्या कुश के बाद चौदहवीं है। अतः मत्स्य पुराण में इक्ष्वाकुवंश का क्रम हरिवंश के इसी वंश क्रम से बहुत पूर्व समाप्त हो जाता है। श्रुतायु का उल्लेख महाभारत–युद्ध में पराजित राजा के रूप में हुआ है।[21]

अतः श्रुतायु को महाभारत युद्ध का समकालीन मानना चाहिये।हरिवंश में इक्ष्वाकुंवशी अन्तिम राजा बृहद्बल श्रुतायु से परवर्ती होने के कारण महाभारत युद्ध के बहुत बाद का राजा ज्ञात होता है।

हरिवंश, मत्स्य, वायु, विष्णु, देवीभागवत तथा भागवत पुराण के इक्ष्वाकुवंश के राजाओं के नामों तथा वंशक्रमों में भेद स्पष्ट है। हरिवंश तथा मत्स्य पुराण के इक्ष्वाकु वंश क्रम में अहीनगु नामक राजा का उल्लेख हुआ है। अहीनगु से अज तक की वंशावली हरिवंश तथा मत्स्य पुराण में पूर्ण समानता रखती है। दोनों पुराणों में समानता रखने के कारण अज से अहीनगु तक का वंशक्रम विश्वसनीय प्रतीत होता है। अहीनगु के बाद मत्स्य पुराण के राजाओं का वंशक्रम हरिवंश से पूर्णतः भिन्न हो जाता है। अतः यहॉ पर इन दोनों पुराणों में अहीनगु के बाद उल्लिखित राजाओं की प्रामाणिकता के विषय में सन्देह होने लगता है।

विष्णु पुराण के अन्तर्गत भविष्यकालीन इक्ष्वाकुवंशी राजाओं में बृहद्बल नामक राजा का उल्लेख है।[22] विष्णुपुराण का यह बृहद्बल हरिवंश और भागवत पुराण का इक्ष्वाकुवंशी अन्तिम राजा बृहद्बल ज्ञात होता है। संभवतः हरिवंश और भागवत में वृहद्बल पर समाप्त हुयी वंशावली को विष्णु पुराण ने भविष्यकालीन इक्ष्वाकु वंश परम्परा का प्रारम्भिक राजा माना है। विष्णुपुराण ने भावी प्रारम्भिक राजा के रूप में वृहदबल की गणना होने पर वृहदबल का महाभारत

के बहुत बाद में होना निश्चित हो जाता है। अतः हरिवंश और भागवत पुराण में उल्लिखित बृहद्बल का इक्ष्वाकुवंशी अन्तिम् राजा के रूप में उल्लेख तथ्यपूर्ण है।

बृहद्बल का उल्लेख महाभारत के आदिपर्व में है।[23] किन्तु यहॉ पर बृहद्बल को इक्ष्वाकु, राम तथा भगीरथ का पूर्ववर्त्ती कहा गया है। इक्ष्वाकुं और राम पूर्वज के रूप में बृहद्बल का उल्लेख किसी भी पुराण में नहीं मिलता हरिवंश तथा विष्णु पुराण के प्रमाणों के द्वारा बृहद्बल को भूतकालीन इक्ष्वाकुवंशी राजाओं में अन्तिम मानना निश्चित हो जाता है। अतः बृहद्बल को इक्ष्वाकु का पूर्ववर्त्ती बताने वाली महाभारत की वंशावली प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती।

मनुवैवस्वत् के पुत्र इक्ष्वाकु इस वंश के प्रारम्भिक राजा माने जा सकते हैं।इक्ष्वाकु के पूर्व बृहद्बल नामक किसी राजा की स्थिति असम्भव है। अतः महाभारत के इस स्थल में बृहद्बल के साथ अन्य राजा निस्सन्देह इक्ष्वाकु से परवर्ती राजा है, पूर्ववर्ती नहीं। अतः प्राचीन राजाओं की सूची में उल्लिखित बृहद्रबल नामक राजा भूतकालीन इक्ष्वाकुवंशी अन्तिम राजा है।

महाभारत के आदि पर्व में इस काल के राजाओं की सूची के अन्तर्गत श्रुतायु नामक राजा का उल्लेख है। श्रुतायु कौरवपक्ष के अन्तर्गत रखा गया है। मत्स्यपुराण के इक्ष्वाकुवंश–क्रम में महाभारत युद्ध में पराजित होने वाले अन्तिम राजा के रूप में श्रुतायु की उपस्थिति यक्तिसंगत् ज्ञात होती है। इस आधार पर मत्स्य पुराण के श्रुतायु तथा हरिवंश के बृहद्रबल का इक्ष्वाकुवंशक्रम में परस्पर सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है। हरिवंश में श्रुतायु के नाम की उपेक्षा कदाचित् श्रुतायु के महाभारत युद्ध में हार जाने के कारण तथा कौरवपक्ष की और से युद्ध करने के कारण की गयी है।

अजमीढ़-वंश :-

हरिवंश का द्वितीय महत्वपूर्ण राजवंश अजमीढ़ का है यह राजवंश वृहत्क्षत्र नामक राजा से प्रारम्भ होता है। बृहत्क्षत्र के पूर्व के राजाओं के विषय में हरिवंश मौन है, किन्तु अन्य पुराण सम्मिलित रूप सें बृहतक्षत्र के पूर्वजों पर प्रकाश डालते है। वायु पुराण, मत्स्य पुराण तथा भागवत पुराण में वितथ नामक भरतवंशी राजा से वंश का प्रारम्भ माना गया है। वितथ के अनेक पुत्रों में बृहत्क्षत्र इस वंश का प्रारम्भिक राजा है।[24] विभ्राज के पुत्र अणुह नामक राजा का उल्लेख हरिवंश तथा वायुपुराण के वंशक्रम में हुआ है।[25] यही नाम महाभारत के प्राचीन राजाओं की सूची में मिलता है।[26]

अतः अणुह इस वंश का एक प्राचीन राजा ज्ञात होता है।

हरिवंश तथा वायुपुराण की वंशावली में ब्रम्हदत्त को अणुह का पुत्र माना गया है।[27] हरिवंश में ब्रम्हदत्त को राजर्षि कहा गया है यथा–

"ब्रम्हदत्तों महाभागो योगी राजर्षिसत्तमः।"[28]

ब्रम्हदत्त का नाम प्राचीन राजा के रूप में अनेक ग्रन्थों में मिलता है। पुराणों के अतिरिक्त जातकों में भी काशी के राजा के रूप में ब्रम्हदत्त का उल्लेख है लेकिन जातकों के ब्रम्हदत्त को पुराणों में अजमीढ़ के वंश का ब्रम्हदत्त नहीं माना जा सकता। जातकों के ब्रम्हदत्त की राजधानी बनारस है।[29] जब कि हरिवंश तथा पुराणों के अजमीढ़वंशी ब्रम्हदत्त की राजधानी काम्पिल्य है।[30] कम्पिल्य नगर दक्षिणी पांचाल की राजधानी मानी गयी है।

चम्पेय जातक अंग देश के राजा के रूप में अन्य ब्रम्हदत्त को प्रस्तुत करता है। यहॉ पर अंगदेश के राजा ब्रम्हदत्त के द्वारा मगध के तत्कालीन किसी राजा को पराजित करने का उल्लेख है।[31] यह ब्रम्हदत्त अंगदेश का स्वामी होने के कारण तथा तत्कालीन मगधराज को पराजित करने के कारण वाराणसी के राजा बम्हदत्त से अधिक परक्रमी ज्ञात होता है किन्तु इतिहास मगधवंशी बिम्बिसार के द्वारा अंगदेश के स्वामी ब्रम्हदत्त को मारकर चम्पा को लेने का उल्लेख करता है।[32]

मगधवंशी बिम्बिसार से भारत का सुव्यवस्थित इतिहास प्रारम्भ होता है। बिम्बिसार के द्वारा अंगराज ब्रम्हदत्त को मारने का उल्लेख ब्रम्हदत्त औरबिम्बिसार की समसामयिकता की सूचना देता है। बिम्बिसार को भारतीय इतिहास का प्रसिद्ध राजा मानने पर अंगराज ब्रम्हदत्त को भी भारत के सुव्यवस्थित इतिहास का प्रारम्भिक राजा मानना उचित होगा। बिम्बिसार के समकालीन होने के कारण यह ब्रम्हदत्त हरिवंश में वर्णित भीष्म के पितामह प्रतीप के समकालीन ब्रम्हदत्त से बहुत अर्वाचीन और भिन्न व्यक्ति ज्ञात होता है।

हरिवंश में अजमीढ़ के वंश का अन्त भल्लाट के पुत्र दुर्बुद्धि नामक राजा के काल में हुआ।[33] इस दुर्बुद्धि का अन्त उग्रायुध नामक राजा ने किया। हरिवंश इस वृतान्त में एक नीवन बात जोड़ता है। अजमीढ़वंशी अन्तिम राजा को मारने वाले उग्रयुध के हन्ता यहॉ पर भीष्म बतलाये गये हैं।[34] हरिवंश के इस नवीन वृतान्त की प्रामाणिकता का निश्चय एक विवादास्पद विषय है।

हरिवंश के अन्तर्गत उग्रायुध के वंशवर्णन में उग्रायुध को शन्तनु का समकालीन माना गया है।[35] ऐसी स्थिति में शन्तनु के समकालीन उग्रायुध का भीष्म के द्वारा मारा जाना सम्भव है। महाभारत में अणुह को प्राचीन राजा माना गया है।[36] हरिवंश में अणुह के पुत्र ब्रम्हदत्त को भीष्म के पितामह प्रतीप का समकालीन कहा गया है।[37]

ब्रम्हदत्त से दुर्बुद्धि नामक राजा के बीच विष्वकसेन, दण्डसेन् तथा भल्लाट् नामक तीन राजाओं का उल्लेख है। अतः दुर्बुद्धि ब्रम्हदत्त के बाद चौथा राजा है। प्रतीप तथा भीष्म के बीच केवल एक राजा शन्तनु का उल्लेख है। इस आधार पर प्रतीप, शन्तनु तथा भीष्म के सुदीर्घ राज्यकाल का ज्ञान होता है। अतः ऐसी स्थिति में भीष्म की उग्रायुघ से समकालीनता तथ्यपूर्ण प्रतीत होती है।

हरिवंश में अजमीढ वंश के राजाओं का क्रम निम्नवत् मिलता है।[38]–

1. बृहत्क्षत्र
2. सुहोत्र
3. हस्ती (हस्तिनापुर बसाया)
4. अजमी ढ़ (धूमिनी)
5. बृहदिषु
6. बृहद्धनु
7. बृहद्र धर्म
8. सत्यजित
9. विश्वजित्
10. सेनजित्
11. रूचिर
12. पृथुसेन
13. पार
14. नीप
15. शतसंख्यकपुत्र
16. समर
17. पार
18. सुकृत
19. विभ्राज
20. अणुह
21. ब्रम्हदत्त
22. विष्वक्रसेन्
23. दण्डसेन्
24. भल्लाट्
25. दुर्बुद्धि

सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ0 भण्डारकर ने जातकों में वर्णित काशी के राजाओं की पुराणों के राजाओं से एकता सिद्ध की है। उनके अनुसार जातकों से विससेन, उदय तथा भल्लाटीय पुराणों के विष्वक्रसेन, उदक्सेन और भल्लाट् से सम्बन्ध रखते है।[39] श्री राय चौधरी ने जातकों के काशी के राजाओं को सोलह महाजनपदों के अन्तर्गत काशी जनपद के शासक माना हे।राय चौधरी काशी जनपद को प्राचीन भारत के शक्तिशाली जनपदों में प्रमुख मानते है।[40] जातकों में काशी राजवंश का पुराणों के विष्वकसेन और भल्लाट् आदि राजाओं से साम्य हरिवंश

के अन्तर्गत अजमीढवंश के विषय में नवीन सामग्री प्रस्तुत करता है।

जातक काशी के राजा ब्रम्हदत्त से परिचित है। ब्रम्हदत्त के वंशज होने के कारण विष्वक्रसेन, दण्डसेन (उदकसेन) तथा भल्लाट् को भी काशी जनपद के राजा माना गया है। जातकों के द्वारा ब्रम्हदत्त तथा उनके तीन वंशजों को काशी का राजपद देने की यह प्रेरणा हरिवंश तथा अन्य पुराणों से ली गयी ज्ञात होती है। किन्तु जातक यहॉ पर पुराणों में कम्पिल्य के राजा ब्रम्हदत्त तथा काशी के राजा ब्रम्हदत्त को अलग–अलग न मानकर एक ही मानते हैं। ब्रम्हदत्त के बाद के तीन राजा विष्वकसेन, उदक्सेन तथा भल्लाट् पुराणों तथा जातकों में पूर्ण समानता रखने के कारण तीन ऐतिहासिक राजा ज्ञात होते है।

अनेनस् का वंश :-

हरिवंश के अर्न्तगत अनेनस् का राजवंश अन्य पुराणों से विशेषता रखता है। इस वंश का अन्तिम राजा क्षत्रधर्मा है।[41] हरिवंश में अनेनस् का राजवंश विष्णु पुराण और भागवत पुराण के अन्तर्गत आयु के अन्य पुत्र क्षत्रवृद्ध के वंश में संक्रान्त दिखलाई देता है।[42] जबकि ब्रम्हाण्ड पुराण के अन्तर्गत यह राजवंश हरिवंश की भॉति अनेनस् का वंश माना गया है, किन्तु ब्रम्हाण्ड पुराण का अनेनस वंश हरिवंश से भिन्न अशुद्ध परम्पराओं का वंश पोषण करता है।[43] यह वंश ब्रम्ह पुराण में भी अनेनस् का वंश माना गया है तथा हरिवंश में अनेनस् के वंशक्रम से बहुत कुछ समानता रखता है।[44]

हरिवंश पुराण में अनेनस्–वंश की वंशावली का क्रम निम्नवत् मिलता है।[45]–

अनेनस् राजवंश की विभिन्न पुराणों से वंशावली की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि पुराणों में अनेनस् और क्षत्रवृद्ध के नाम पर दो वंशपरम्परायें चल पड़ी थी। अनेनस् की वंशपरम्परा का प्रामाणिक रूप हरिवंश में मिलता है। ब्रम्हपुराण तथा ब्रम्हाण्ड पुराण ने हरिवंश में प्रस्तुत की गयी इस वंशपरम्परा का अनुकरण मात्र किया है। क्षत्रवृद्ध की वंशावली का मूलरूप

विष्णुपुराण में मिलता है। भागवत पुराण ने भी इसी वंशक्रमका अनुकरण किया हैं। पूर्वोक्त पुराणों के वंशक्रम में हरिवंश के वंशक्रम की स्पष्टता इस पुराण के वंशों के शुद्धपाठ की परिचायक है।

काशी राजवंश :-

आयु के पुत्र क्षेत्र वृद्ध को हरिवंश में वृद्धशर्मा कहा गया है। वृद्ध शर्मा का वंश विस्तृत है। वृद्धशर्मा के पुत्र सुनहोत्र से तीन शाखायें निकलती है। दो वंशो की शाखाओं को छोड़कर प्रथम पुत्र काश का वंश इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। काश से दीर्घ—तपस, उससे धन्व तथा धन्व से धन्वन्तरी की उत्पत्ति बतलायी गयी है। धन्वन्तरि पूर्वजन्म में समुद्र से उत्पन्न बतलाये गये हैं। धन्व नामक वृद्धशर्मा के वंशज राजा के तप के फलस्वरूप यह पुनः धन्व न्तरि के पुत्र के रूप में पृथ्वी के रूप में अवतरित माने गये हैं।[46] धन्वन्तरि के पुत्र तुमान् से भीमरथ तथा भीमरथ से दिवोदास की उत्पत्ति बतलायी गयी है।[47] दिवोदास इस वंश का प्रतापी राजा है।

दिवोदास को वाराणसी का राजा कहा गया है। वाराणसी कायह राज्य दिवोदास ने भद्रश्रेष्य को पराजित करके लिया था। दिवोदास शत्रु को पराजित कर प्राप्त इस राज्य का उपभोग सुदीर्घकाल तक नहीं कर सका। उसके राज्य काल में निकुम्भ नामक दैत्य के शाप से वाराणसी के जनशून्य होने के उल्लेख है।[48] अतः प्रतापी राजा दिवोदास को अपने वैभव से हाथ धोना पडा।

दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन से हरिवंश की सुव्यवस्थित वंश परम्परा चलती है। यह वंश पुराणों में काशी राजवंश के नाम से प्रसिद्ध है। काशी राजवंश हरिवंश में स्वतन्त्र ऐतिहासिक महत्व रखता है। प्रतर्दन के दो पुत्रों से दो शाखायें प्रस्फूटित होती है। प्रथम पुत्र वत्स से वत्स—राजवंश का सूत्रपात होता है। प्रतर्दन के द्वितीय पुत्र भार्ग से इस वंश की दूसरी शाखा प्रारम्भ होती है। वत्सवंश के अन्तिम राजा का नाम भर्ग दिया गया है।[49]

पालिग्रन्थों में उल्लिखित भग्ग (भर्ग) का मूलरूप हरिवंश में वर्णित भर्ग तथा भार्ग में देखा जा सकता है। भग्ग जाति एक अत्यन्त शक्तिशाली और संगठित जाति थी। भग्गों की राजधानी सुमसुमार गिरि मानी गयी है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार एन0एन0घोष के शब्दों में—

"Jataka No. 353 describes the Bhagga of Sumsumara giri as a dependency of Vansa,"[50]

इतिहासकारों ने सुमसुमार गिरि की स्थिति मिर्जापुर के समीपवर्ती प्रदेश में बतलायी है।[51] हरिवंश में वर्णित 'भर्ग' शब्द अनेक प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। भर्गों का उल्लेख पाणिनि की अण्टाध्यायी में है।[52] चूकिंःपाणिनि के काल को विद्वानों के क्रमशः चौथी शताब्दी ई0पू0 और सातवीं शताब्दी ई0पू0 माना है।[53] अतः भर्ग जाति सातवीं शताब्दी ई0पू0 से भी प्राचीन काल में पूर्ण शक्तिशाली और विख्यात हो गयी ज्ञात होती है।

ऐतरेय ब्राम्हण भर्ग जाति से परिचय की सूचना देता है।[54]

ब्राम्हणों के काल के काल को सुप्रसिद्ध विद्वान विण्टर नित्स ने वैदिक ऋचाओं तथा बौद्धधर्म के बीच का लम्बा समय माना है।[55] ऐतरेय ब्राम्हण में भर्ग जाति का उल्लेख इस जाति को अत्यन्त प्राचीन सिद्ध करता है।

काशी राजवंश हरिवंश को छोड़कर अन्य पुराणों में स्पष्ट रूप में नहीं मिलता। विष्णु पुराण में काशी राजवंश के अन्तर्गत वीतिहोत्र के पुत्र भार्ग और भार्ग के पुत्र भार्गभूमि का उल्लेख है। भार्गभूमि हरिवंश के अन्तर्गत भृगभूमि का विकृत रूप ज्ञात होता है। विष्णु पुराण में दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन को वत्स नाम दिया गया है। दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन का वत्सनाम विष्णु पुराण के भ्रान्त पाठ का अन्य प्रमाण है।[56] इसी प्रकार ब्रम्हाण्ड पुराण में प्रतर्दन के द्वितीय पुत्र भर्ग को गर्ग कहा गया है। जो गलत है। प्रतर्दन से वत्स की शाखा के अन्तिम राजा का नाम गार्ग्य दिया गया है।[57] अतः ब्रम्हाण्ड पुराण में वर्णित काशी राजवंश क्षेत्रोपेत भार्गवों में भर्ग तथ भार्ग राजाओं के ऐतिहासिक विषय को छोड़ देता है। वायु पुराण में भी काशी राजवंश ब्रम्हाण्ड पुराण से पूर्ण समानता रखता है।[58] सम्भवतः वायु पुराण को ही ब्रम्हाण्ड पुराण ने इस राजवंश का आधार माना है।

हरिवंश में वर्णित भर्ग जाति का महत्व केवल इसकी मौलिक तथा भर्ग जाति सम्बन्धी विस्तृत सामग्री के लिये ही नहीं है, वरन् भर्ग जाति के विषय में विशेष सामग्री के लिये भी है। अन्य पुराणों की अपेक्षा हरिवंश में भर्ग और वत्स राजओं की सुव्यवस्थित वंशावली यह स्पष्ट करती है।[59] भर्गों पर बहुमूल्य प्रकाश डालने के कारण हरिवंश के इस राजवंश का ऐतिहासिक महत्व स्वीकार करना पडता है।

काशी राजवंश में वत्स का पुत्र अलर्क एक अन्य प्रतापी राजा है। अलर्क को वाराणसी को ग्रस्त करने वाले क्षेमक राक्षस का मारने वाला बतलाया गया है। अपने पितामह दिवोदास के द्वारा अधिष्ठित वाराणसी के उद्धार का श्रेय भी अलर्क को ही है। इसी राजवंश में

सुकुमार के पुत्र धृष्ट केतु से महाभारत युद्ध के लिये रणस्थल में उपस्थित गीता के धृष्टकेतु का बोध होता है। यथा–

"धृष्टकेतुश्चे कितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।"[60]

गीता और महाभारत में उद्धत यह धृष्टकेतु हरिवंश के आधार पर काशी राजवंश के अन्तिम् राजाओं में गिना जाता है। हरिवंश पुराण में काशी राजवंश का क्रम निम्नवत् है।[61]–
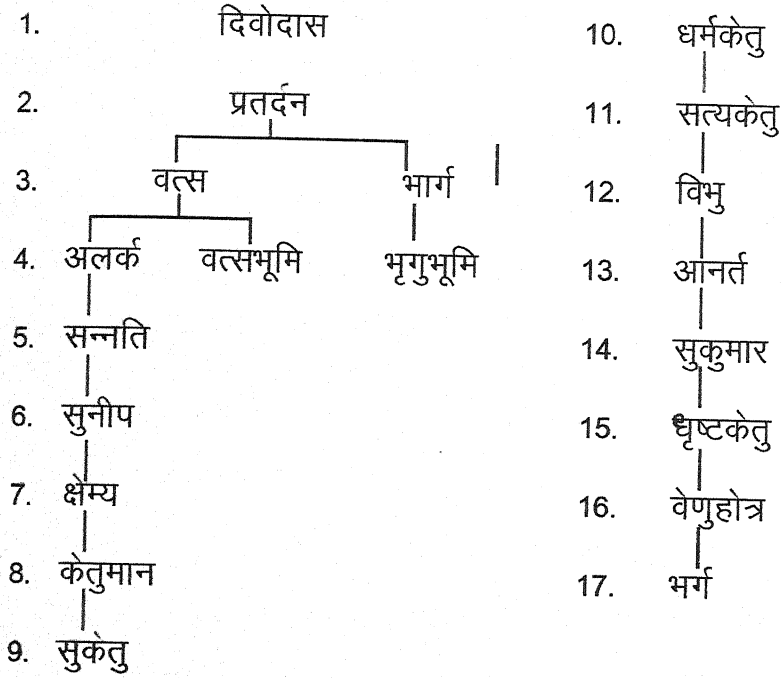
उत्तर-पांचाल वंश :-

हरिवंश के अन्तर्गत उत्तर पांचाल वंश ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सुप्रसिद्ध विद्वान पार्जिटर ने इस वंश की ऐतिहासिकता वेद तथा ब्राम्हणों के आधार पर सिद्ध की है। इस वंश के मुद्रगल, मोद्रगल्य, दिवोदास, पंचजन, सोमक और संवरण की उन्होने इन्ही नाम के वैदिक पात्रों से समानता स्थापित की है। उत्तर पांचालवंश के वंशक्रम की सूची भी पार्जिटर ने प्रस्तुत की है। पार्जिटर महोदय के इस नवीन अनुसन्धान के अनुसार पुराणों के उत्तर पांचाल वंश की प्राचीनता तथा ऐतिहासिक उपादेयता प्रमाणित हो जाती है। पार्जिटर ने विविध पुराणों के उत्तर–पांचाल राजवंश की तुलना के बाद हरिवंश के इस राजवंश की मौलिकता सिद्ध की है।[62]

मगध राजवंश :-

उत्तर–पांचाल राजवंश प्राचीन तथा ऐतिहासिक ही नहीं है, वरन् उसका अन्तिम् भाग सुव्यवस्थित भारतीय इतिहास की रूप रेखा प्रस्तुत करता है। अजमीढ की धूमिनी नामक रानी के पूत्र ऋक्ष से यह वंश चलता है। ऋष के पुत्र से संवरण तथा संवरण से कुरू नामक राजा के नाम पर कुरूक्षेत्र का उल्लेख हुआ है।[63] कुरू के बाद चौथा राजा चेद्रयो परिचर वसु ऐतिहासिक महत्व रखता है। चैद्रयोपरिचर वसु के वंशजों को 'वासव' राजा कहा गया है। चैद्योपरिचर वसु के छः पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र बृहद्रथ से मगध का राजवंश प्रारम्भ होता है। हरिवंश में बृहद्रथ को मगधराट् कहा गया है। यथा–

"महारथों मगधराट् विश्रुतो यो बृहद्रथः।"[64]

जरासन्ध बृहद्रथ के बाद छठा राजा है। हरिवंश में जरासन्ध एक महत्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मगधवंश के अन्तर्गत उसके नामोल्लेख के अतिरिक्त विष्णुपर्व में कृष्ण चरित्र के अन्तर्गत् जरासन्ध को कृष्ण के परम शत्रु के रूप में चित्रित किया गया है। जरासन्ध के सतत् आक्रमणों सें आतंकित होकर कृष्ण तथा बलराम को मथुरा छोड़कर द्वारवती में बसते हुये कहा गया है, यथा–

"जरासन्धभयाच्चैव पुरीं द्वारवतीं ययौ।"[65]

हरिवंश तथा अन्य पुराणों में कृष्ण के साथ जरासन्ध का उल्लेख कृष्ण से जरासन्ध की समकालीनता को सूचित करता है। कृष्ण का जीवन काल महाभारत युद्ध का काल है। अतः जरासन्ध महाभारत युद्ध के काल में जीवित रहा होगा। महाभारत के अन्तर्गत महाभारत–युद्ध–कालीन राजाओं की सूची में जरासन्ध का नाम सर्वप्रथम हैं।[66] जरासन्ध के महाभारत–कालीन होने के कारण मगध वंशी राजा बृहद्रथ का काल महाभारत युद्ध के बहुत पहले का मानना पडेगा।

सुप्रसिद्ध विद्वान पार्जिटर ने बार्हद्रथ राजवंश से भारतीय सुव्यवस्थित इतिहास का प्रारम्भ माना है। पार्जिटर महोदय के ही शब्दों में–

"With the Barhadratha dynasty Magadha for the first time takes a real part in the history of India"[67]

हरिवंश के आधार पर पार्जिटर महोदय ने बृहद्रथ को मगधराज्य में गिरिव्रज नामक राजधानी का स्थापित करने का श्रेय दिया है।[68] श्री पार्जिटर का यह सुझाव ऐतिहासिक

क्षेत्र में हरिवंश के अन्तर्गत इस बार्हद्रथ राजवंश के महत्व को स्थापित करता है। हरिवंश के अन्तर्गत मगध राजवंश में जरासन्ध से सहदेव तथा सहदेव से उदायु का उल्लेख है। बृहद्रथ राजवंश के प्रारम्भिक दो राजा जरासन्ध तथा सहदेव ने महाभारत युद्ध में भाग लिया। जरासन्ध कौरवों की ओर से तथा सहदेव पाण्डवों की ओर से लड़ा। इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध इतिहासकार ए0डी0 पुसालकर का कथन है–

" Jarasandha, the first great emperor of Magadha before that war. was succeeded by his son Sahadeva, Who be come an ally of the pandavas. and was killed in the war."[69]

इस आधार पर जरासन्ध तथा सहदेव को महाभारत–युद्ध तथा कृष्ण का समकालीन मान सकते है। सहदेव के महाभारत–युद्ध कालीन होने पर उसके पुत्र उदायु को महाभारत युद्ध के कुछ वर्ष बाद तथा श्रुतधर्मा को महाभारत युद्ध से पचास से सौ वर्ष के बीच के लगभग बाद का माना जा सकता है।

हरिवंश में कृष्ण–वृतान्त के साथ वर्णित जरासन्ध और कृष्ण के बैर में ऐतिहासिक तथ्य मिलता है। बार्हद्रथ राजाओं की राज्य सीमा मगध मानी गयी है। हरिवंश में जरासंध और कंस का निकट सम्बन्ध कंस की पत्नियों के जरासन्ध से पुत्रीत्व के कारण स्थापित ज्ञात होता है।[70] जरासन्ध का कंस की ओर से कृष्ण के विरूद्ध युद्ध कंस और जरासन्ध के परस्पर मैत्री–भाव का सूचक है।

जरासन्ध का साम्राज्य मगध से आर्यावर्त के समस्त भाग में फैला ज्ञात होता है, केवल मथुरा जरासन्ध के साम्राज्य से बाहर थी। जरासन्ध ने मगध साम्राज्य के विस्तार की नीति अपनायी थी। सम्भवतः उसका उद्देश्य मथुरा को छीनकर अपनी राज्य सीमा को दक्षिण–पश्चिम की ओर बढ़ाने का था किन्तु मथुरा में वृष्णियों की बलवती सेना ने कदाचित् जरासन्ध की शक्ति का सुदृढ़ प्रतिकार किया। इसी कारण बहुत प्रयत्न करने पर भी मगध राज्य सीमा मथुरा से दक्षिण–पश्चिम की ओर न बढ़ सकी। हरिवंश पुराण में मगध के राजवंश का क्रम निम्नवत् है।[71]–

पुरूवंश-कक्षेयु वंश-अंगवंश :-

ययाति के पुत्र पूरू का वंश हरिवंश में स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है।[72] पुरू का पुत्र जनमेजय हुआ इसे इस वंश का जनमेजय प्रथम माना जाना चाहिये, क्योकि इसके बहुत आगे एक अन्य जनमेजय का उल्लेख मिलता है। हरिवंश के अन्तर्गत पूरू के वंश में रौद्राश्व के दस पूत्रों में एक कक्षेयू के लम्बे वंश का विवरण दिया गया है। अतः पूरूवंश की एक शाखा के रूप में कक्षेयु वंश मिलता है। हरिवंश में शिवि के चार पुत्रों का उल्लेख भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । ये चार पुत्र–वृषदर्भ, सुवीर, मद्रक तथा केकय हैं। इन चार राजाओं के नाम पर क्रमशः वृषदर्भ, सुबीर, मद्रक, तथा केकय जनपदों की उत्पत्ति बतलायी गयी है।[73] सुबीर, मद्रक तथा केकय जनपद इनमें विशेष महत्व रखते हैं। मद्रक की स्थिति इतिहासकारों ने पंजाब में निश्चित की है।[74]

श्री मजुमदार मद्रक, यौधेय, अर्जुनायन, और शिवि आदि जातियों को मौर्यकाल के अन्त में विकसित होते हुये बतलाते है।[75] सुवीर जनपद से वहाँ के निवासी सौवीरों का उल्लेख महाभारत में हुआ है।[76] पाणिनी की अष्टाध्यायी में सौवीरों का उल्लेख इस जाति की प्राचीनता का परिचायक है।[77] इन प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि पाणिनी के काल के पूर्व

हो जाये किन्तु पौरवों से हीन नहीं हो सकती। यथा–

"आचन्द्रार्कग्रहा भूमिर्भवेदपि न संशयः।
अपौरवा न तु मही भविष्यति कदाचन्।।"[82]

वंश के अन्त में इस गाथा के गान से सम्भवतः पूरूवंश के महत्व की ओर संकेत किया गया है। हरिवंश पुराण में पूरूवंश–कक्षेयुवंश–अंगवंश के राजाओं का क्रम निम्न रूप में मिलता है।[83]–

सुवीर जनपद विख्यात् हो चुका होगा।

हरिवंश में महामनस के प्रथम पुत्र उशीनर की शाखा यहाँ पर समाप्त हो जाती है। महामनस् के द्वितीय पुत्र तितिक्षु की शाखा उशीनर की भाँति महत्वपूर्ण है। तितिक्षु से उषद्रथ की उत्पत्ति बतलायी गयी है। हरिवंश के अनुसार इसने पूर्वी भारत में राज्य किया।[78] उषद्रथ के पुत्र फेन से सुतपस तथा सुतपस से बलि की उत्पत्ति हुई। बलि के पाँच पुत्र–अंग, वंग, सुह्म, पुण्ड्र तथा कलिंग इन्ही नामों के पाँच जनपदों की स्थापना करते हैं। चार राजाओं को छोड़कर केवल अंग से बलि के वंश की वृद्धि होती है। इस वंश के चम्प नामक राजा को चम्पा नगरी का स्थापक कहा गया है। चम्पा नगरी उत्तर काल में मालिनी कहलायी। यथा–

"चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्य भवत् पुरा।"[79]

इसी वंश में आगे चलकर बृहन्मना की यशोदेवी तथा सत्या नामक दो रानियों से दो विभिन्न वंश चले। यशोदेवी से वृहन्मना का जयद्रथ नामक पुत्र हुआ। इस शाखा में विकर्ण नामक राजा के सौ पुत्रों से वंश का अन्त होता हैं बृहन्मना की सत्या नामक रानी से विजय की उत्पत्ति हुई। इस शाखा में अधिरथ सूत के द्वारा कर्ण को गोद लेने पर कर्ण से वंश का विस्तार हुआ हैं। वृष नामक राजा के बाद अंग वंश की समाप्ति हुई है।

पूरु के प्रधान वंश में शन्तनु से पाण्डवों तक की शाखा परम्परागत रूप में मिलती है। काली से उत्पन्न शान्तनु के पुत्र विचित्रवीर्य से धृराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर की उत्पत्ति बतलायी गयी है। पाण्डवों में अर्जुन से अभिमन्यु और उसके पुत्र परीक्षित के उल्लेख के बाद पौरवशाखा की समाप्ति की गयी है।[80] परीक्षित के बाद की संक्षिप्त पौरव–वंशावली भविष्य पर्व के प्रथम अध्याय में मिलती है।

हरिवंश में पौरववंश के अन्तर्गत परीक्षित के बाद की वंश परम्परा अजपार्श्व के जीवनकाल में समाप्त हो जाती है। अजपार्श्व तथा परीक्षित के बीच के राजा क्रमशः चंद्रापीड, जनमेजय, सत्यकर्ण तथा श्वेतकर्ण हैं। अजपार्श्व की माता मानिनी ने नवजात शिशु को मार्ग में छोड़कर अपने मृत पति का अनुगमन किया। इस कुमार की रक्षा पिप्पलाद और कौशिक नामक दो ब्राम्हण पुत्रों ने की। वेशकी नामक ब्राम्हणी ने इस बालक का पालन किया। इस बालक की रक्षा करने के कारण यह दो मुनिकुमार अजपार्श्व के मन्त्री कहे गये है।[81]

इस वंश के अन्त में पौरव वंश से सम्बन्धित ययाति के आशीर्वचनों का उल्लेख है। पूरु के जराग्रहण से प्रसन्न होकर ययाति ने कहा कि पृथ्वी चाहे चन्द्र तथा सूर्य से हीन

तुर्वसुवंश-पूरूवंश :-

यथाति के पुत्रों में हरिवंश के अन्तर्गत तुर्वसु का वंश भी महत्वपूर्ण है। इस वंश में करन्धम् का पुत्र मरूत्त आवीक्षित सबसे महत्वपूर्ण राजा है। महाभारत के अन्तर्गत प्राचीन-काल के प्रसिद्ध राजाओं की सूची में मरूत्त का नामोल्लेख है।[84] सन्तानहीन होने के कारण मरूत्त ने पौरव दुष्यन्त को गोद लिया। इस प्रकार तुर्वसु की शाखा पूरू की शाखा में मिश्रित होकर एक हो गयीं। दुष्यन्त के पुत्र आक्रीड से चार पुत्र–पांड्य, केरल, कोल तथा चोल की उत्पत्ति बतलायी गयी है। इन राजाओं के नाम पर चार जनपदें का उल्लेख है। यह वंशक्रम यहीं पर समाप्त हो जाता है।[85]

यदुवंश :-

ययाति के पुत्र दुह्य के वंश का कोई विशेष महत्व नहीं है लेकिन यदु का वंश महत्वपूर्ण है। यदु के पॉच पुत्रों में सहस्त्रद के ज्येष्ठ पूत्र हेहय से इस राजवंश का विस्तार होता है। कार्त का पुत्र साहंज इस वंश का सर्वप्रथम नगर निर्माता है। यथा–

"साहंजनी नाम पुरी येन् राज्ञा निवेशिता।"[86]

साहंज के पुत्र महिष्मान् को महिष्मती नामक अन्य नगरी का संस्थापक कहा गया है। यथा–

"महिष्मती नाम पुरी येन् राज्ञा निवेशिता।"[87]

महिष्मान् का पुत्र मद्रश्रेण्य वाराणसी का अधिपति कहा गया है।[88] यह मद्रश्रेण्य वाराणसी का अधिपति वही मद्रश्रेण्य है, जिसकों पराजित करके काशी के राजा दिवोदास ने वाराणसी को हस्तगत कर लिया था। काशिराज दिवोदास के वंशक्रम के वर्णन में मद्रश्रेण्य तथा उसके उत्तराधिकारी दुर्दम का केवल उल्लेख किया गया है।[89] सम्भवतः दिवोदास के चरित्रवर्णन के लिये प्रसंगवश उसके उत्तराधिकारी भद्रश्रेण्य का नामोल्लेख आवश्यक समझा गया है।

हरिवंश में कृतवीर्य के पुत्र कार्तवीर्य अर्जुन का राज्यकाल 85000 वर्ष दिया गया है –

"पंचाशीति सहस्त्राणि वर्षाणां वै नराधिपः।"[90]

लेकिन यह केवल पौराणिक कल्पना प्रतीत होती है किन्तु यह कल्पना पूर्ण निराधार नहीं है। पुराणों से ज्ञात होता है कि कार्तवीर्य अर्जुन ने सुदीर्घ काल तक समृद्धिपूर्ण राज्य किया। इसका प्रमाण नारद के द्वारा हरिवंश में कार्तवीर्य अर्जुन की गायी गयी गाथा से मिलता है तदनुसार– "यज्ञ, दान, तप, विक्रम तथा श्रुत में कोई भी राजा कार्तवीर्य को नहीं पा सकता। शास्त्रास्त्रो से सुसज्जित कार्तवीर्य ने जब सप्तद्वीपों का भ्रमण किया,
तब वह राजाओं को योगी सदृश दिखलाई दिया। प्रजाधर्म से राज्य की रक्षा करते हुये इस राजा के काल में धन नष्ट न होता था, न शोक था और न विभ्रम। इस प्रकार इस चक्रवर्ती ने 85000 वर्ष तक राज्य किया।"यथा–

"न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा विक्रमेण श्रुतेन च।।
स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चर्मी शरासनी।
रथी द्वीपाननुचरन् योगी संदृश्यते नृभिः।।
अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः।
प्रभावेन महाराज्ञः प्रजाधर्मेण रक्षतः।।
पंचाशीतिसहस्त्राणि वर्षाणां वै नाराधिपः।
स सर्वरत्नभाक्र सम्राट् सक्रवर्ती बभूव ह।।"[91]

नारद के द्वारा गायी गयी पुराणों की यह गाथा कार्तवीर्य के विक्रम में निर्मित प्रशस्ति की भॉति उसके व्यक्तित्व को प्रकाश में लाती है।

हरिवंश तथा अन्य पुराण कार्तवीर्यार्जुन के चरित्र को उच्च स्थान देते हैं। कार्तवीर्य के प्रति गायी गयी गाथा के अतिरिक्त जामदग्न्य के द्वारा उसके सहस्त्र बाहुओं के विनाश तथा वध का कारण यह बतलाया गया है कि पूर्वकाल में इच्छानुसार जामदग्न्य के द्वारा मारे जाने की वर–प्राप्ति के प्रभाव से कार्तवीर्य की मृत्यु परशुराम के द्वारा हुयी थी। यथा–

"रामान्तोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्मुनेर्नृप।
वरश्चैष हि कौरव्य स्वयमेव वृतः पुरा।।"[92]

इस वरदान का उल्लेख कार्तवीर्य के शाप के कलंक को मिटाने के निमित्त किया गया ज्ञात होता है। हरिवंश पुराण में कार्तवीर्य के सहस्त्र बाहुओं को स्वर्णमय तालवनों की भाँति उच्छिन्न करने का श्रेय परशुराम को दिया गया है। यथा–

"अहो बत मृघे वीर्य भार्गवस्य यदच्छिनत्।

राज्ञो बाहुसहस्त्रं तु हैमं तालवनं यथा।।"[93]

हरिवंश में अग्नि द्वारा वसिष्ठ के आश्रम को भस्म करने का उल्लेख है। यह वृतान्त इस प्रकार है – एक समय अग्नि ने कार्तवीर्य से याचना की। कार्तवीर्य ने सप्तद्वीपा पृथ्वी अग्नि का दान के रूप में दी। अग्नि ने कार्तवीर्य के वन तथा पर्वतों के साथ वसिष्ठ का आश्रम भी जला दिया। अग्नि के इस कार्य से रूष्ट होकर ही वसिष्ठ ने कार्तवीर्य को जामदग्न्य के द्वारा भस्मीभूत होने का शाप दिया।[94] हरिवंश का यही वृतान्त सम्भवतः उत्तर काल में जटिल हो गया। इस वृतान्त के पीछे ब्रम्हद्वेष तथा ब्राम्हणों के क्षत्रिय–प्रतीकार की भावना बढ़ती हुयी ज्ञात होती है। सम्भवतः इसी कारण अन्य पुराणों में कार्तवीर्य का यह वृतान्त अतिशयोक्ति के द्वारा कार्तवीर्य को क्रूर कर्मा राजा के रूप में चित्रित करता है। प्रतापी राजा होने पर भी महाभारत के अन्तर्गत प्रसिद्ध राजाओं की सूची में कार्तवीर्य के नामोल्लेख का अभाव इस बात का प्रमाण है।[95]

हरिवंश में कार्तवीर्य का राज्य नर्मदा नदी के तटवर्ती प्रदेश में बतलाया गया है। नर्मदा नदी के साथ कार्तवीर्य को समुद्र का वेग रोकते हुये कहा गया है। यथा–

"स वै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षेणः।

क्रीडन्निव भुजोद्रभिन्नं प्रतिस्त्रोतश्चकार ह।।

लुंठिता क्रीडिता तेन फेनस्त्रग्दाममालिनी।

चलदूर्मिसहस्त्रेण शंकिताभ्येति नर्मदा।।"[96]

सम्भवतः नर्मदा के किनारे समुद्र के दोनों तटों पर कार्तवीर्य का राज्य विस्तृत था। कार्तवीर्य के द्वारा कर्कोटक नागों को जीतकर उन्हें माहिष्मतीपुरी में स्थापित करने का उल्लेख है यथा–

"स हि नागान् मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः।

कर्कोटकसुतान् जित्वां पुर्यां तस्यां न्यवेशयत्।।"[97]

महिष्मती के स्थापक को माहिष्मान् कहा गया है, जो कार्तवीर्य का ही पूर्वज है। ज्ञात होता है कि पूर्वजों से शासित इस नगरी को कार्तवीर्य ने अनुग्रहवश कर्कोटक नागों को समर्पित कर दिया।

हरिवंश में माहिष्मती से कर्कोटक नागों का सम्बन्ध एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विषय है। सुप्रसिद्ध विद्वान् के0पी0जायसवाल ने वायु पुराण तथा ब्रम्हाण्ड पुराण के आधार पर नागवंशी राजाओं की पश्चिमी राज्य सीमा को विदिशा, पद्मावती तथा पश्चिमी मालवा के आसपास माना है। जायसवाल महोदय के ही शब्दों में–

" In Bihar Campavati is noted by the Vayu & the Brahmanda, as a capital of the Nava Nagar. The Nagar extended their sway into the Madhya Pradesh, a fact borne out by the subsequent Vakataka history &the place-names like Naga, Vordhma, Nandi Vardham & Nagpur."[98]

जायसवाल महोदय ने नाग राजाओं की पूर्वी सीमा का आधुनिक उत्तर प्रदेश तथा पूर्वी–पश्चिमी बिहार बतलाया है।[99] श्री जायसवाल ने कर्कोटक नागों का प्रभाव भारशिव तथा वाकाटक साम्राज्यों में प्रमाणित किया है।[100]

लेकिन हरिवंश में वर्णित कर्कोट नागों की राजधानी महिष्मती श्री जायसवाल के द्वारा निश्चित नागों की राजधानी से भिन्न है। श्री जायसवाल के अनुसार महिष्मती नर्मदा नदी और इन्दौर के आसपास है– "Mahisi is the Mahismati on the Narmada between the British district of Nimar of Indore, It was the capital of the western Malwa."[101] श्री जायसवाल के द्वारा निर्धारित माहिष्मती की यह स्थिति समीचीन है। इसका कारण यह है कि हरिवंश में भी माहिष्मती के साथ नर्मदा के तटवर्ती प्रदेश का उल्लेख हुआ है।[102] श्री जायसवाल ने वायु-पुराण तथा ब्रम्हाण्ड पुराण के आधार पर चम्पावती को कर्कोटों की राजधानी माना है। उनके अनुसार चम्पावती की स्थिति बिहार में है।[103] वायु पुराण तथा ब्रम्हाण्ड पुराण में माहिष्मती नगरी को कर्कोटों की राजधानी माना गया है।[104] अतः श्री जायसवाल का कथन कि कर्कोटों की राजधानी चम्पावती है, कुछ अविश्वसनीय प्रतीत होता है।

तालजंघों की वंश परम्परा में मधु से यादवों की उत्पत्ति बतलायी गयी है। यादवों के पूर्वज मधु तथा मधुवन के निर्माता दैत्य मधु में कई बार भ्रम हो जाता है।[105] हरिवंश के अन्तर्गत मधु और शत्रुघ्न के वृतान्त में ऐतिहासिक परम्परा की खोज के लिये यथेष्ट सामग्री

है। यह वृतान्त मथुरा की प्राचीनता पर प्रकाश डालता है। इस वृतान्त से ज्ञात होता है कि अयोध्या में रामराज्य के अन्तिम दिनों में शत्रुघन ने मधुवन में अधिष्ठित किसी दैत्य को मारकर यहॉ पर मथुरा नामक नगरी बसायी। अपने द्वारा बसायी गयी मथुरा नगरी के शासक के रूप में शत्रुघन ने अपने पुत्रों को उत्तराधिकारी बनाया।[106] हरिवंश शत्रुघन के उत्तराधिकारियों के विषय में मौन है। कालक्रम से अयोध्या के सूर्यवंशी राजाओं का यह राज्य सोमवंशी कंस तथा उग्रसेन को मिल गया ज्ञात होता है चन्द्रवंशियों की राजधानी मथुरा का प्रारम्भिक इतिहास सूर्यवंशी राजाओं को इस नगरी के आदि निर्माता के रूप में प्रस्तुत करता है।

सुप्रसिद्ध विद्वान पार्जिटर ने हरिवंश के अन्तर्गत मधु और शत्रुघ्न के वृतान्त को एक ऐतिहासिक तथ्य माना है। पार्जिटर के ही शब्दों में–

The story explains how the Capital Mathura was called 'Surasena and how it was that kansa, a Yadava and a descendent of Andhanka reigned there in Pandava's time-a collocation of facts of which there is no other explanation. The story appears to contain historical truth."[107]

किन्तु इन्होने यादवों की वंशावली में मधु के नामोल्लेख को काल्पनिक माना है। और यह सत्य भी है कि यादववंश में मधु तथा उसके उत्तराधिकारी यादवों का वंशक्रम अवश्य भ्रमात्मक है। इसका कारण शायद यह है कि ययाति के पुत्र यदु के प्रधान वंश में कार्तवीर्य के पुत्र शूरसेन और सूर, तालजंघ के पुत्र भोज और वृष यादव के पुत्र मधु के नामों के अनुसार यादवों की अनेक संज्ञायें हो गयी हैं। यदु, शूर, भोज और मधु की सन्तान होने के कारण ये क्रमशः यादव, शौरि, भोज और माधव माने गये हैं। शूरसेन नामक कार्तवीर्य के ज्येष्ठ पुत्र के नाम के आधार पर मथुरा को शुरसेन से सम्बद्ध किया गया है। यदुवंश के उत्तराधिकारी का भ्रमात्मक स्वरूप इस वंश की काल्पनिकता का कारण नहीं माना जा सकता। हरिवंश में मधु दैत्य तथा मधु नामक यादवों के पूर्वज का पृथक व्यक्तित्व स्पष्ट है।[108] अतः केवल विभिन्न संज्ञाओं के मिश्रण के कारण युदवंश की वंश परम्परा को अप्रामाणिक नहीं माना जा सकता। इन प्रमाणों के आधार पर माधव–लवण का पिता मधु नामक दैत्य तथा तालजंघ के उत्तराधिकारी वृषयादव का पुत्र मधु अलग–अलग होने के कारण काल्पनिक नहीं कहे जा सकते। हरिवंश पुराण में यदुवंश के राजाओं का क्रम निम्न रूप में मिलता है।–

1. यदु
2. सहस्त्रद (यदु के पाँच पुत्रों में प्रथम)
3. हैहय हय वेणुहय
4. धर्मनेत्र
5. कार्त
6. साहंज (साहंजनी पुरी)
7. माहिष्मान (माहिष्मती पुरी)
8. भद्रश्रेण्य
9. दुर्दम
10. कनक
11. कृतवीर्य कृतौजा कृतवर्मा कृताग्नि
12. अर्जुन (कार्तवीर्य)
13. जयध्वज (शतसंख्यक पुत्रों में जयध्वज से वंशक्रम)
14. तालजंघ
15. शतसंख्यक पुत्र
16. अनेक तालजंघ भोज आदि
17. वृष
18. मधु
19. शतसंख्य पुत्रों में वृषण से वंश चला
20. वृष्णि

वृष्णि वंश :-

यदु के तृतीय पुत्र क्रोष्टा अथवा क्रोष्टु से इस राजवंश की विभिन्न शाखा प्रारम्भ होती है। क्रोष्टु की पत्नी माद्री से युघाजित् नामक पुत्र का वंश वृष्णि वंश कहलाता है।[110] देवमिदुष के पुत्र शूर से वसुदेव तथा उनसे कृष्ण का जन्म होता है। यदुवंश कार्तवीर्य तथा तालजंघों के वंश, अन्धक वंश तथा वृष्णि वंश के रूप में विभाजित हो गया है। यदुवंश की ये शाखायें अनेक होने पर भी स्पष्ट हैं।

हरिवंश में पौरव तथा यादव कुलों के मिश्रण तथा उससे उत्पन्न संन्देह का उल्लेख, सुप्रसिद्ध विद्वान किरफेल ने किया है। उनके अनुसार–यादव तथा पौरव वंश–परम्पराओं का मिश्रण इसी रूप में ब्रम्हपुराण में देखा जा सकता है। ब्रम्हा–पुराण की विषय सामग्री हरिवंश से समानता रखती है। दोनों पुराणों की वंशावलियों के मिश्रिण, रूप के प्रदर्शन के द्वारा पौराणिक मूल स्त्रोत के अशुद्ध पाठ का ज्ञान होता है।[111] हरिवंश में धन्वन्तिरि के वंश की आवृत्ति का कारण भी किरफेल ने इस पुराण के मूल स्त्रोत की दो प्रतियाँ कहा है।[112] हरिवंश ने इन दोनों प्रतियों से प्रेरणा ग्रहण की तथा ब्रम्ह पुराण में इन दोनों प्रतियों के प्रभाव की अनुपस्थिति है।[113] इसी कारण हरिवंश में धन्वन्तरि के वंश की आवृत्ति के होने पर भी ब्रम्ह पुराण में इस वंश का पूर्ण अभाव है।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि वृष्णिवंश हरिवंश की भाँति सभी पुराणों में भिन्न वंश–परम्परा के रूप में नहीं दिया गया है। विष्णु पुराण में तो यदु के वंश के अन्त में सौ वृष्णियों की उत्पत्ति के कारण इसी वंश को वृष्णि वंश मान लिया गया है।[114]

हरिवंश पुराण में वृष्णि वंश के राजाओं का क्रम निम्न रूप में मिलता है।[115]–
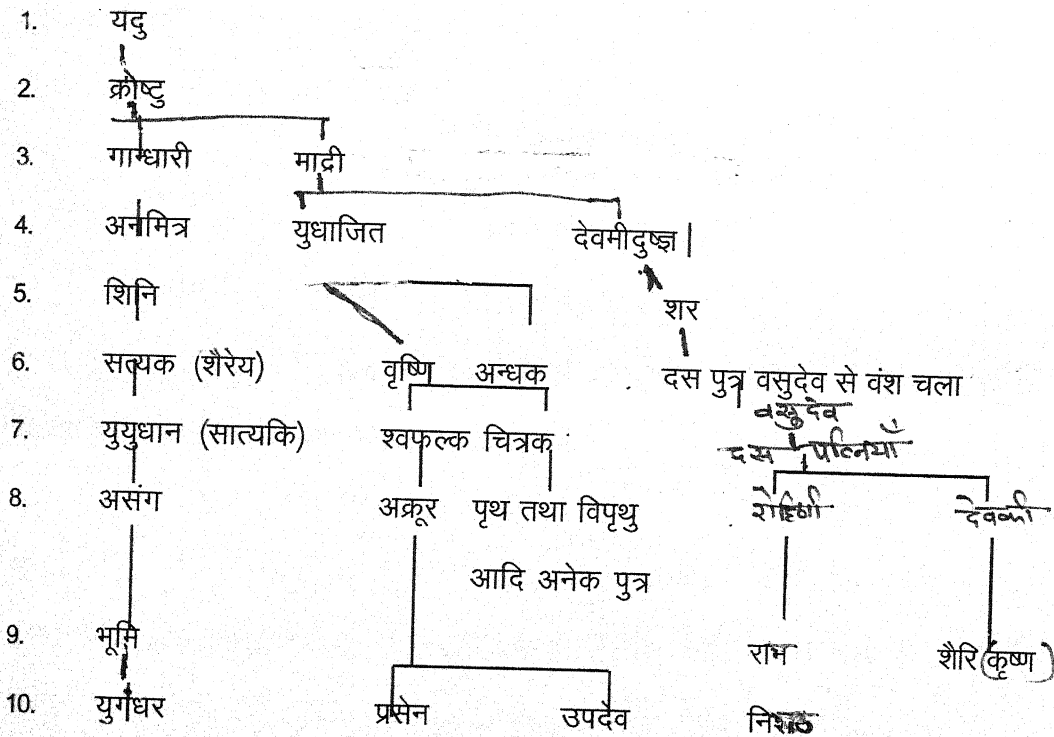
सात्वत वंश :-

सात्वत् वंश क्रोष्टु के वंश से निकली हुयी एक शाखा है। क्रोष्टु के उत्तरधिकारी विदर्भ नामक राजा के वंश का अन्तिम राजा सत्वान् है।[116] यहीं वह सत्वत है, जिसके उत्तराधिकारियों को सात्वत् कहा गया है। विदर्भ से प्रारम्भ माने जाने पर भी सम्भवतः सत्वत् के प्रसिद्ध राजा होने के कारण यहं वंश सात्वत् वंश कहा गया है।

सात्वत् वंश के वर्णन में देवावृघ के पुत्र बभ्रु की सन्तान के लिये प्रयुक्त 'मार्तिकावत भोज' शब्द सात्वत वंश के तालजंघ के पुत्र भोज से सम्बन्ध स्थापित करता है यथा—

"वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजाश्चावन्तयः स्मृताः।।"[117]

यह भोज सौ तालजंघों में से एक ज्ञात होता है। तालजंघों के वर्णन के प्रसंग में यहाँ पर भोज का केवल उल्लेख हुआ है। सम्भवतः इसी भोज के किसी उत्तराधिकारी से सात्वत्वंश सम्बद्ध रहा होगा।

सात्वत्वंशी बभ्रु के उत्तराधिकारी भोजों को 'मार्तिकावत' कहा गया है। मार्तिकावत से अर्थ मृर्तिकावती नामक स्थान के निवासी से है। मृत्तिकावती नगरी का उल्लेख हरिवंश के एक अन्य स्थल में भी हुआ है। यहाँ पर मृत्तिकावती नगरी को नर्मदा के तट पर बतलाया गया है। इसी वर्णन के साथ ऋक्षवन्त पर्वत तथा शुक्तिमती नगरी का उल्लेख है। यथा—

"नर्मदाकूलमेकाकी नगरीं मृत्तिकावतीम्।
ऋक्षवन्तं गिरि जित्वा शुक्तिमत्यामुवास सः।।"[118]

सम्भवतः मृत्तिकावती नर्मदा के तटवर्ती प्रदेश में माहिष्मती के आसपास थी। सत्वत् के पूर्वज भोज का सम्बन्ध इसी मृत्तिकावती नामक नगरी से ज्ञात होता है।

देवावृध तथा बभ्रु के उत्तराधिकारी मार्तिकावत भोजों का अमरत्व उनके गौरव का प्रतीक है। उनके विषय में गायी गयी गाथा उनके इस गौरव को प्रमाणित करती है। इस गाथा में बभु और देवावृध को देवता और मनुष्यों में श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है। बभु और देवावृध के साथ 7066 पुरूषों के अमरत्व—पद प्राप्त करने का उल्लेख है यथा—

"गुणान्देवावृधस्याथ कीर्तयन्तो महात्मनः।

यथैवाग्रे समं दूरात् पश्याम च तथान्तिकं।।

बभ्रुश्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः।

षष्ठिश्च षट् च पुरूषाः सहस्त्राणि च सप्त च।।

एतेऽमृतत्वं संप्राप्ता बभ्रु–देवावृधावधि।"[119]

हरिवंश की टीका में अमरत्व का अर्थ युद्ध में वीरगति प्राप्त करके ब्रम्हलोक–गमन बतलाया गया है। यथा–

"षट्षष्ठ्याधिकानि सप्तसहस्त्राणि पुरूषाः अमृतत्वं युद्धेन मृत्युमासाद्य ब्रम्हलोक गता इत्यर्थः।"[120]

हरिवंश में ही आगे ज्ञात होता है कि मृत्तिकावती नगरी की रक्षा के लिये किसी शत्रु से लड़ते–लड़ते देवावृध, बभ्रु तथा उनके 7066 योद्धाओं ने वीरगति पायी। देवावृध के भाई अन्धक की नवीं पीढ़ी में देवकी आदि देवक की सातकन्याओं का उल्लेख हुआ है।[121] कृष्ण का जन्म देवकी आदि से हुआ। महाभारत–युद्ध के कृष्ण के जीवन काल में होने के कारण देवकी के पूर्वज देवावृध तथा बभ्रु के इस युद्ध का काल महाभारत–युद्ध के बहुतपूर्व रहा होगा। भोजों को इस वीरता का इच्छित फल मिला ज्ञात होता है। मृत्तिकावती नगरी उनके अधिकारी में रही तथा उनके उत्तराधिकारियों ने उसमें राज्य किया। सम्भवतः बभ्रु के यही उत्तराधिकारी मार्तिकावत भोज कहलाये।

हरिवंश के अन्तर्गत बभ्रु के उत्तराधिकारी सात्वत्वंशी राजाओं केप्रति 'मार्तिकावताः' विशेषण का प्रयोग ऐतिहासिक महत्व रखता है। देवावृध के भाई अन्धक की नवीं पीढ़ी की देवकी, कंस, तथा कंस के पिता उग्रसेन का निवासस्थल मथुरा है। मृत्तिकावती नगरी की स्थिति हरिवंश में नर्मदा के तट पर तथा शुक्तिमती के आसपास बतलायी गयी है।[122] अतः मध्यभारत में माहिष्मती नगरी के समीपवर्ती प्रदेश में मृत्तिकावती नगरी की स्थिति लगभग निश्चित हो जाती है। हरिवंश से ज्ञात होता है कि कंस से नौ पीढ़ी पूर्व सात्वत्वंशी राजाओं की राजधानी मथुरा में न होकर मध्य भारत में स्थित मृत्तिकावती नगरी थी। सात्वत्वंशी राजाओं के उत्तराभिमुख प्रयाण में सम्भवतः वही कारण रहा होगा, जो नाग राजाओं के दक्षिणाभिमुख प्रयाण में था। सम्भवतः मध्य भारत से मथुरा के बीच के अनेक राज्यों को जीतते हुये इन राजाओं ने मथुरा को चिरकाल तक अपनी राजधानी बनाया।

हरिवंश में वर्णित सात्वत वंशपरम्परा की अन्य पुराणों से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि पुराणों में सात्वत वंशक्रम के दो रुप प्रचलित थे। एक रुप हरिवंश में मिलता है तथा दूसरा अन्य पुराणों में। क्रोष्टु से बभ्रु तक की वंशपरम्परा हरिवंश में अस्त व्यस्त रुप में मिलती है। इस वंश के स्पष्ट न होने का कारण हरिवंश के पाठ में बाह्य प्रभाव ज्ञात होता है किन्तु भोज–मार्तिकावतों के विषय में हरिवंश के अन्तर्गत स्पष्ट सामग्री अन्य पुराणों में अनुपस्थित हैं। हरिवंश का देवावृधविषयक वृतान्त अन्य सभी पुराणों से शुद्ध ज्ञात होता है। हरिवंश पुराण में सात्वत वंश के राजाओं का क्रम निम्न रुप में मिलता है–[123]

शुंग वंश :-

हरिवंश के भविष्य पर्व के अन्तर्गत व्यास तथा जनमेजय का संवाद महत्वपूर्ण है। यहां पर व्यास के द्वारा भविष्य में अवश्मेघ यज्ञ की अप्रसिद्धि का कथन तथा कलियुग में 'औद्भिज्ज सेनानी' के द्वारा इस यज्ञ के पुनः प्रचार का उल्लेख है। यथा–

"औदभिज्जो भविता कश्चित् सेनानीः काश्यपो द्विजः।

अश्वमेघं कलियुगे पुनः प्रत्याहरिष्यति।।"[124]

'औदभिज्य सेनानी' शब्द के सार्थक प्रयोग तथा ऐतिहासिक तत्व का विवरण सुप्रसिद्ध विद्वान राजचौधरी ने दिया है। उनके अनुसार सेनानी शब्द निस्सन्देह शुंगवंशी पुष्यमित्र का सूचक है, जिसने अश्वमेघ यज्ञ की लम्बी अप्रसिद्धि के बाद इस यज्ञ का पुनः प्रचार किया था। रायचौधरी के ही शब्दों में– The Suggestion has been made that the Sena i is identical with Senani Pusyamitra whose name appears in the list of the Sunga Kings in the Puramas. and who is known from literary, and epigraphic evidence to have Perfarmed the Asvamedha Sacrifice."[125]

श्री रायचौधरी हरिवंश में मिलने वाले 'औद भिज्ज सेनानी' शब्दों की ऐतिहासिक प्रामाणिकता ही नहीं सिद्ध करते वरन् इस विषयके द्वारा शुंगवंश के इतिहास में नवीन सामग्री के योग को स्वीकार करते हैं। 'औद भिज्ज' शब्द व्युत्पत्ति के अनुसार 'वनस्पति से उत्पन्न अर्थ रखता है। दक्षिण भारत में वनवासी के 'कदम्ब' तथा कांची के 'पल्लव राजवंशों' की भांति औदभिज्ज शब्द वृक्षों से गोत्रनाम अथवा उपाधि को धारण करने वाली प्राचीन भारतीय परम्परा की सूचना देता है।[126] सम्भवतः पुष्यमित्र शुंग के वंश का सम्बन्ध कदम्ब तथा पल्लव राजकुलों की भांति वृक्ष से रहा था।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हरिवंश की नीलकण्ठी टीका में 'औदभिज्ज' शब्द नितान्त भिन्न अर्थ प्रस्तुत करता है। इस शब्द का अर्थ यहां पर भूमि के बिल से प्रकट होने वाले योगी कहा गया है। यथा–

"उदभिद्य जायत इत्योदभिज्जः भूबिलस्थो योगी

खन्यमानायां भुविप्रकटी भविष्यतीत्यर्थ।[127]

नीलकण्ठ के द्वारा 'औदभिज्ज' शब्द की व्युत्पत्ति समीचीन मानी जा सकतीहै। किन्तु इस व्युत्पत्ति के आधार पर निश्चित किया गया अर्थ इस प्रसंग के प्रतिकूल हो जाता है। इस स्थल के अन्य श्लोकों के द्वारा पुष्यमित्र और उसके उतराधिकारी राजाओं की ओर स्पष्ट संकेत है इन राजाओं को शुंगवंशी राजा मानने पर 'औदभिज्ज' शब्द की बिल से प्रकट होने वाला व्युत्पत्ति असंगत प्रतीत होती है। अतः श्रीराय चौधरी के द्वारा की गयी औदभिज्ज की व्युत्पत्ति अधिक तर्क संगत प्रतीत होती है।

हरिवंश का यह प्रसंग पुष्यमित्र शुंग के जीवन पर ही प्रकाश नहीं डालता अपितु इस स्थल में शुंगवंशी अन्य राजाओं के शासन सम्बन्धी कार्यो की भी सूचना मिलती है। 'औद्भिज्ज' सेनानी के युग तथा वंश में किसी राजा के द्वारा राजसूय यज्ञ की स्थापना करने का उल्लेख है। यथा–

"तद्युगे तत्कुलीनश्च राजसूयमपि ऋतुम्।
आहरिण्यति राजेन्द्र श्वेत गृहभिवान्तकः।।"[128]

हरिवंश के इस प्रसंग में समाज की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में क्रान्ति का तथा थोड़े से पुण्य के अधिक फल का कथन है। यथा–

"चातुराश्रम्य शिथिलो धर्मः प्रविचालिष्यति।
तदा हाल्पेन तपसा सिद्धिं प्राप्स्यन्ति मानवाः।।"[129]

हरिवंश के भविष्यपर्व के इस प्रसंग में पुष्यमित्र सेनानी के वंश में किसी शुंग राजा के द्वारा राजसूय यज्ञ के विधान की सूचना मिलती है। पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी दस राजाओं का उल्लेख विष्णु पुराण में मिलता है।[130] किन्तु पुष्यमित्र के अतिरिक्त अन्य राजाओं के द्वारा किसी यज्ञ के विधान का प्रसंग इन प्रमाणों में नहीं मिलता। हरिवंश के इस प्रसंग में शुंगवंशी किसी राजा के द्वारा राजसूय यज्ञ कीसमाप्ति के उत्तरकाल को अत्यन्त अशान्तिपूर्ण बतलाया गया है राजसूय यज्ञ को करने वाला शुंगवंशी का राजा शुंगकाल के अन्तिम उत्तराधिकारियो में से कोई ज्ञात होता है। इस राजा के राज्य काल के बाद के वर्णन तथा कलि वर्णन के द्वारा तत्कालीन समाज में बौद्ध धर्म के प्रचार का परिचय मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र की बौद्ध धर्म के प्रति कठोर नीति के कारण इस राजवंश के अन्तिम काल में दलित बौद्धधर्म पुनः पनप उठा था।[131] इस राज्यकाल के बाद जिस बौद्ध समाज का चित्र मिलता है, वह अत्यन्त हासोन्मुख ज्ञात होता है। सम्भवतः अशोककालीन बौद्ध धर्म का पुनीत रुप इस काल तक विकृत हो चुका था।

कलिवर्णन में बौद्धधर्म प्रधान समाज का जो चित्र हरिवंश में मिलता है लगभग वहीं चित्र अनेक पुराणों के कलि वर्णन में मिलता है। यथा–

"श्रौतस्मार्ते प्रशिथिले धर्मे वर्णाश्रमे तदा।
संकर दुर्बलात्मानः प्रतिपत्स्यान्ति मोहिताः।।"[132]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इन अनेक पुराणों में कलिवर्णन का प्रसंग शुंग तथा उसके बाद के काल की सूचना देता है।

इस प्रकार हरिवंश में यह प्रसंग पुष्यमित्र के साथ ही शुंगवंशी राजाओं के विषय में नवीन सामग्री प्रस्तुत करने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस प्रसंग के द्वारा शुंगवंशी किसी राजा के राजसूय यज्ञ का अज्ञात वृतान्त ज्ञात होता है।

ब्राम्हण ऐतिहासिक परम्परायें :-

पुराणों के अन्तर्गत क्षत्रिय वंश परम्परा के साथ ही ब्राम्हण वंश–परम्परायें मिलती है। ब्राम्हणवंशों की प्रामाणिकता का निराकरण सुप्रसिद्ध विद्वान पार्जिटर ने किया है।[133] किन्तु वे प्रत्येक ब्राम्हणवंश को निराधार नहीं मानते। हरिवंश के अन्तर्गत अनेक ब्राम्हणवंश श्रंखलाबद्ध रुप में कुछ वंशानुगत घटनाओं पर प्रकाश डालते हैं जबकि अन्य ब्राम्हणवंश ब्रम्हाक्षत्रों के परस्पर सम्बन्ध की ओर संकेत करते हैं। इनसे भिन्न ऋषिवंश किन्हीं राजवंशों से सुदीर्घ काल तक सम्बन्ध रहने के कारण क्षत्रियवंश परम्परा के अन्तरंग भाग हो गये हैं। हरिवंश में निम्नलिखित ब्राम्हण–ऋषि वंश परम्पराओं का विवरण मिलता है–

वसिष्ठ :-

कुछ ऋषि राजाओं के राजनीतिक अथवा अन्य सार्वजानिक कार्यो में प्रमुख भाग लेते हुये दिखलाई देते हैं। वसिष्ठ तथा विश्वामित्र का सम्बन्ध बहुत से राजाओं से स्थापित किया गया है। सुप्रसिद्ध विद्वान पार्जिटर ने अनेक राजाओं से एक वसिष्ठ के सम्बन्ध को असंभव मानकर एक से अधिक वसिष्ठों की कल्पना की है।[134] वसिष्ठ तथा विश्वमित्र के परम्पर संघर्ष को दिखाते हुये श्री घोष ने भी अनेक वसिष्ठों की स्थिति को स्वीकार किया है। घोष महोदय के ही शब्दों में– "Visvamitra however was dismissed later by Sudas, who appointed Vasistha as his priest, Probably on a ccaunt of the superior Brahmanical Knowledge of the Vasisthas.[135]

पार्जिटर का यह मत कि एक से अधिक वसिष्ठ हुये, उचित ज्ञात होता है। हरिवंश के अन्तर्गत सप्तर्षियों की गणना के प्रसंग में वसिष्ठ का नामोल्लेख दो बार हुआ हैं। वसिष्ठ का पहला नामोल्लेख प्रथम मन्वन्तर की गणना में तथा दूसरा नामोल्लेख सप्तम मन्वन्तर की गणना में हुआ है। यथा–

"मरीचिरत्रिर्भगवानांगिराः पुलहः ऋतुः।

पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रम्हणः सुताः।।[136]

"एतत् ते प्रथमं राजन्मन्वन्तर मुदाहतम्।"137

"ऽआत्रिवसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषिः।

गौतमोडथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च।"[138]

इस प्रकार हरिवंश से भी यह बात प्रमाणित होती है कि वसिष्ठों की संख्या कम सें कम एक से अधिक थी।

विश्वामित्र :-

सुप्रसिद्ध विद्वान पार्जिटर ने वसिष्ठ की भांति एक से अधिक विश्वामित्रों की कल्पना जर्नल आफ रॉयल एसियाटिक सोसाइटी के आधार पर की है। उनके अनुसार विश्वामित्रों में प्राचीनतम तथा महत्तम् गाधि के पुत्र विश्वामित्र हैं। इसी प्रसंग में पार्जिटर महोदय ने हरिवंश में वर्णित विश्वामित्र के क्षत्रिय नाम विश्वस्थ की ओर संकेत किया है। पार्जिटर महोदय के ही शब्द में उनके अनुसार विश्वामित्रों में प्राचीनतम तथा महत्तम् गाधि के पुत्र विश्वामित्र हैं। इसी प्रसंग में पार्जिटर महोदय ने हरिवंश में वर्णित विश्वामित्र के क्षत्रिय नाम विश्वरथ की ओर संकेत किया है।– "The Carlist and the gratest Visvamitra was the son of Gadhi ar Gathim, King of Kanyakubja and his Ksatriya name was Visvaratha. He was connected with the solar dynasty".[139]

शकुन्तला के पिता विश्वामित्र को पार्जिटर ने गाधिपुत्र विश्वामित्र का उत्तरधिकारी माना है। गाधिपुत्र विश्वामित्र कान्यकुब्ज राजवंश में उत्पन्न हुये थे। शकुन्तला के पिता मुनि विश्वामित्र का अस्तित्व महाप्रतापी राजा भरत के काल के आधार पर निश्चित किया जाता है। पार्जिटर महोदय ने भरत को विदर्भ से तीन अथवा चार पीढी बाद में निश्चित किया है।[140] गाधि तथा भरत के राज्यकाल में लम्बा व्यवधान दो विश्वामित्रों की विभिन्नता का परिचायक है।

हरिवंश के अन्तर्गत मन्वन्तर वर्णन में विश्वामित्र का नाम दो बार आया है। पहली बार विश्वामित्र का नामोल्लेख अतीत के सप्तम् मन्वन्तर की गणना में हुआ है। यथा–

"गौतमोऽथ भरद्वाजो विखामित्रस्थथैव च।"[141] दूसरा नामोल्लेख अनागत काल के प्रथम मन्नवतर में हुआ है। यहां पर विश्वमित्र को 'कौशिक' कहा गया है। यथा–

"कौशिको गालवश्चैव करुः कश्यप एव च।"[142]

इस प्रकार अतीत और अनागत के ये दो विश्वमित्र एक दूसरे से पूर्णतः भिन्न ज्ञात होते हैं।

विश्वामित्र की वंश परम्परा में उनके पुत्रों की बहुत बड़ी संख्या मिलती है। विश्वामित्र के अनेक पुत्रों में गुरु की गौ का भक्षण करके झूठ बोलने वाले कुछ पूत्रों का उल्लेख हुआ है। पितरों को अर्पित गोमांस के भक्षण से, दुष्ट योनि में प्राप्त होने पर भी उनकी धर्म की ओर उन्मुख बुद्धि तथा पूर्वजन्म की स्मृति बनी रही।[143] हरिवंश में विश्वामित्र के पुत्रों का यह वृतान्त श्राद्व के माहात्म्य के कथन के लिये वर्णित किया गया है। अतः इस स्थल में श्राद्ध के माहात्म्य का कथन ही मुख्य विषय है। विश्वामित्र के पुत्रों की वंशपरम्परा को केवल गौण विषय के रुप में प्रस्तुत करने के कारण विश्वामित्र के इन पुत्रों का वर्णन ऐतिहासिक महत्व नहीं रखता।

विश्वामित्र की अन्य सन्तान के रुप में कात्यायन, शालंकायन, बा[illegible]कल, लोहित, यामदूत, कारीषन, सौश्रुत, कौशिक तथा सैन्धवायन आदि ऋषियों का उल्लेख भी हरिवंश पुराण में है।[144] विश्वामित्र के वंश से सम्बद्ध इन ऋषियों का ऐतिहासिक महत्व अधिक है। हरिवंश पुराण में विश्वमित्र की वंश परम्परा का क्रम निम्नवत मिलता है।[145]

1. गाधि (अमावसु नामक उर्वशी के एक पुत्र से उत्पन्न)
2. विश्वामित्र
3. देवरात देवश्रवा कति हिण्याक्ष रेणुमान् सं[illegible]ृति गालव मु[illegible]गल मधुचन्द्र जय देव अण्टक
4. लौहि (अण्टक के पुत्र)

आत्रि :-

हरिवंश में अत्रि ऋषि का नामोल्लेख दो बार हुआ है। पहला उल्लेख अतीत के प्रथम मन्वन्तर में हुआ है।[146] दूसरा उल्लेख अतीत के सप्तम् मन्वन्तर में है।[147] इस प्रकार हरिवंश में विभिन्न काल में दो अत्रियों की भी उपस्थिति ज्ञात होती है।

भार्गव :-

हरिवंश में भविष्यकालीन मन्वन्तर गणना के प्रसंग में भार्गव का उल्लेख छः बार हुआ है। भावी प्रथम मन्वन्तर के प्रथम पर्याय में 'ज्योतिष्मान् भार्गव' का उल्लेख है। ज्योतिष्मान् यहां पर भार्गव का विशेषण है। यथा—

"ज्योतिष्मान् भार्गवश्चैव।"[148]

हरिवंश के दसवें पर्याय के द्वितीय मन्व न्तर में 'सुकृति भार्गव' का उल्लेख है। यथा—

"सुकृतिश्चैव भार्गवः।"149

एकादश पर्याय के तृतीय मन्वन्तर में 'हविष्मान् भार्गव' का वर्णन है। यथा—

"हविष्मान्यश्च भार्गवः।"[150]

भावी मन्वन्तर के द्वादश पर्याय में भार्गव का चौथा उल्लेख है। यथा—

"भार्गवः सप्तम् स्तेषाम।"[151]

भावी मन्वन्तर के त्रयोदश पर्याय में 'भार्गव' का पांचवा नामोल्लेख है। यहां पर भार्गव को 'निरुत्सुक' कहा गया है। यथा—

"भार्गवश्च निरुत्सुकः।"[152]

'भार्गव का छठा उल्लेख भौत्य मनु के चौदहवें पर्याय में हुआ है। यथा—

"भार्गवो हाति बाहुश्च।"[153]

लेकिन भार्गवों का छः बार उल्लेख छः भार्गवों को बोधक नहीं माना जा सकता। भार्गव शब्द भृगुवंशी ब्राम्हण का बोधक होने के कारण व्यापक अर्थ रखता है। अतः मन्वन्तरगणना के अन्तर्गत भार्गव का अनेक बार उल्लेख भृगुवंशी छः विभिन्न ऋषियों का सूचक है। केवल एक भार्गव का नहीं।

यहां पर यह उल्लेखनीय है कि राजवंश वर्णन में प्रसंगवश ऋषियों का जो उल्लेख हुआ है, वही कभी—कभी दोहरा ऐतिहासिक महत्व रखता है। पहला ऐतिहासिक महत्व किसी राजा के राज्य—सम्बन्धी विषयों पर आश्रित है। दूसरा महत्व किसी राजा के राज्यकाल में इन ऋषियों के उच्च स्थान का परिचायक है। वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा भार्गव ऋषि अपने आश्रयदाता राजाओं के काल की विशेषताओं का ही परिचय नहीं देते वरन् स्वयं पूर्ण ऐतिहासिक व्यक्ति ज्ञात होते हैं। यह सभी ऋषि पुरोहितों के रुप में इक्ष्वाकुवंश से सम्बन्ध है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हरिवंश के अन्तर्गत मन्तवन्तर गणना में प्रत्येक अतीत, वर्तमान तथा अनागत मन्वन्तर में सप्तर्षियों का उल्लेख है। प्रत्येक मन्वन्तर के पर्याय के साथ यह मण्डल परिवर्तित होता है। मन्वन्तरगणना के प्रसंग में कुछ ऋषियों का उल्लेख नामगणना के अतिरिक्त कोई महत्व नहीं रखता। अत्रि और कश्यप इसी प्रकार के ऋषि है। अत्रि का सम्बन्ध सोमवंश के प्रवर्तक ऋषि के रुप में है। अत्रि से सोम की उत्पत्ति के प्रसंग

में जिस वृतान्त का उल्लेख हुआ है, वह अत्यन्त काल्पनिक होने के कारण आत्रि के व्यक्तित्व को पूर्ण पौराणिक बना देता है। कश्यप को स्थावर जंगमात्मक् जगत् के पिता के रुप में माना गया है दिति और अद्विति नामक उनकी दो पत्नियों से क्रमशः दैत्य, आदित्य तथा देवता सन्तानों की उत्पत्ति होती है। मारिषा आदि अन्य पत्नियों से वनस्पतियों का जन्म होता है। सृष्टि निर्माण के असंभात्य वृतान्तों से आवृत्त कश्यप का स्वरुप भी पौराणिक होने के कारण विशेष ऐतिहासिक महत्व नहीं रखता है।

आर्यों के साथ अन्य जातियों की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परायें :-

लगभग सभी पुराण विदेशी जातियों का उल्लेख करते हैं यह विदेशी जातियां यवन, पद्वलव, शक, हूण, किरात, दरद तथा तुषार आदि हैं।[154] यह जातियां गन्धार से भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में फैलती गयीं। ऐतिहासिक दृष्टि से पुराणें में वर्णित इन जातियों का महत्व बहुत अधिक है। पुराणों में वर्णित भारत के पश्चिमोत्तर में फैली हुयी। यह जातियाँ ही फारस अफगानिस्तान तथा सुदूर पश्चिम की विदेशी जातियाँ हैं।

यहां पर यह उल्लेखनीय है कि हरिवंश में विदेशी जातियों का वर्णन पुराणों की परम्परा के अनुसार ही मिलता हैं। हरिवंश की विदेशी जातियों में यवन्, पहलव, दरद तथा तुषारों का उल्लेख है यथा–

"शकैर्यवनकाम्बोजैः पारदैः पद्ववैः सह।"[155]

विदेशी जातियों में तुषार जाति महत्वपूर्ण है। तुषार सम्भवतः ऐतिहासिक तोखरी हैं। यह जाति अफगानिस्तान से पश्चिमोत्तरी भारत में प्रवेश कर चुकी थी। तुषारों का उल्लेख महाभारत में भी है।[156] रामायण में तुषारों का उल्लेख न होने के कारण सुप्रसिद्ध विद्वान सत्यश्रवा ने उन्हें उत्तरकालीन जाति माना है।[157] लेकिन श्री सत्यश्रवा का मत प्रामाणित न होने के कारण अधिक मान्य नहीं है। अन्य पुराणों में वर्णित विदेशी जातियों से भिन्न जाति तुषारों की दिखाकर हरिवंश ने पुराणों में मिलने वाली विदेशी राजाओं की सूची में कुछ परिवर्तन कर दिया है।

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पुराणों में वणित विदेशी जातियों में हूण जाति का उल्लेख हरिवंश में नहीं मिलता। हरिवंश में इनके अभाव का कारण शायद यह है कि भारत में हूणों का आक्रमणकाल शक, पहलव तथा तुषारों के बहुत बाद में माना जाता है। हूणों का भारत में प्रथम आक्रमण छठी शताब्दी में हुआ था।[158] हरिवंश की रचना हूणों के आक्रमण के पूर्व ही हो गयी थीं। अतः हरिवंश का हूणों से अपरिचित होना स्वभाविक ही है।

हरिवंश में इन विदेशी जातियों को पर्याप्त शक्तिशाली कहा गया है। जिनको युद्ध में पराजित करना बड़े गौरव की बात थी। इन विदेशी जातियों तथा भारतीय आर्यों में पर्याप्त एकता तथा सामाजिक समरसता के लक्षण दिखाई देते है। हरिंवश में शक, यवन, पहलव दरद आदि विदेशी जातियों को क्षत्रियों का पद दिया गया है। यथा–

"शका यवनकम्बोजाः पारदाश्च विशाम्पते।

कोलिसर्पाः समहिषा दार्घाश्चोलाः सकेरलाः

सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृतः।

वसिष्ठ वचनाद् राजन् सगरेण महात्मना।"[159]

इस प्रकार शक, यवन पहलव दरद तथा तुषार आदि विदेशी जातियों को व्यापक पैमाने पर भारतीय करण किया गया जो आक्रमणकारी यहां आये ने क्रमशः अपना अस्तित्व खो बैठे तथा भारतीय समाज में घुल मिल गये। हिन्दू व्यवस्थाकारों ने वर्णव्यवस्था में उन्हें स्थान प्रदान किया। चूंकि अधिकतर विदेशी योद्धा थे अतः उन्हें क्षत्रिय वर्ण स्थान मिला। ब्राम्हणवादी समाज में उन्हें स्थान दिये जाने की व्याख्या नये ढंग से की गयी। मनुस्मृति ने उन्हें 'व्रात्य' अर्थात धर्मच्युत क्षत्रिय बताया।

चूंकि इन विदेशी जातियों के पास अपनी कोई भाषा, लिपि अथवा धर्म नहीं था, अतः उन्होंने भारतीय संस्कृति के इन तत्वों को ग्रहण किया तथा भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अभिन्न अंग बन गये।

हरिवंश पुराण का ऐतिहासिक महत्व-

पुराणों की ऐतिहासिक उपादेयता को विद्वानों ने सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया है। वायु पुराण, ब्राम्हण्ड पुराण, मत्स्य पुराण, विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण की वंशविषयक सामग्री को विद्वान ऐतिहासिक प्रमाणों के रुप में प्रस्तुत करते हैं, किन्तु हरिवंश के ऐतिहासिक महत्व की ओर कम विद्वानों का ध्यान गया है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि हरिवंश महापुराणों तथा उपपुराणों की गणना में न आने के कारण विद्वानों के पुराण विषयक अध्ययन से वंचित रह गया। महाभारत का खिल होने के कारण हरिवंश महाभारत का अध्ययन करने वाले विद्वानों की दृष्टि से भी बचा रहा।

सुप्रसिद्ध विद्वान पार्जिटर के तर्को के अनुसार वंश परम्पराओं की दृष्टि से ब्राह्मपुराण तथा हरिवंश पुराण का वायु पुराण के बाद दूसरा स्थान अवश्य विवाद का विषय है।

क्योंकि मात्र कुछ वंशों के शुद्ध अथवा अशुद्ध पाठ के आधार पर ही पुराणों के विषय को प्रामणिक अथवा अप्रमाणिक नहीं ठहराया जा सकता, बल्कि इस अध्ययन के लिये समस्त पुराण की सामान्य प्रवृत्ति का परीक्षण आवश्यक है। हरिवंश की ऐतिहासिक परम्पराओं की प्राचीनता और प्रमाणिकता पर विशद् विवेचन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस पुराण में वायु पुराण, ब्राम्हण पुराण, विष्णु पुराण, मत्स्व पुराण तथा भागवत पुराण की भांति कलियुग के राजाओं की लम्बी वंशावली नहीं है किन्तु प्राचीन राजाओं के वृत्तों का विशुद्ध रूप इस पुराण के वंश वर्णन की विशेषता है।

पुराणों से सामानता रखते हुये भी हरिवंश की ऐतिहासिक परम्परायें अपनी विशेषता रखती हैं हरिवंश के वंशक्रमों में वायु पुराण, ब्रम्हपुराण, मत्स्य पुराण तथा विष्णु पुराण के वंशक्रमों से भिन्न प्रवृत्तियां मिलती है। वायु पुराण, ब्रम्हा पुराण, मत्स्य पुराण तथा विष्णु पुराण में अतीत कालीन राजाओं के अतिरिक्त वर्तमान तथा भविष्यकाल के राजाओं का लम्बा वंशक्रम भी मिलता है। [160] परीक्षित के आगे की भविष्यकालीन वंशावली भारतीय सुव्यवस्थित इतिहास के प्राचीन राजाओं की निकटवर्ती होने के कारण अधिक महत्व रखती है। किन्तु हरिवंश में परीक्षित के उत्तराधिकारी राजाओं का बहुत छोटा और अन्य पुराणों से भिन्न वंशक्रम मिलता है। हरिवंश में परीक्षित के बाद के पांचवी पीढ़ी के राजा अजपार्श्व से इस वंश की समाप्ति हो जाती है। [161]

हरिवंश के अन्तर्गत काशी राजवंश अन्य सभी पुराणों से भिन्न रूप में दिखलायी देता है। वायु पुराण ब्राम्हाण्ड पुराण विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण प्रवर्तन के दो पुत्रों (वत्स भार्ग) के विषय में अस्पष्ट दिखलाई देते हैं। [162] हरिवंश में प्रतर्दन के दो पुत्र– वत्स तथा भार्ग से चलने वाला वंशक्रम स्पष्ट रूप से मिलता है। प्रतर्दन के पहले पुत्र वत्स के दो पुत्रों से अलग–अलग वंशक्रम चलता है। वत्स का प्रथम पुत्र वत्स भूमि है। वत्स के द्वितीय पुत्र अलर्क से यह वंश आगे बढ़ता है। भर्ग इस वंश का अंतिम राजा है। प्रतर्दन के द्वितीय पुत्र भार्ग के पुत्र भृगभूमि से वंश समाप्त हो जाता है। [163] यह वंश सभी पुराणों के वंशों से अधिक सुसम्बद्ध होने के कारण सबसे अधिक प्रामाणिक ज्ञात होता है।

सुप्रसिद्ध विद्वान किरफेल ने विविध प्रमाणों द्वारा हरिवंश के वंशविषयक तत्वों की मौलिकता सप्रमाण सिद्ध की है। हरिवंश की मौलिकता की सूचना देने के लिये उन्होंने ययाति के वृतान्त को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। ययाति का वृतान्त ब्रम्हा पुराण और

हरिवंश में मूल रूप में मिलता है इन दोनों पुराणों में ययाति का चरित्र अत्यन्त संक्षिप्त है।[164] ययाति का यही चरित्र वायु पुराण तथा ब्राम्हाण पुराण में कुछ विस्तृत हो गया है।[165] मत्स्य पुराण में यह चरित्र सबसे अधिक विस्तृत रूप में मिलता है।[166] इस चरित्र का पूर्ण विकसित रूप महाभारत में है।[167]

ययाति के चरित्र के द्वारा किरफेल महोदय ने ऐतिहासिक मूल तत्व में बाद में जोड़े गये भागों की जो क्रमागत रूपरेखा प्रस्तुत की है उससे इन सभी पुराणों की ऐतिहासिक विषय सामग्री की स्थिति का ज्ञान होता है।

हरिवंश में ययाति के चरित्र की प्राचीनता का संकेत सुप्रसिद्ध विद्वान विण्टर-नित्स ने किया है। इनके अनुसार हरिवंश में ययाति–चरित्र की संक्षिप्तता ही इस पाठ की मौलिकता का कारण नहीं है। इस वृतान्त के अन्तर्गत ययाति के नैराश्य जन्य कुछ श्लोक लगभग प्रत्येक पुराण के ययाति चरित्र में मिलते हैं। पुराणों में अक्षरशः समानता रखने वाले ये श्लोक निस्संदेश पुराणों की प्राचीनतम प्रति से संगृहीत है। विण्टरनित्स महोदय ने ययाति के इस वृतान्त का सम्बन्ध सुदूर बौद्ध जातकों से स्थापित किया है। विण्टर महोदय के ही शब्दों में–

"Only The first verse recurs literally in all the other places where the yayati legend is related. the remaming verses are found again with variations m1.85. 12-16. Hativansa. 30.16.39-1645 visnu puran 4.10, Bhagvata puran 9.19.13-15 But only in 1.75.51-52 and Harivansa 30.1642 is there any talk of union with the Brahman in the sense of the vedanta philosophy. In all other places the corresponding verses only talk of the curbing of desires as the warthy aim of the morality of asceticism and this merality is the same for buddhists and Jaimas as for the Brahmanical and the Visnuite ascetics"[168]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हरिवंश का ऐतिहासिक महत्व बहुत अधिक है। हरिवंश के कुछ वृतान्ततों नितान्त मौलिक है जबकि कुछ वृतान्त अन्य पुराणों के वृतान्तों से समानता रखते है।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. स्मिथ, बीए, दि0 अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, चतुर्थ संस्करण, आक्सफोर्ड 1924, पृष्ठ 10.
2. पाटिल, डी0आर0 कल्चरल, हिस्ट्री फाम दि वायु पुराण, (भूमिका) पृष्ठ 2.
3. जायसवाल, के0पी0, हिस्ट्री आफ इंडिया, लाहौर 1934, पृष्ठ– 33.
4. पार्जिटर, जर्नल आफ रोयल एसियाटिक सोसाइटी, लन्दन, 1918 पृष्ठ-229.
5. इंडियन ऐन्टीक्वेरी, 1893, जिल्द 12 पृष्ठ 253 .
6. वायु पुराण, 1.31.2.
7. हरिवंश पुराण , 1.1.16.
8. पार्जिटर, एफ.ई. ऐशिएंट इंडियन हिस्टोरिकल ट्रेडीसन्स, आक्सफोर्ड, 1922, पृष्ठ 24.
9. जायसवाल,के0पी0 पूर्वोद्धत पृष्ठ 32.
10. वही, पृष्ठ 24.
11. पार्जिटर,एफ0ई0 पूर्वोद्धत पृष्ठ 78.
12. जर्नल आफ वेकटेश्वर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, तिरूपति, जिल्द 1, पृष्ठ 29
13. हरिवंश पुराण, 3.1.3–16.
14. ब्रम्हापुराण, 13.123–138, वायु पुराण, अनुषंग, 37.248–252; मत्स्य पुराण, 50,63–40 विष्णु पुराण, 4.21.1–8.
15. पार्जिटर, एफ0ई0 दि डाइनेस्टीज आफ दि कलि एज, आक्सफोर्ड, 1913, पृष्ठ 112.
16. हरिवंश पुराण, 1.10.1–2.
17. वही 1.11–15.
18. वही,
19. वहीं, भागवत पुराण, 10,1–2, 12,1–8.
20. मत्स्य पुराण, 12, 15.
21. वहीं.
22. विष्णु पुराण, 4,4,112.
23. महाभारत, 1.1.215–222

24. वायु पुराण, उत्तर 37 (अनुषंग) 154–156, मत्स्य पुराण, 49,32–41 भागवत पुराण, 9. 21.18–20
25. हरिवंश पुराण, 1.20. वायुपुराण, 2 (अनुषंग) 37,104
26. महाभारत, 1.1.215–222.
27. हरिवंश पुराण, 1.20.वायुपुराण 2(अनुषंग)37.175.
28. वही 1.20.12.
29. फिक रिचर्ड सोसल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इंडिया इन बुद्धाज टाइम, (एस0के0 मित्रा द्वारा अनुवादित) कलकत्ता 1920, पृष्ठ 34.
30. हरिवंश पुरण 1,20,3–4.
31. चम्पेय जातक, दि जातक्स बाई ई0वी0 कालेज, भाग–4 1901, पृष्ठ 281–290.
32. रायचौधरी, हेमचन्द्र पोलिटिकल हिस्ट्री आफ ऐंशिएट इंडिया कलकत्ता पृष्ठ 94.
33. हरिवंश पुराण 1,20,16–34.
34. वहीं, 1,20,35.
35. वहीं , 1,20,49–53.
36. महाभारत, 1,1 215.
37. हरिवंश पुराण 1,20,11–12.
38. वहीं, 1,20, 3–143.
39. रायचौधरी, हेम चन्द्र पूर्वोद्धत, पृष्ठ-34.
40. वही पृष्ठ 82.
41. हरिवंश पुराण, 1,29, 4–5.
42. वहीं 1,29 विष्णु पुराण, 4,9,24–28 भागवत पुराण 9,19.
43. ब्राम्हण्ड पुराण, उपो0 67 1–3.
44. ब्राम्हपुरण, 11,27–31.
45. हरिवंश पुरण, 1,29.
46. वहीं, 1,29, 9–20.
47. वहीं, 1,29, 28–29.

48. वहीं, 1,29,61.

49. वहीं,1,29,73,82.

50. घोष एन0एन0 अर्ली हिस्ट्री आफ कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1935 पृष्ठ- 20.

51. रायचौधरी, हेमचन्द्र पूर्वोद्वत, पृष्ठ— 133.

52. अष्टाध्यायी, 4,1,111

53. राय चौधरी, हेमचन्द्र, दि अर्ली हिस्ट्रीआफ दि वैष्णव सेक्ट, कलकत्ता 1920, पृष्ठ 24.

54. ऐतरेय ब्राम्हण, 8—28.

55. विण्टर नित्स, एम0 हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, भाग—1 कलकत्ता 1927, पृष्ठ—201.

56. विष्णुपुराण, 4,8, 12—21.

57. ब्राम्हाण्ड पुराण, 67 (उपोद्घातः) 67—79.

58. वायु पुराण ,(अनु0) 30, 64, 75.

59. हरिवंश पुराण, 1,29, 29—34, 72—82.

60. गीता, 1,5.

61. हरिवंश पुराण, 1,29, 29—34, 72—82.

62. पार्जिटर जर्नल आफ रोयल एसियाटिक सोसाइटी, लन्दन 1918 पृष्ठ229.

63. हरिवंश पुराण, 1,32, 82—85.

64. वहीं, 1,32, 92.

65. वहीं 2, 56, 35.

66. महाभारत, 1, 58, 5—64.

67. पार्जिटर, जर्नल आफ रोयल एसियाटिक सोसाइटी, लन्दन 1914 पृष्ठ228.

68. वहीं, पृष्ठ 288.

69. पुसालकर, ए0डी0 वैदिक एज, पृष्ठ 323.

70. हरिवंश पुराण, 2,34, 3—6.

71. वहीं, 1,32, 82—100.

72. वहीं, 1,31, 3—61.

73. वहीं, 1,31, 28—30.

74. सरकार, डी0सी0, एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृष्ठ 160—161.
75. मजुमदार, आर0सी0 कारपोरेट लाइफ इन ऐंशिन्ट इंडिया, कलकत्ता, 1918 पृष्ठ 256.
76. महाभारत, 1,134, 26—30.
77. अष्टाध्यायी, 4,1, 148
78. हरिवंश पुराण, 1,31,31.
79. वहीं, 1,31,49
80. वहीं, 1,32, 16.
81. वहीं, 3,1, 8—15
82. वहीं, 3,1, 18.
83. वहीं, 1,31, 5—60.
84. महाभारत, 1,1,209—213.
85. हरिवंश पुराण, 1,32, 119—123..
86. वहीं, 1,33, 2—4.
87. वहीं, 1,33, 6—5.
88. वहीं, 1,33, 5—6.
89. वहीं, 1,29, 33—34, 69—71.
90. वहीं, 1,33,23.
91 वहीं, 1, 33, 20—23.
92. वहीं, 1,33, 47.
93. वही, 1,33, 37.
94. वहीं, 1,33, 38—45.
95. महाभारत, 1,1,209—213; 1,1, 215—222.
96. हरिवंश पुराण, 1,33, 27—28.
97. वहीं, 1,33, 26.
98. जायसवाल, के0पी0 पूर्वोद्धत, पृष्ठ—55.
99. वहीं, पृष्ठ—32.

100. वहीं, पृष्ठ–33.

101. वही, पृष्ठ–83.

102. हरिवंश पुराण, 1,33, 27–28.

103. जायसवाल, के0पी0, पूर्वोद्वत पृष्ठ–55.

104. वायुपुराण,2,32,24; ब्राम्हण्ड पुराण,(उपो0) 69,26.

105. हरिवंश पुराण, 1,54, 21–22.

106. वहीं, 1,54, 55–63.

107. पार्जिटर, एफ0ई0 जर्नल आफ रायल एसियाटिक सोसाइटी, लन्दन 1910, पृष्ठ–47.

108. हरिवंश पुराण, 1,54,22: 1,33,54–56.

109. वहीं, 133, 1–55.

110. वहीं 1,34, 1–2.

111. रामानुज स्वामी, जर्नल आफ वेंकटेश्वर ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, तिरुपति, वाल्यूम–8 नं0–1, पृष्ठ, 24–25

112. हरिवंश पुराण, 1,29, 10–27; 1,32,21.

113. रामानुज स्वामी, पूर्वोद्वत पृष्ठ–24–26.

114. विष्णु पुराण 4,11, 26–28.

115. हरिवंश पुराण 1,35,1–7.

116. वहीं, 1,36,19–30.

117. वहीं, 1,33, 52.

118. वहीं, 1,36,15.

119. वहीं, 1,37, 13–15.

120. वहीं, 1,37 पर टीका.

121. वहीं, 1,38,27–29

122. वहीं, 1,36,15.

123. वहीं, 1,36, 29–30; 371–31.

124. वहीं, 3,2,36–40.

125. रायचौधरी, हेमचन्द्र, इंडियन कल्चर,भाग—4 1918: पृष्ठ—364.

126. वहीं, पृष्ठ-366.

127. हरिवंश पुराण 3,2,40 पर नीलकण्ठ की टीका.

128. हरिवंश पुराण, 3,2, 41.

129. वहीं, 3,2, 44—45.

130. विष्णु पुराण, 4,24.

131. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग—1,संपादक—ई0जे0 रैप्सन, कैम्ब्रिज, 1922, पृष्ठ 518.

132. वायु पुराण, अनुषम. 37, 419.

133. पार्जिटर,कम्प्रेटिव एसेज वाई भण्डाकर, पूना,1917,पृष्ठ—111—112.

134. जर्नल आफ रायल एसियाटिक सोसाइटी, लन्दन,1910, पृष्ठ—15.

135. घोष, बी0के0 वैदिक एज, पृष्ठ-245.

136. हरिवंश पुराण, 1,7,8.

137. वहीं, 1,7,11.

138. वहीं, 1,7, 34.

139. जर्नल आफ रॉयल एसियाटिक सोसाइटी, लन्दन 1910,पृष्ठ—33.

140. वहीं,पृष्ठ, 43.

141. हरिवंश पुराण, 1,7, 34.

142. वहीं, 1,7,48.

143. वहीं, 1,21, 17—18.

144. वहीं, 1,27, 46—52.

145. वहीं, 1,27,42—53.

146. वहीं, 1,7,8.

147. वहीं, 1,7,34.

148. वहीं, 1-7,61.

149. वहीं, 1,7,65.

150. वहीं,. 1,7,70

151. वहीं, 1,7,76.

152. वहीं, 1,7,79.

153. वहीं, 1,7,83.

154. मत्स्य पुराण, 50,72–76: भागवत पुराण,2,4,18:2,7,46 ब्रम्ह पुराण,8,44,–50.

155. हरिवंश पुराण, 1,13,30, 34, 1,14, 3–4 12, 16–18.

156. महाभारत, 6,75,21, 8,94, 16, 5: 158, 50,

157. सत्यश्रवा, सकाज इन इंडिया, लाहौर, 1947, पृष्ठ–12.

158. मजुमदार, आर0सी0, एन एडवान्स हिस्ट्री आफ इंडिया, लन्दन, 1946, पृष्ठ–153.

159. हरिवंश पुराण, 1,14, 18–19.

160. ब्राम्ह पुराण, 13,123–138, वायु पुराण, अनु0 37, 248,-252: मत्स्य पुराण, 50,63–80, विष्णु पुराण, 4, 21, 1–8.

161. हरिवंश पुराण, 3,1, 3–16.

162– वायु पुराण, उत्तर 30,64,75: ब्राम्हण्ड पुराण, उपो 67,67,79: विष्णु पुराण, 4,8,12,–21: भागवत पुराण, 9,17,2–9.

163. हरिवंश पुराण, 1,29, 29–34, 72–82.

164. वहीं, 1,30 4–46, ब्रम्हा पुराण, 12 18–47.

165. वायु पुराण, 93 15–102: ब्राम्हण्ड पुराण, उपो. 67.

166. मत्स्य पुराण 24–42.

167. महाभारत, 1,60,62, 65–77.

168. विण्टरनित्स, एम0 हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, भाग–1 कलकत्ता 1927 पृष्ठ–380.

षष्ठ अध्याय

- सैन्धव सभ्यता में स्त्रियों की स्थिति
- ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति
- उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति
- बौद्धकाल में स्त्रियों की स्थिति
- सूत्र तथा महाकाव्य काल में स्त्रीयों की स्थिति
- नारी के प्रति सामान्य पौराणिक दृष्टिकोण
- नारी की प्रतिष्ठा जननी रुप में
- पुराणों में कन्या के प्रति विचार
- पैतृक सम्पत्ति और पुत्री का अधिकार
- स्त्री–शिक्षा
- विभिन्न अवसरों में पत्नी का सहयोग
- स्त्री गृहिणी के रुप में
- विधवा स्त्री के विषय में पुराणों के विचार
- सती प्रथा के विषय में पुराणों के विचार
- पर्दा–प्रथा के विषय में पुराणों के विचार
- हरिवंश पुराण में वर्णित स्त्रियों की सामाजिक और धार्मिक स्थिति
- कन्या के रुप में स्थिति
- शिक्षा
- विवाह
- पत्नी के रुप में स्थिति
- धार्मिक स्थिति
- सामाजिक स्थिति

हरिवंश पुराण में वर्णित स्त्रियों की सामाजिक और धार्मिक स्थिति

विश्व की विभिन्न संस्कृतियों के निर्माण में नारी का योगदान महत्वपूर्ण रहा है तथा सभी युगों में किसी भी राष्ट्र की संस्कृति का मुख्य मापदण्ड भी नारी की स्थिति ही रही है। नारी की स्थिति में होने वाले परिवर्तन प्रत्येक युग के समाज व्यवस्थाकारों के लिये चिन्तन का विषय रहे हैं। सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन के अनुरूप नारी की स्थिति में परिवर्तन हुये। इसीलिये प्रत्येक युग व्यवस्थाकारों के समक्ष नारी की स्थिति के विषय में विचार वैभिन्य स्वाभाविक था। धर्मग्रन्थों का अध्ययन करने पर नारी के सम्बन्ध में बहुधा परस्पर विरोधी बातें मिलती हैं, जिनके कारण किसी एक निष्कर्ष पर पहुंचने में कठिनाई होती हैं। देश, काल तथा स्वभाव के अनुरूप नारियाँ विभिन्न प्रवृत्तियों में संलग्न रही है। प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रशस्त एवं अप्रशस्त कार्यों में संलग्न नारियों का वर्णन अधिक किया गया है। मध्यम वर्ग की गृहणियों का उल्लेख तो बहुत कम मिलता है।

अतः प्रत्येक वर्ग की नारी की पृथक विवेचना पर ही नारी समाज की पूर्व स्थिति का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार भारतीय समाजिक व्यवस्था में भी स्त्रियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। हिन्दू समाज में उनका सम्मान और आदर प्राचीन काल से आदर्शात्मक और मर्यादायुक्त था। उनकी अवस्था पुरूषों के सदृश थी। वे अपना मनोनुकूल आत्म विकास और उत्थान कर सकती थी। उन्हें विवाह, शिक्षा, सम्पत्ति आदि में अधिकार प्राप्त थे। कन्या के रूप में, पत्नी के रूप में, तथा मां के रूप में हिन्दू परिवार और समाज में आदृत थी। और उनके प्रति समाज की स्वाभाविक निष्ठा और श्रद्धा रही है। परिवार और समुदाय में उनके द्वारा कन्या, पत्नी वधू और मां के रूप में किये जाने वाले योगदान का सर्वदा महत्व और गौरव रहा है। भारतीय धर्मशास्त्र में नारी सर्व शक्ति-सम्पन्ना मानी गयी तथा विद्या, शील, ममता, यश और सम्पत्ति की प्रतीक समझी गई। गृह की साम्राज्ञी के रूप में उसे प्रतिष्ठापित किया गया तथा घर के अन्य सदस्यों

के उसके शासन में रहने के लिये निर्देशित किया गया।

भारत की प्राचीनतम सभ्यता सैन्धव सभ्यता से भी स्त्रियों की समाज में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका का पता चलता है। सैन्धव सभ्यता के धर्म में माता देवी को सर्वोच्च पद प्रदान किया जाना उसके समाज में उन्नत स्त्री दशा का सूचक माना जा सकता है।

ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति-

ऋग्वैदिक कालीन समाज ने स्त्रियों को आदरपूर्ण स्थान दिया था। इस काल में स्त्रियों के धार्मिक तथा सामाजिक अधिकार पुरूषों के ही सामान थे। विवाह एक धार्मिक संस्कार माना जाता था। दम्पत्ति घर के संयुक्त अधिकारी होते थे। यद्यपि कहीं–कहीं कन्या के जन्म पर चिंता व्यक्त की गयी है तथापि कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहां पिता बिदुषी एवं योग्य कन्याओं की प्राप्ति के लिये विशेष धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान करते हैं। कन्या को पुत्र जैसा ही शैक्षणिक अधिकार एवं सुविधायें प्रदान की गयी थी। कन्याओं का भी उपनयन संस्कार होता था। तथा वे भी ब्रम्हचर्य का जीवन व्यतीत करती थी। ऋग्वेद में अनेक ऐसी स्त्रियों के नाम मिलते हैं, जो विदुषी तथा दार्शनिक थी और उन्होनें कई मंत्रों एवं ऋचाओं की रचना भी की थी। विश्ववारा को 'ब्रम्हावादिनी' तथा 'मंत्रदृष्ट्री' कहा गया है जिसने ऋग्वेद के एक स्त्रोत की रचना की थी। घोषा, लोपामुद्रा, शाश्वती, अपाला, इन्द्राणी, सिकता, निवावरी आदि विदुषी स्त्रियों के कई नाम मिलते हैं, जो वैदिक मंत्रों तथा स्त्रोतो की रचयिता हैं। ऋग्वेद में बृहस्पति तथा उनकी पत्नी जुहु की कथा मिलती है। बृहस्पति अपनी पत्नी को छोड़कर तपस्या करने गये किन्तु देवताओं ने उन्हें बताया कि पत्नी के बिना अकेले तप करना अनुचित है। इस प्रकार के उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि स्त्री, पुरूष की ही भांति तपस्या करने की भी अधिकारिणी थी।

महिला छात्राओं के दो वर्ग थे– ब्रम्हावादिनी तथा सधोवधू। प्रथम आजीवन धर्म तथा दर्शन की अध्येता थीं तथ द्वितीय अपने विवाह के समय तक ही अध्ययन करती थी। इस बात के भी उदाहरण मिलते हैं कि ऋग्वैदिक महिलायें दार्शनिक समस्याओं पर पुरूषों से वाद विवाद करती थी। इस काल में कन्याओं का विवाह प्रायः पन्द्रह–सोलह वर्ष की आयु में होता था और इस प्रकार उन्हें अध्ययन का पर्याप्त अवसर मिल जाता था। सामाज में सती प्रथा तथा पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। किन्तु दो दृष्टियों से इस समय स्त्री को अनुपयुक्त माना

गया—

(1) उसे सम्पत्ति का अधिकार नहीं था।

(2) वह शासन के योग्य नहीं थी।

ऋग्वैदिक युग में स्त्री को सम्पत्ति तथा शासन के अधिकारों से वंचित रखने के लिये कुछ विशेष कारण उत्तरदायी थे। इस काल में भू—सम्पत्ति का अधिकारी वह था जो शक्ति शाली शत्रुओं से बलपूर्वक उसकी रक्षा करने में समर्थ होता चूंकि यह कार्य स्त्री के वश का नहीं था अतः उसके धन सम्बन्धी अधिकारों को मान्यता नहीं मिली। इसी प्रकार असमर्थता शासन के क्षेत्र में भी रही। आर्य एक विदेशी भूमि में क्रमशः अपना राज्य स्थापित कर रहे थे। उनके शत्रुओं की संख्या अधिक थी। ऐसी स्थिति में स्त्रियों को शासन सम्बन्धी अधिकार देना उनके नवगठित राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होता। सम्भवतः इसी कारण से आर्यों ने उक्त दोनों क्षेत्रों में स्त्रियों को भागीदारी नही दी।

उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति—

उत्तर वैदिक काल में भी स्त्रियों की दशा पूर्ववत् बनी रही यद्यपि अर्थववेद में एक स्थान पर कन्या को चिंता का कारण बताया गया है—[5]

किन्तु उनकी सामान्य स्थिति संतोष जनक बनी रही। कन्या की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जात था। उसका उपनयन होता था तथा ब्रम्हाचर्य आश्रम में रहते हुये वह अध्ययन करती थी। अथर्ववेद में कहा गया है कि ब्रम्हाचर्य द्वारा ही कन्या योग्य पति को प्राप्त करने में सफल होती है।[6] विवाहित स्त्रियों को हम यज्ञों में भाग लेते हुये पाते हैं। कुछ स्त्रियों ने धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में निपुणता तथा विद्धता प्राप्त कर लिया था किन्तु समय के प्रवाह के साथ हम स्त्री शिक्षा में कुछ गिरावट पाते हैं। कन्याओं को गुरूकुल में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजने की प्रथा समाप्त हो गयी तथा घर पर ही शिक्षा देने का समर्थन किया गया। अब वे केवल अपने पिता, भाई या चाचा आदि से शिक्षा ग्रहण कर सकती थी। ऐसी स्थिति में केवल कुलीन परिवार की कन्यायें ही शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं परिणाम स्वरूप उनके धार्मिक अधिकार कम हो गये। कन्या का विवाह पहले जैसा ही वयस्क हो जाने पर होता था। कभी—कभी वे स्वयं अपना पति चुनती थीं। क्षत्रिय समाज में स्वयंवर की प्रथा थीं सती प्रथा का

आभाव था तथा विधवा होते थे पर्दा प्रथा का प्रचलन भी नहीं था यद्यपि स्त्रियों का सामाजिक समारोहों में जाना बंद हो गया था। इस काल के समाज ने भी स्त्री के धन सम्बन्धी अधिकारों को मान्यता प्रदान नहीं की थी। ब्राम्हण तथा उपनिषद ग्रन्थों के अध्ययन से भी स्त्री की संतोषजनक दशा का ज्ञान होता है। शतपथ ब्राम्हण से पता चलता है कि गृहकार्यों एवं उत्तरदायित्वों के निर्वाह में स्त्री पुरूष के सामान भागीदार होती थी। अविवाहित व्यक्ति यज्ञों तथा धार्मिक कर्मकाण्डों का अनुष्ठान करने योग्य नही था।[7] यज्ञों के अवसर पर मंत्रों के गायन का कार्य वस्तुतः पत्नी द्वारा ही सम्पन्न किया जाता था।

उपनिषद काल में हम कई महिलाओं को दार्शनिकों की श्रेणी में आगे बढ़ा हुआ पाते हैं। मैत्रेयी, गार्गी, अत्रेयी आदि के इस संदर्भ में नाम उल्लेखनीय हैं। गार्गी ने तो उस समय के प्रख्यात दार्शनिक याज्ञवल्क्य से राजा जनक की सभा में गूढ दार्शनिक प्रश्नों पर वाद–विवाद किया था।[8] इस काल की कुछ महिलाये आजीवन ब्रम्हाचर्य व्रत का अनुष्ठान करती हुई दर्शन का अध्ययन करती थीं। अनेक शिक्षित महिलायें अध्यापन कार्य का भी अनुसरण करती थी किन्तु इसके साथ–साथ ब्राम्हण ग्रन्थों मे यह भी बताया गया है कि स्त्री, पुरूष की अपेक्षा दुर्बल एवं भावुक मस्तिक की होती है तथा ब्राह्रय आकर्षणों के प्रति आसानी से लुभा जाती है इस काल में स्त्रियाँ व्यवहारिक शिक्षा के अन्तर्गत नृत्य, संगीत, गान, चित्रकला आदि की भी शिक्षा ग्रहण करती थी।[9]

बौद्धकाल में स्त्रियों की स्थिति–

बौद्धयुग में भी स्त्रियां प्रायः शिक्षित और विद्वान हुआ करती थी। विद्या धर्म और दर्शन के प्रति उनकी अगाध रूचि होती थी। बौद्ध आगमों की शिक्षिकाओं के रूप में भी उन्होंने ख्याति प्राप्त की थी। थेरीगाथा की कवियित्रियों में 32 आजीवन ब्रम्हाचारिणी और 18 विवाहित भिक्षुणियां थीं। उनमें शुभा, सुमेधा और अनोपमा उच्च वंश की कन्यायें थी। जिनसे विवाह करने के लिये राजकुमार और संम्पत्ति शाली सेठों के पुत्र उत्सुक थे।[10] भिक्षुणी खेमा उस युग की उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्री थी। जिसकी विद्धता की ख्याति दूर–दूर तक फैली थी। संयुक्त निकाय से ज्ञात होता है कि सुभद्रा नामक भिक्षुणी व्याख्यान देने में प्रसिद्ध थी। राजगृह के सम्पत्ति शाली सेठ की पुत्री भद्राकुण्डकेशा अपनी विद्या और ज्ञान से सबको आकृष्ट करती थी। ये उद्धरण इस बात के प्रमाण है कि उस युग में साधारणः स्त्रियाँ ज्ञान पिपाशु थी। तथा उनके

अन्वेषण और प्राप्ति में तल्लीन रहती थी। ब्रम्हाचर्य का जीवन'–यापन करके वे अत्यन्त मनोनिवेश पूर्वक ज्ञानार्जन करती थी। एक जातक से विदित होता है कि एक जैन पिता की चार पुत्रियों ने देश का भ्रमण करते हुये लोगों को दर्शनशास्त्र पर वाद–विवाद करने के लिये चुनौती दी थी।[11] जैन साहित्य से भी विदुषी स्त्रियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। कौशाम्बी शासन की पुत्री जयन्ता ज्ञान और दर्शन में पारंगत थी। इस प्रकार बौद्ध काल में भी स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक थी।

सूत्र तथा महाकाव्य काल में स्त्री की दशा-

सूत्रकाल में स्त्रियों की दशा पतनोन्मुख हो गयी। कन्या का जन्म इस काल में अभीष्ट नहीं था। स्त्रियों का उपनयन संस्कार बन्द हो गया तथा विवाह के अतिरिक्त उनसे सम्बन्धित अन्य संस्कारों में वैदिक मंत्रो का उच्चारण नहीं होता था। कन्याओं के विवाह की आयु भी घटा दी गयी जिससे उनका विधिवत् शिक्षा प्राप्त कर पाना कठिन हो गया। ईस्वी सन् के प्रथमार्द्ध तक अधिकांश कन्याओं का उपनयन औपचारिकता मात्र रह गया तथा इसे विवाह के कुछ पूर्व सम्पन्न कर दिया जाता था। द्वितीय शदी तक इसे पूर्णतया बन्द कर दिया गया तथा अब विवाह को ही उपनयन का विकल्प मान लिया गया। इस सन्दर्भ में मनु का कथन है कि पति ही कन्या का आचार्य, विवाह ही उसका उपनयन संस्कार, पति की सेवा ही उसका आश्रम–निवास और गृहस्थी के कार्य ही दैनिक धार्मिक अनुष्ठान थे। यथा–

"वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारों वैदिको मतः।

पति सेवा गुरौर्वासौ गृहार्थोग्नि परिक्रिया।"[12]

स्मृतिकारों ने व्यवस्था दी कि बालिकाओं के उपनयन में वैदिक मंत्र नहीं पढ़ना चाहिये।[13] कालान्तर में स्त्रियों को शुद्रों की ही तरह वेदों के पठन–पाठन और यज्ञों में सम्मिलित होने के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया। वस्तुतः शिक्षण संस्थाओं और गुरुकुलों में जाकर ज्ञान प्राप्त करना कन्या के लिये। अतीत की बात हो गयी थी। वह केवल माता–पिता, भाई–बन्धु आदि से अपने घर पर ही शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। किन्तु इसके बावजूद धनी–मनी एवं कुलीन परिवारों में कन्याओं को शिक्षा दी जाती थी। राजपरिवार की महिलायें भी शिक्षित होती थीं। उन्हें ललितकलाओं यथा संगीत, नृत्य, चित्र माल्गकारी आदि की विधिवत् शिक्षा दी

जाती थी।

सूत्रों के काल में स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया। मनु ने मत व्यक्त किया कि स्त्री स्वतन्त्रता के योग्य नहीं है। बचपन में पिता, युवास्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र उसकी रक्षा करते हैं यथा–

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।

रक्षान्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्यमर्हति।"[14]

ईसापूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर तीसरी शताब्दी ईस्वी तक का समय उत्तरीभारत में विदेशी आक्रमणों का काल रहा जिससे समाज में भारी अव्यवस्था फैल गयी। इसने स्त्रियों की स्थिति को प्रभावित किया। नियोग तथा पुनर्विवाह की प्रथायें बन्द हो गयीं। स्त्रियों के लिय पुनर्विवाह करने के स्थान पर सन्यास द्वारा मोक्ष प्राप्त करने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। समाज में सतीप्रथा का भी प्रचलन प्रारम्भ हो गया और इसे एक महान धार्मिक यज्ञ बताया गया। इससे स्त्रियों की दशा और खराब हो गयी। किन्तु एक दिशा में स्त्री की दशा में सुधार हुआ वैदिक काल में उसे सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्रदान नहीं किये गये थे। अब पुनर्विवाहों के अभाव में विधवा एवं पुत्रहीन स्त्रियों की संख्या में वृद्धि हुई। अतः उनके पोषण एवं विवाह के निमित्त व्यवस्थाकारों ने उनके धन सम्बन्धी अधिकारों को मान्यता देना प्रारम्भ किया। क्रमशः उनका यह अधिकार मान्य हो गया।

नारी के प्रति सामान्य पौराणिक दृष्टिकोण :-

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पुराणों के उद्वरण एवं उदाहरण नारी को सृष्टि तथा सामाजिक सन्तुलन का कारण भूत आवश्यक अंग प्रतिपादित करते हैं। उदाहरणार्थ मत्स्य-पुराण में कहा गया है कि सृष्टि का संचालन स्त्री के बिना सम्भव नहीं है यथा–

"स्त्रिया विरहित सृष्टिर्जन्तूनां नोपपद्यते।"[15]

इसी प्रकार विष्णु पुराण में मारिषा नामक कन्या का सम्बन्ध विश्वस्त्रष्टा प्रचेताओं से दिखाकर उसे वंश–वर्द्धन में कारणभूत बताया गया है यथा–

"मारिषा नाम नाम्नैषा............भार्या वोडस्तु वंशवर्द्धिनी।"[16]

वायु और ब्राम्हण्ड पुराणों के प्रसंग में स्त्रीरुप धारिणी वसुन्धरा (पृथ्वी) वैन्य को

निर्देशित करती है कि जनजीवन के अस्तित्व में उसकी कारणभूत प्रतिष्ठा है यथा–

"मदृते च विनश्येयुः प्रजाः पार्थिवसत्तम।"[17]

इस प्रकार नारी के सम्बन्ध में पुराणों का दृष्टिकोण सामान्यतः उदार है।

नारी की प्रतिष्ठाः जननी रुप में :-

नारी का सर्वाधिक आदरणीय रुप मां का होता है तथा माता के वचन का पालन ही आदर्श पुरुष के लिये धर्म है। इसी तथ्य की पुष्टि विभिन्न पुराणों के उद्धारणों से होती है। विष्णुपुराण में समस्त संसार के रक्षक को धारण करने वाली देवकी को देवी की उपाधि दी गयी है। जिसमें जगत के भावी मंगल की आशायें सन्निाहित थीं। यथा–

"त्वं सर्वलोक रक्षार्थमवतीर्ण महीतले।

प्रसीद देवि जगतश्शं शुभे कुरु।

प्रीत्या तं धारयेशानं धृतं येनाखिलं जगत्।"[18]

इसी प्रकार वायु और ब्राम्हण्ड पुराण में कश्यप की पत्नियां सौभाग्यशालिनी उद्घोषित की गयी हैं। क्योंकि इनमें सम्पूर्ण लोक का मातृत्व प्रतिष्ठित था यथा–

"यास्तु शेषास्तदा कन्याः प्रतिजग्राह कश्यपः।

चतुर्दश महाभागाः सर्वास्ता लोकमातरः।।"[19]

मत्स्यपुराण में उमा को जगत–जननी कहा गया है जिनमें कर्तिकेय के रुप में संसार का सौभाग्य समाहित था यथा–

"त्वमस्य जगतो माता जगत्सौभाग्य देवता।"[20]

वायु और ब्राम्हण्ड पुराण में माता की रक्षा धर्म–प्रेरित कर्तव्य बताया गया है।[21] मत्स्य पुराण के अनुसार गर्भधारण तथा परिपोषण करने से माता का स्थान श्रेष्ठ है। पतित होने पर भी उसका गौरव हास को नहीं प्राप्त होता। अतएव उसका परित्याग किसी भी दशा में उचित नहीं है। यथा–

"पतिता गुरवस्त्याज्या न तु माता कथञ्चन।

गर्भधारण पोषाभ्यां तेन माता गरीयसी।"[22]

स्त्री-अवध्यता :-

पुराणों में स्त्री को अवध्य घोषित किया गया है जहां कभी भी स्त्रीवध का

उल्लेख आया भी है उसके प्रति अश्रद्धा एवं तिरस्कार की भावना व्यक्त की गयी है। वायु और ब्राम्हण्ड पुराण में वर्णन आता है। कि जब कंस देवकी का वध करने को उघत हुआ, उस समय वसुदेव ने स्त्री–अवध्यता पर उसका ध्यान आकर्षित किया था। यथा–

"न स्त्रियं क्षत्रियों जातु हन्तुमर्हति कश्चन्।"[23]

पृथ्वी का वध करने के लिये उघत वैन्य के विषय में यह आख्यात है कि गाय के रुप में पृथ्वी ने उन्हें रोकते हुये कहा कि स्त्री का वध करना अधर्म है।[24] इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि स्त्री अवध्यता का प्रतिपादन वैदिक काल में ही हो चुका था। और यही परम्परा उत्तरकाल में भी संजीव थी। विष्णु स्मृति एंव मनुस्मृति में स्त्री–हन्ता को राजदण्ड का भागी माना गया है। यही कारण है कि पुराणों में जहाँ कही भी स्त्री वध का उल्लेख आया है इसके प्रति अश्रद्धा एवं गर्हणा व्यक्त की गयी है। उदाहरणार्थ ब्राम्हण्ड पुराण में उल्लेख मिलता है कि परशुराम ने अपनी जननी का वध किया था। पर इस कथा में केवल पितृ भाक्ति की पराकाण्ठा की व्यंजना सन्निहित हैं।[25] किन्तु सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से उस कुकृत्य का घोर विरोध हुआ था। जिस समय परशुराम तपस्या कर रहे थे, उन्हें भर्त्सना पूर्व शब्दों में ऋषियों ने धिक्कारा था तथा उनके पातक कर्म को गुरु और ब्राह्मण की हत्या की कोटि में रखा था। यथा–

"गुरुस्त्री ब्राम्हत्योत्थपातकक्षपणय च।
तपश्चरसि नानेन तपासा तत्प्रणश्यति।
कृत्वा मातृवंघ घोरं सर्वलोक विगर्हितम्।"[26]

पुराणों मे कन्या के प्रति उदार विचार :-

पुराणों में कन्या के प्रति उदार विचार प्रस्तुत किये गये हैं। विष्णु पुराण में मारिषा नामक कन्या को रत्न की कोटि में रखा गया है इसमें उल्लेख मिलता है कि उसका संवर्द्धन राजा सोम ने स्वयं अपनी किरणों से किया था।[27] मत्स्य पुराण में उल्लेख मिलता है कि शीलसम्पन्न कन्या दस पुत्रों के समान है। यथा–

"दशपुत्रसमा कन्या या न स्याच्छीलवर्जिता।"[28]

कन्या के प्रति पिता के स्नेह की पराकष्ठा का वर्णन देवयानी के विषय में

मिलता है। देवयानी को वृषपर्वा की कन्या ने अपमानित किया था। देवयानी आचार्य शुक्र की दयिता कन्या थी। अतः उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। उनका क्रोध उस समय शान्त हुआ जब कि देवयानी के प्रसन्नार्थ वृषपर्वा ने अपनी कन्या को उसी दासी बनाया।[29]

पैतृक सम्पत्ति और पुत्री का अधिकार :-

पुराणों में पुत्र के न होने पर पैतृक सम्पत्ति में पुत्री का अधिकार बताया गया है। विष्णु पुराण ने एक स्थल पर कन्या के विषय में पैतृक धन पर प्रकाश डाला है। स्थमंतक मणि के विषय में बताया गया है कि यह मणि सत्रजित् को सूर्य से मिली थी। सत्रजित् की मृत्यु के उपरान्त वह मणि कलह का कारण सिद्ध हुयी किन्तु जब मणि के अधिकारी का निर्णय किया गया तो उस पर सत्रजित् की पुत्री सत्यभामा का अधिकार दिखाया गया।[30] इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि पुराण में कहीं भी सत्यभामा के किसी भ्राता का उल्लेख नहीं हैं। लेकिन हिन्दू धर्मशास्त्रों में पुत्री का पैतृक धन पर इस प्रकार का अधिकार कम स्थलों पर स्वीकृत किया गया है। इस सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य का कथन है कि पुत्रहीन मनुष्य के मरने पर उसके धन के अधिकारी पत्नी, कन्या, पिता, माता आदि होते हैं। ऐसे धन पर आनुक्रमिक प्राथमिकता आज्ञप्त ही गयी है। अर्थात् पत्नी के बाद उस पर कन्या का अधिकार होता है।[31] वस्तुतः ऐसी परम्परा वैदिक काल में ही प्रतिष्ठित हो चुकी थी। उदाहरणार्थ– ऋग्वेद में उषा की उपमा उस नारी से दी गई है, जो भ्राता के अभाव में पिता के धन को प्राप्त करती है।[32]

पुराणो में ऐसे उद्धरण भी प्राप्त होते हैं जिनसे कन्या की दयनीय दशा व्यक्त होती है। मत्स्यपुराण के अनुसार कन्या की अवस्था शोचनीय होती है। वह अपने पिता के दुख को बढ़ाती है। निर्धन पिता को दुःख देना तो उसके लिये स्वाभाविक बात हैं। धनवान् पिता भी कन्या के कारण चिन्ता मुक्त नहीं रहते।[33] शास्त्रों में पुत्र का ही जन्म प्रशस्य माना गया है क्योंकि पुत्र ही पिता को नरक से बचाता है।[34] विष्णु पुराण से ज्ञात होता है कि कन्या को सामान्य धन के समान समय–समय पर सम्मानीय अतिथियों को समर्पित किया जाता था। जाम्ववान के विषय में वर्णन मिलता है कि उसने अपनी कन्या को अर्ध्य के रुप में श्रीकृष्ण को समर्पित किया था। यथा–

"जाम्बवती नाम कन्यां.........अर्घ्यभूतां ग्राहयामास।"[35]

पुराणों के अतिरिक्त ऐसी धारणा अन्य ग्रन्थों में भी मिलती है कि पुत्राभाव में ही पिता के धन पर पुत्री का अधिकार सम्भव था। सम्माननीय व्यक्ति को उपहारार्थ कन्या का प्रदान किया जाना तो जैसे प्रचलन–सा था। प्रयाग प्रशस्ति से विदित होता है कि विजित नरेश अपनी कन्याओं को समुद्रगुप्त के उपहार के रुप में देने को सदैव उत्सुक रहा करते थे।[36]

स्त्री शिक्षा :-

पुराणों में वर्णित स्त्री–शिक्षा का वर्गीकरण दो वर्गो में किया जा सकता है।

1. आध्यात्मिक और
2. व्यावहारिक।

आध्यत्मिक विद्या से परिचित जिन कन्याओं के नाम विभिन्न पुराणों में मिलते हैं उनके नाम निम्नवत है वृहस्पति भागिनी[37] अपर्णा, एकपर्णा औ एक पाटला[38] मेना और धारिणी [39] संनति[40] शतरुपा।[41]

पुराणो में जिन नारियों के विषय में तपश्चर्या का उल्लेख मिलता है उनका विवरण निम्नवत् है उमा [42] पीवरी[43] धर्मव्रता [44]

उपुर्यक्त पौराणिक उद्धरणों से कन्याओं के अध्यात्म विद्या से परिचय एंव योग और तपस्या के परिचायक साधना का पता चलता है। इसमें सन्देह नहीं है कि उन कन्याओं को इसका अवसर नहीं मिल पाता था जिनका अल्पायु में ही विवाह हो जाता था लेकिन सभ्य और सुसंस्कृत परिवार की कन्यायें विशेषतः ऋषिकन्या और आचार्य कन्या अधिक समय तक ब्रम्हचर्य व्रत का पालन करती थीं। बाल्यकाल और युवास्था की अन्तर्वर्ती अवधि में ब्रह्मचर्यव्रत अर्थात ब्राह्म-विद्या के विकास के अनुपालन द्वारा वे अपने जीवन की पूर्व पीठिका को सुयोग्य बनाती थी। [45] तपस्या के अतिरिक्त बालिकायें वेदाध्ययन भी करती थीं यह कार्य उनके घर पर ही सम्पन्न होता था। ऐसी कन्या को ब्रह्मवादिनी की संज्ञा प्रदत्त थी।[46]

व्यवहारिक शिक्षा के अन्तर्गत स्त्रियों को नृत्य–संगीत, [47] चित्रकला[48] एवं युद्धकला[49] की शिक्षा दी जाती थी।

यद्यपि उपर्युक्त उद्धरणो से स्त्री–शिक्षा का पता चलता है तथापि पुराणो में ही ऐसे उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। जहां स्त्री–शिक्षा के प्रति उपेक्षा प्रकट की गई है। मत्स्य पुराण

में कहा गया है कि ब्रह्म ने शास्त्र अध्ययन का अधिकार स्त्रियों को नहीं दिया है अतः उनके वचन में स्वाभाविक दीनता रहती है यथा–

"स्त्रीजातिस्तु प्रकृत्यैव कृपणा दैन्य भाषिणी।

शास्त्रालोचन सामर्थ्य मुज्झितं तासु वेधसा।।"[50]

इसी प्रकार नागराज की पत्नियां विष्णु पुराण में श्रीकृष्ण से कहती है। कि स्त्री होने के कारण वे सर्वव्यापक परमेश्वर का रुप वर्णन करने में असमर्थ थीं।[51] अन्यत्र कहा गया है कि स्त्री को विश्वदेव की पूजा बिना मन्त्रोचारण के करना चाहिये।[52] मनुस्मृति का भी मत है कि पत्नी को बिना मन्त्र के बलि–आहरण करना चाहिये।[53]

विभिन्न अवसरो में पत्नी का सहयोग :-

विष्णु पुराण में पत्नी को सधर्मचारिणी की संज्ञा प्रदान की गयी है, जिसके साथ गृहस्थ–धर्म का पालन करने से महानफल की प्राप्ति होती है। यथा–

"सधर्मचारिणी प्राप्य गार्हस्थ्यं सहितस्तया.........महाफलम्।" [54]

इसी प्रकार ब्राह्माण्ड पुराण में मातंग की पत्नी को सधर्मिणी की उपाधि दी गयी है।[55] पुराणों में याज्ञिक अनुष्ठान में भी भार्या का सहयोग आवश्यक बताया गया है। उदाहरणार्थ वायु पुराण में कहा गया है कि पुष्कर क्षेत्र में सम्पन्न कश्यप के अश्वमेघ यज्ञ में दिति पत्नी के रुप में उनके समीप बैठी थीं यथा–

"अन्तर्वत्नी दितिश्चैव पत्नीत्वं समुपागता।"[56]

इसी प्रकार के उद्वरण बाह्मण्ड पुराण तथा मत्स्य पुराण में भी मिलते हैं।[57] यज्ञेतर धार्मिक अनुष्ठानों में भी पत्नी का सहयोग आवश्यक बताया गया है। ब्राह्मण्ड पुराण में कहा गया है कि ब्राह्मण्ड विष्णु और महेश सपत्नीक देवी की उपासना करते हैं। यथा–

"एनामेवार्चयन्त्यन्ये सर्वे श्रीदेवतां नृप।

ब्राम्ह विष्णु महेशाघाः सस्त्रीकाः सर्वदा सदा।"[58]

वायु पुराण के अनुसार श्राद्ध के अवसर पर अग्नि का आवाहन सपत्नीक करना चाहिये।[59] यहां तक कि राजत्व और ब्रह्मत्व की प्रतिष्ठा में पत्नी का सहवास आवश्यक बताया गया है। ब्राह्मण्ड पुराण में श्रुति को प्रमाण मानते हुये कहा गया है कि ऐसे महापुरुष का

राज्याभिषेक करना चाहिये, जो सपत्नीक हो।[60] मत्स्य पुराण में दान के सभी अवसरों पर दानाधिकारी सपत्नीक ब्राम्हण का होना अवश्यक बताया गया।[61]

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि धार्मिक क्रियाओं के पत्नी–सहित सम्पादन की परम्परा वैदिक काल में ही प्रचलित एवं प्रतिष्ठित हो चुकी थी। ऋग्वेद के एक सूक्त में पत्नीयुक्त होकर अग्नि की आराधना करने का वर्णन मिलता है।[62] तैत्तिरीय ब्राह्मण में पति–पत्नी का संयोग सत्कर्म का कारण बताया गया है जिसके कारण वे यज्ञ की धुरी में युक्त होते हैं।[63] यह परम्परा कालान्तर में भी गतिशील बनी रही। मनुस्मृति के अनुसार स्त्री का यज्ञ पति के साथ सफल होता है।[64] पत्नी शब्द की पाणिनीय व्युत्पति के अनुसार स्त्री को तभी पत्नी कहा जाता है, तब वह पति के साथ यज्ञ संयुक्त होती है।[65]

स्त्री गृहिणी के रुप में :-

पुराणों में गृहिणी के रुप में स्त्री को सम्मानजनक स्थान दिया गया है। विष्णु पुराण में वर्णन आता है कि जब ऋभु निदाघ के घर उसकी परीक्षार्थ आये थे, उस समय उसने उन्हे स्वादिष्ट अन्न से सन्तुष्ट करने के लिये अपनी गृहस्वामिनी से परामर्श लिया था इसी पुराण में अन्यत्र वर्णित है कि कुटुम्बिनी यशोदा एक ओर कृष्ण के चंचल कार्यकलाप को रोकती थीं। तथा दूसरी ओर गार्हस्थ्योचित कार्यो को भी चलाती थी। यथा–

"हे हे शालिनि मद्गेहे यत्किंचिदतिशोभनम्।
भक्ष्योपसाधन मृष्टं तेनस्यान्नं प्रसाधय।।
यदि शक्नोषि गच्छ त्वमति चंचलचेष्टित।
इत्युक्त्वाथ निंज कर्म सा चकार कुटुम्बिनी।।"[66]

इस प्रकार आदर्श गृहिणी के रुप में स्त्री का कर्तव्य गृहस्थ–जीवन को सुखी बनाना था, जिसका प्रतिष्ठापन वैदिक युग में ही हो चुका था। उदाहरणार्थ– अर्थवेद में स्त्री को गृह–सम्राज्ञी कहा गया है यथा–

"यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं साम्राज्ञ येघि पत्युरस्तं परेत्यच।।"[67]

कालान्तर में भी यही परम्परा चलती रही।

विष्णु पुराण में स्त्री का परम् कर्तव्य पति–सेवा बताया गया है। [68] मत्स्य पुराण के अनुसार–पत्नी का भाग्य पति है। उसका जीवन और धन पति में प्रतिष्ठित है अनेक पुण्यों के उपरान्त वह पति प्राप्त करने में सफल होती है।[69] वायु पुराण में मान्धाता नृप की पत्नी बिन्दुमती के विषय में वर्णन आता है कि रुपवती और पति–परायणा होने के कारण वह संसार में अद्वितीय थी।[70] इस प्रकार पत्नीत्व की मर्यादा पति–परिचर्या में केन्द्रित थी। इसका सूत्रपात वैदिककाल में ही हो चुका था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सुकन्या नामक कन्या अपने बृद्व पति च्यवन ऋषि की आजीवन अनुवर्तिनी होने के लिये वचनबद्ध हुयी थी।[71] इसी तथ्य का समर्थन उत्तरकालीन ग्रन्थों में भी किया गया है उदाहरणार्थ– रामायण में पति को नारी की एकमात्र गति बताया गया है। [72] महाभारत में शकुन्तलता के आख्यान में कहा गया है कि पति के द्वारा तिरस्कृत होने पर भी पत्नी को पति के प्रतिकूल नहीं चलना चाहिये।[73] भानुगुप्त के एरण अभिलेख में पति के प्रति भक्ति रखने वाली गोपराज की पत्नी का उल्लेख हुआ है। [74]

पुराणों में ऐसे भी उद्धरण मिलते हैं जहां पत्नी को उनका पति प्राणों से भी बढ़कर समझता है। धर्ममूति राजा के प्रसंग में मत्स्य पुराण में कहा गया है कि वे अपनी पत्नी को प्राणों से भी बढ़कर समझते थे। [75] वायु पुराण के अनुसार शंकर के लिये उनकी पत्नी प्राणो से भी प्रिय थी। यथा–

"एवमुक्त्वा तु भगवान्पत्नीं प्राणैरपि प्रियाम्।"[76]

यद्यपि पुराणों के उपर्युक्त उद्धरणों में पत्नी की उन्नत दशा का चित्रण किया गया है। किन्तु पुराणो में ही ऐसे उद्धरणों का अभाव नहीं है। जिनसे उनके जीवन की संकीर्ण झांकी भी व्यक्त होती है। मत्स्य पुराण के अनुसार दास के समान भार्या भी निर्धन है। वह जो कुछ प्राप्त करती है, उस पर उसका स्वत्व नहीं रहता। यथा–

"त्रय एवाधना राजन्भार्या दासस्तथा सुतः।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम्।।"[77]

इसी प्रकार विष्णु पुराण में स्त्री का वर्णन शूद्र के साथ करते हुये कहा गया है कि द्विज की सेवा करने वाले शूद्र के समान स्त्री भी पति की सेवा करने से अनायास ही धर्मार्जन करती है। यथा–

"शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषातत्परैर्द्विजसत्तमाः ।

तथा स्त्रीभिरनायासात्पतिशुश्रूषयैव हि।।"[78]

पुराणों में इन व्यवस्थात्मक उद्धरणों के अतिरिक्त ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं। जिनसे स्त्री जीवन की दुर्दशा पर भी प्रकाश पड़ता है। विष्णु पुराण में तपस्या को नष्ट करने वाली स्त्री को कण्डु ऋषि मोह–मंजूबा की संज्ञा देते है। [79] इसी पुराण में अन्यत्र तपस्यार्थ उद्यत नृप ययति स्त्री को सुवर्णादि उपभोगों के अन्तर्गत रखते हुये कहते हैं कि इससे केवल तृष्णा बढ़ती है, जिसका परित्याग करना अपेक्षित है। यथा–

"यत्पृथित्यां ब्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।

एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मातृष्णां परित्यजेत्।।"[80]

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पूर्वगामी अनुच्छेद में जिन उद्धरणों का उल्लेख किया गया है उन्हे सामान्य स्त्री दशा के लिये प्रमाण नहीं माना जा सकता। एक तो पुराणों मे ऐसे उद्धरणें की संख्या कम है, दूसरे ये प्रायः विशेष परिस्थितयों से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार के विवरण अन्य ग्रन्थों में भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ ऋग्वेद में एक स्थल पर स्त्रियों का सालवृक का हृदय कहा गया है जिनकी मित्रता अनुचित मानी गयी है। यथा–

"न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालवृकाणां हृदयान्येता।"[81]

मैत्रायणी संहिता में स्त्री को एक स्थान पर मिथ्या का मूर्तिमान् रुप कहा गया है।[82] मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में भी स्त्री और शूद्र को एक ही कोटि में रखते हुये कहा गया है कि द्विज को तीन बार आचमन करना चाहिये, पर स्त्री और शूद्र को एक ही बार।[83] स्त्रियो के विषय में इसी प्रकार के अनुदार विचार यत्र–तत्र अन्य साहित्यिक ग्रन्थों में भी मिलते हैं।

विधवा स्त्री के विषय मे पुराणो के विचार :-

पुराणों में विधवा स्त्री की हीनदशा से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के विचार मिलते हैं। ऐसे विचार पुराणो में कहीं तो पौराणिक व्यवस्था के रुप में मिलते हैं। और कहीं

पौराणिक आख्यान के रुप में। उदाहरणार्थ–विष्णु पुराण में मारिषा की कथा वर्णित है, जो बाल्यकाल में ही विधवा हो गई थी। इस पुराण में मारिषा के लिये मन्दभागिनी शब्द विशेषण के रुप में प्रयुक्त किया गया है, जिसका जन्म विफल था। यथा–

"भगवन्बाल वैधव्याद् वृथाजन्माहमीद्दशी।

मन्दभाग्या सम्रुद्भूता विफला च जगत्पते।।"[84]

इसी पुराण में अन्यत्र वासुदेव के शौर्य वर्णन में जगत को परिकंपित करना तथा शत्रु–स्त्रियों को विधवा बनाना एक ही कोटि में रखा गया है।[85] रेणुका की कथा का वर्णन करते हुये ब्राम्हण पुराण में कहा गया है कि वैधत्य, दुःख का वह प्रकार है, जो असह्य है यथा–

"रुदती बत वैधव्यशंकहतचेतनाम्।

असहादुःखं वैधत्यं सहमाना कथंपुनः।।[86]

इसी पुराण में अन्यत्र कामदेव से विहीन रति के जीवन को अभव्य कहा गया है।[87] विधवा स्त्री के रहन–सहन के विषय में मत्स्य पुराण में कहा गया है कि विधवा अपने आभूषणों का परित्याग करती है। पुराणकार ने विधवा के म्लान वस्त्र एंव केशों का भी उल्लेख किया है यथा–

"नारी याऽभर्तूकाडकस्मात्तनुस्ते व्यक्तभूषणा।

न राजते तथा शक्र म्लानवस्त्र शिरो कहा।।"[88]

ब्राह्माण्ड पुराण में कहा गया है कि वैधत्य के कारण रति ने आभूषणों को उतार दिया था तथा उसके केश बिखरे हुये थे।[89]

पुराणों में विधवा स्त्री की दयनीय दशा का वर्णन किया गया है। मत्स्य पुराण में विधवा नारियों को दीन और अनाथों की श्रेणी में रखते हुये कहा गया है कि इनकी रक्षा करना राजा का परम् कर्तव्य है।[90] इसी प्रकार विधवा स्त्री द्वारा सम्पन्न धार्मिक क्रियाओं के सन्दर्भ में मत्स्य पुराण में विधवा के व्रत का उल्लेख किया गया है जिसका पालन करने से उसे मुक्ति मिलती है।[91] इसी प्रकार अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने वालों में विधवा की भी गणना की गयी है।[92]

पुराणो में विधवा विवाह के प्रचलन के संकेत नहीं मिलते। मत्स्य पुराण में कहा गया है कि सावित्री के भावी पति की मृत्यु–सूचना उसके पति भद्रराज को मिल चुकी थी। अतएव कन्या का विवाह एक ही बार होता है, इस नियम ने उन्हें चिन्ताकुल कर दिया था।[93] विष्णु पुराण के अनुसार मारिषा नामक कन्या का जन्म बाल–वैधव्य के कारण व्यर्थ हो गया था। अतएव वह भावी जन्म में ही श्लाघनीय पति के लाभार्थ उत्सुक रहती थी यथा–

"भगवन्बालवैधव्याद् वृथाजन्माहमीदृशी।

भवन्तु पतयः श्लाध्या मम जन्मनि जन्मनि।।"[94]

विधवा की दयनीय दशा का वर्णन पुराणों के अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी मिलता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में एक स्थल पर मरुत की गति से प्रकंपित पृथ्वी की तुलना पति वियुक्ता नारी से की गई है। [95] महाभारत में अनेक पुत्रों से युक्त होने पर भी विधवा का जीवन शोचनीय माना गया है।[96] मनुस्मृति के अनुसार पति के मरने पर स्त्री को चाहिये कि वह पर पुरुष का नाम भी न ले।[97] पुराणों का विधवा की स्थिति विषयक वर्णन भी इसी व्यवस्था से साम्य रखते हैं। इसके विपरीत पुराणों का वर्णन उन स्मृतियों की व्यस्था से विरोध रखता है जिनमें पति की नष्ट, मृत, प्रव्रजित, नपुंसक तथा पतितावस्थाओं मे स्त्री को पुनर्विवाह की अनुमति दी गई है।

सती प्रथा के विषय मे पुराणो के विचार :-

पुराणों में सती प्रथा के प्रचलन तथा निषेध दोनों से ही सम्बन्धित उल्लेख प्राप्त होते हैं विष्णु पुराण में कहा गया है कि श्रीकृष्ण की मृत्यु के उपरान्त रुक्मिणी आदि रानियों ने उनके मृत देह का आलिंगन करते हुये अग्नि में प्रवेश किया था। यथा–

"अष्टौ महिष्यः कथिता रुक्मिणी प्रमुखास्तु याः।

उपग्रह हरेर्देहं विविशुस्ता हुताशनम्।।"[98]

काशिराज की कन्या के प्रसंग में विष्णु पुराण में अन्यत्र वर्णन आता है कि अपने पति को पुनर्जन्म में भी प्राप्त्यर्थ उसने चिता पर उसका साथ दिया।[99] ब्राह्मण्ड पुराण के अनुसार रेणुका ने अपने पिता को मृत पाकर भावी अपमान से रक्षार्थ सती होने का निश्चत किया था।[100] उपुर्यक्त उद्धरणो के साथ–साथ पुराणों में कुछ ऐसे उद्धरण भी मिलते हैं जहाँ सती–प्रथा का

निषेध किया गया है। मत्स्य पुराण के अनुसार कामदेव के भस्म होने पर रति मृत्यु की शरण लेना चाहती थी, परन्तु भगवान शंकर के आदेश से उसे इस निश्चत को त्यागना पड़ा।[101]

विष्णु, वायु और ब्राह्मण्ड पुराणें में कहा गया है कि राजा बाहुकी मृत्युपरान्त उसकी महिषी ने सती होने का निश्चत किया, परन्तु उस समय वही गर्भवती थी। ऐसी स्थिति में और्व मुनि के आदेशानुसार उसे स्वानिश्चत को बदलना पड़ा।[102]

पर्दा-प्रथा के विषय मे पुराणों के विचार :-

सती प्रथा के समान ही पुराणों में पर्दा–प्रथा के अप्रचलन एवं प्रचलन दोनां से ही सम्बन्धित उद्वरण मिलते हैं। पर्दा प्रथा के अप्रचलन के प्रमाण हमें पुराणों के निम्न उद्वरणों से प्राप्त होते हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार–जिस समय राजा निमि अपनी स्त्रियों के साथ घ्रूत–क्रीड़ा कर रहे थे, वहां वसिष्ठ ऋषि भी विद्यमान थे, लेकिन स्त्रियों ने किसी प्रकार का पर्दा नहीं किया था। यथा–

"निमिर्नाम सह स्त्रीभिः पुरा घ्रूतमदीव्यत।

तत्रान्तरेऽभ्याजगाम वसिष्ठो ब्रह्मसम्भवः।।"[103]

विष्णु पुराण में वर्णन आता है कि कंस ने जिस स्थान पर मल्लयुद्ध को आयोजन किया था, वहां अन्तःपुर एवं नागरिकों की स्त्रियां तथा वरांगनायें भी विद्यमान थीं। यथा–

"अन्तः पुराणा मंचाश्त तथान्ये परिकल्पिताः।

अन्ये च वारमुख्यानामन्ये नगर योषिताम्।।"[104]

किन्तु उपर्युक्त उद्वरणों के साथ–साथ पुराणों में ही कुछ ऐसे उद्वरण भी प्राप्त होते हैं। जिनसे पर्दा–प्रथा के विद्यमान होने का संकेत मिलते हैं उदाहरणार्थ–मत्स्य पुराण में कहा गया है कि राजा ययाति की स्त्रियों का दर्शन (मनुष्यों की बात ही नहीं) चन्द्रमा, इन्द्र, वायु, यम तथा वरुण भी नहीं कर सकते थे। यथा–

"सोमश्चेन्द्रश्य वायुश्च यमश्च वरुणश्च वा।

तव वा नाहुष गृहे कः स्त्रियं द्रष्टुमर्हति।।"[105]

इसी पुराण में अन्यत्र वर्णित है कि हिमवान की पत्नी जब नारद के सामने

आयी, उस समय उसने मुंह पर घूंघट डालकर अपनी प्रणामांजलि अर्पित की थी। यथा–

"ववन्दे गूढवदना पाणिपद्मकृतांजलिः।"[106]

इस प्रकार उपुर्यक्त पौराणिक स्थलों से पर्दा–प्रथा के निषेध तथा प्रचलन दोनों की सूचना मिलती है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि वैदिक काल में पर्दा प्रथा नहीं थी।[107] ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि विवाह के अवसर पर वधू को सभी अभ्यागतों को दिखाया जाता था।[108] अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि जनसमुदाय में स्त्रियों की उपस्थिति वर्जित नहीं थी।[109] पर्दा–प्रथा के प्राचीनतम उल्लेख रामायण और महाभारत से मिलने लगते हैं। रामायण में कहा गया है कि जिस सीता को गगनचारी प्राणी भी नहीं देख सकते थे। वनवास को जाने समय राजमार्ग में उन्हें मनुष्य देख रहे थे। यथा–

"या न शक्यां पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि।

तामद्य पश्यन्ति राजमार्ग गता जनाः।।"[110]

महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के वन–गमन के अवसर पर वे शोकार्त नारियां राजमार्ग से जा रही थीं, जो पहले सूर्य और चन्द्रमा के लिये आदर्शनीय थीं। यथा–

"या नापश्यच्चन्द्रमा नैव सूर्यो रामाः कश्चित्ताः स तस्मिन्नरेन्द्रे।

महावनं गच्छति कौरवेन्द्रे शोकेनार्ता राजमार्ग प्रपेदुः।"[111]

इस प्रकार पौराणिक प्रकरणों की समीक्षा से प्रतीत होता है कि स्त्रियों के प्रति पुराणों के विचार अधिकांशतः उदार है। कन्या, पत्नी तथा माता के रुप में उन्हें प्रतिष्ठित पद प्रदान किया गया है। वस्तुतः पौराणिक भावना के मूल में प्रवृत्ति और निवृत्ति द्विविध भावनाएं क्रियाशील हैं। जहां कहीं प्रवृत्तिमूलक भावना प्रधान है और गृहस्थ आश्रम को महत्वपूर्ण बताया गया है। वहां स्त्रियों के प्रति भी प्रशस्त विचार प्रकट किये गये हैं। परन्तु ऐसे स्थल जहां निवृत्ति–मार्ग की मुख्यता है तथा सांसरिक जीवन के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गयी है, वहां स्त्रियों के प्रति भी अनुदार विचार व्यक्त किये गये हैं। इसके अतिरिक्त जहां विरोधात्मक उद्धरण मिलते हैं वहां पात्र और परिस्थिति की विशिष्टता को ही कारण माना जा सकता है। उदाहरणार्थ मत्स्य पुराण के एक ही प्रसंग में कन्या के प्रति उदार एंव अनुदार विचार उपलब्ध हैं। हिमवान नारद से कहते हैं कि शील सम्पन्न कन्या दस पुत्रों के समान है, परन्तु जिस समय उमा के विवाह

का प्रश्न उनके सामने आता है, वे कन्या के जीवन को धिक्कारते हैं।''[112]

हरिवंश पुराण मे वर्णित स्त्रियो की सामाजिक और धार्मिक स्थिति :-

अन्य पुराणों के समान ही हरिवंश पुराण में भी स्त्रियों के विषय में उदार विचार व्यक्त किये गये हैं। विशेषकर प्रवृत्ति और निवृत्ति मूलक सिद्धान्त को दृष्टिगत रखते हुये हरिवंश पुराण में वर्णित स्त्रियों की सामाजिक और धार्मिक स्थिति का मूल्यांकन किया जा सकता हैं। हरिवंश पुराण में जहां कहीं प्रवृत्तिमूलक भावना प्रधान है वहां स्त्रियों के प्रति प्रशस्त विचार प्रकट किये गये हैं परन्तु कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहां निवृत्ति मार्ग की प्रधानता है और सांसरिक जीवन तथा भोगविलासों के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गई है, वहां स्त्रियों के प्रति अनुदार विचार व्यक्त किये गये हैं। अतः दोनों ही दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुये हरिवंश पुराण में वर्णित स्त्रियों की सामाजिक और धार्मिक स्थिति का आकलन किया गया है।

कन्या के रुप में स्थिति :-

प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्रायः पुत्री का स्थान पुत्र की अपेक्षा निम्न माना गया हैं। वैदिक युग में भी पुत्र का लाभ परिवार के लोगों को अधिक प्रसन्नता प्रदान करता था। अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों से इसकी पुष्टि होती है।[113] इसी तथ्य की पुष्टि हरिवंश के प्रथम संस्करण की भूमिका से भी होती है, जिसमें कहा गया है कि पुत्र–प्राप्ति की कामना से हरिवंश–श्रवण की परम्परा भारत में चिरकाल से प्रचलित है। विशेषकर यदि जन्मकुण्डली में संतानभाव सूर्य के द्वारा घृष्ट, आविष्ट, या बाधित हो तो हरिवंश–श्रवण ही उसका प्रतिकार बतलाया गया है। यथा–

"श्रवणं हरिवंशस्य कर्तव्यं च यथाविधि।
जुहुयाच्च दशांशेन दुर्वामाज्य परिप्लुताम्।।"

इसी प्रकार हरिवंश पर्व में दक्ष द्वारा सृष्टि के विस्तार हेतु पहले पुत्रों की उत्पत्ति की कथा वर्णित है किन्तु जब नारद जी दक्ष के पुत्रों को विरक्त कर देते हैं तो अन्ततः सृष्टि के विस्तार हेतु दक्ष प्रजापति साठ कन्याओं को उत्पन्न करते हैं जिनका विवाह अनेक देवताओं ऋषियों आदि से करके अन्ततः सृष्टि का विस्तार करने में सफलता प्राप्त करते हैं।[114] इस आख्यान से भी तत्कालीन समाज के कन्या के प्रति दृष्टिकोण का पता चलता है।

शिक्षा :-

हरिवंश पुराण के काल तक आते–आते सामान्यतया परिवार में ही बालिकाओं को शिक्षा दी जाती थी। धर्मशास्त्रकारों ने यह व्यवस्था दी कि स्त्रियों का विवाह संस्कार ही उनका उपनयन है तथा पतिसेवा ही गुरुकुल में निवास है।[115] इसके साथ ही कम उम्र में कन्या का विवाह होने से शिक्षा के अवसर समाप्त हो गये। इस प्रकार इस काल तक आते–2 बालिकाओं का उपनयन संस्कार तथा गुरुकुल में निवास की परम्परा समाप्त हो चुकी थी। डा0 अल्तेकर ने नारी शिक्षा के हास पर विचार व्यक्त करते हुये लिखा है कि "सम्पन्न परिवारों में कम आयु में विवाह होने के कारण बालिकाओं को शिक्षा पूर्ण करने का बहुत कम अवसर उपलब्ध होता था। निर्धन परिवार की बालिकायें गृहकार्य में व्यस्त रहती थी। अतः उन्हें अध्ययन का समय उपलब्ध नहीं हो सकता था। ऐसी बालिकायें विवाह के समय आवश्यक मन्त्रों का उच्चारण भी न कर पाती थीं। वैदिक मन्त्रोच्चारण की अल्पत्रुटि भी भयंकर समझी जाती थी, सम्भवतः इसीलिये त्रुटिपूर्ण वेदाध्ययन को प्रतिबन्धित कर देना उचित समझा गया।"[116]

इस प्रकार हरिवंश पुराण की रचना के समय तक यद्यपि बालिकाओं की वैदिक शिक्षा पर तो प्रतिबन्ध लगा दिया गया था किन्तु उन्हें व्यवहारिक, व्यावसायिक, आत्यात्मिक, धार्मिक तथा राजनीतिक सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। व्यावहरिक शिक्षा के अन्तर्गत गृहविज्ञान की शिक्षा का विशेष महत्व था और प्रत्येक स्त्री से गृहकार्य के सम्पूर्ण ज्ञान की अपेक्षा की जाती थी। पुष्पों की मालायें बनाना, प्रसाधन तैयार करना, केशरचना तथा सज्जा आदि का कार्य धनिक परिवारों में दासियां किया करती थी।[117] यही कार्य सामान्य परिवारों मे स्वयं स्त्री को करने होते थे। पुत्री अपने पितृ गृह में ही ये समस्त शिक्षायें गृहण कर लेती थी जिससे पतिगृह में जाकर वे श्रेष्ठ पत्नी सिद्व हो सकें। गृह विज्ञान के अन्तर्गत सिलाई–कढ़ाई की शिक्षा भी दी जाती थी। सिलाई के अतिरिक्त पाक शास्त्र की शिक्षा भी दी जाती थी। गृह स्वच्छता की ओर भी स्त्रियों का पर्याप्त ध्यान रहता था। स्त्रियों को ललित कलाओं की शिक्षा भी दी जाती थी इस कला में नृत्य, संगीत, वाध, काव्य, चित्रकला, तथा माल्यग्रन्थन का विशेष स्थान था।[118] उच्चकुलों में इस शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाता था। निम्न परिवारों की कन्याओं को भी ललित कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। गीत-बाध आदि से राजपरिवार का मनोरंजन करने

सुलाने–जगाने के लिये नियुक्त दासियों एवं गणिकाओं के लिये इन कलाओं की शिक्षा अनिवार्य थी। उच्च वर्ग की महिलाओं के अतिरिक्त गणिकायें भी संगीत–नृत्य का अभ्यास कर नगरों का जीवन सरस बनाती थीं। चित्रकला में भी स्त्रियों की बहुत रुचि थी। हरिवंश पुराण में बाणासुर की कन्या उषा को उसकी सहेली चित्रलेखा ने देव, दानव, गन्धर्व, और मनुष्यों के चित्र बनाकर उसके प्रेमी की पहचान कराई थी।[119] इससे पता चलता है कि स्त्रियों को चित्रकला की शिक्षा भी दी जाती थी।

कुलीन परिवारों की स्त्रियों पर धनार्जन का उत्तरदायित्व तो नहीं था, लेकिन निम्न श्रेणी के परिवारों में कन्याओं पर यह दायित्व था, इसलिये स्त्रियां पिता या पति के सहायतार्थ जीविका यापन किया करती थी। राज परिवारों एवं कुलीन घरानों की दासियों, घात्रियों, गणिकाओं, वेश्याओं देवदासियों जैसी स्त्रियों के साहित्यिक एवं पुरातात्विक उल्लेखों से स्त्रियों के व्यवसायों की कल्पना सहज की जा सकती है और इन व्यवसायों के लिये उन्हें शिक्षा भी अनिवार्य रुप से ग्रहण करनी पड़ती होगी। चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा भी स्त्रियां ग्रहण करती थीं।

स्त्रियाँ प्रायः धर्मपरायण होती हैं अतः उनके लिये धार्मिक शिक्षा अनिवार्य थी। ईश्वर की आराधना सामान्य बात थी। वांछित फल की प्राप्ति के लिये स्त्रियां कठिन धार्मिक नियमों का पालन तथा व्रत करती थीं। हरिवंश पुराण में भी स्त्रियों द्वारा व्रत करने एवं धर्माचरण के उल्लेख मिलते हैं।[120] अध्यात्म के प्रति भी इनका रुझान था। इस प्रकार यद्यपि महिलाओं को वैदिक मन्त्रों का उच्चारण, उपनयन संस्कार तथा गुरुकुल में जाने पर रोक थी किन्तु उन्हें व्यावहारिक तथा धार्मिक शिक्षा अवश्य प्रदान की जाती थी। इस बात के उल्लेख नहीं प्राप्त होते कि ऐसी सभी स्त्रियों के साथ था या कुछ ही स्त्रियों के साथ।

<u>विवाह :-</u>

वैदिक युग से ही स्त्री पुरुष दोनों के लिये विवाह की अनिवार्यता समाज में थी किन्तु इस काल में विवाह के लिये किसी पर जोर नहीं दिया जाता था। पुरुष तथा स्त्रियाँ दोनों

ही आजीवन अविवाहित रह सकते थे।

किन्तु स्त्रियो के ब्रह्मचर्य को हर युग मे मान्यता नहीं दी गई। महाभारतकाल तक यह धरणा बन चुकी थी कि अविवाहित स्त्री मोक्ष की पात्र नहीं होती। विवाह की अनिवार्यता का मुख्य कारण डा0 अल्तेकर ने बौद्ध एवं जैन संघो को माना है जिनमें स्त्रियां माता–पिता की आज्ञा के बिना प्रवेश ले लिया करती थीं तथा संघों के उच्च आदर्शो के अनुरुप रहने में असमर्थता के कारण उनका पतन होने लगा था। इसकी प्रतिक्रिया समाज पर हुई और समाज के विचारकों ने महसूस किया कि स्त्रियों के लिये विवाह अनिवार्य घोषित करना अधिक उपुयक्त होगा। विवाह की अनिवार्यता का एक अन्य कारण यह था कि इस समय तक पुत्री के विवाह को पुत्र के उपनयन के समतुल्य मान लिया गया था। इसके अतिरिक्त स्त्रियों का विवाह अनिवार्य होने के अन्य कारण थे। प्रथम, कन्या का जन्म पिता के लिये दुख का कारण था और कन्या का अक्षत योनि होने पर बहुत बल दिया जाने लगा था द्वितीय, युवती कन्या को पिता अपने समीप रखने में असमर्थ होता था और विवाह द्वारा कन्या पर नियन्त्रण कर दिया जाता था। हरिवंश पुराण में जितने भी प्रसंग विवाह से सम्बन्धित मिलते हैं उन सभी से यही पता चलता है कि स्त्रियों का विवाह पूर्ण युवा होने पर ही किया जाता था।[121]

विवाह के प्रकारों की विवेचना प्रशस्तता के अनुसार प्रचलित क्रम से की जाती है। विवाह का आदर्श बहुत ऊँचा माना गया है। साथ धर्मशास्त्रकारों ने समाज के बौद्धिक एंव नैतिक स्तर का भी सदैव ध्यान रखा है। धर्मशास्त्रकार जानते थे कि कोरे आदर्शो के आधार पर विवाह का आदर्श टिक नहीं सकता इसीलिये उन्होनें मनुष्य की प्रकृति प्रदत्त दुर्बलताओं को ध्यान में रखकर समाज की सुरक्षा एवं व्यवस्था के लिये निम्नकोटि के विवाह सम्बन्धों को भी वैधानिक मान्यता दी। गृह्सूत्रों, धर्मसूत्रों एवं स्मृतिकारों ने विवाह के आठ प्रकार–ब्राह्म, दैव, आर्य, प्राजापत्य, आसुर, गन्धर्व, राक्षस एवं पैशाच का उल्लेख किया है। यथा–

> "ब्राह्मो दैवस्तथा आर्ष प्राजापत्यस्तथाऽसुरः।
>
> गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्मोऽघमः।"[122]

इनमें प्रथम–चार को प्रशस्त तथा अन्तिम चार को अप्रशस्त कहा गया है। हरिवंश पुराण में हमें ब्राह्म[123], गन्धर्व [124] एवं राक्षस[125] विवाहों के उद्धरण बहुतायत में मिलते हैं।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हरिवंश में रुक्मिणी के विवाह के प्रंसग के अन्तर्गत मनु तथा उनके नियमों का उल्लेख हुआ है। यहाँ पर कृष्ण रुक्मिणी के स्वयंवर का विरोध करते हैं। स्वयंवर का निषेघ करने के लिये इस प्रकार के विवाह को दोषपूर्ण सिद्ध करते हैं। इस कथन की पुष्टि के लिये कृष्ण के द्वारा मनु को प्रमाण रुप में उपस्थित किया गया है। साथ ही मनु आदि स्मृतिकारों के द्वारा निर्मित इन सिद्वान्तों को आदर योग्य बतलाया गया है।[126] इस आधार पर हम कह सकते हैं कि हरिवंश में यद्यपि रुक्मिणी के स्वयंवर का उल्लेख मिलता है। किन्तु स्वयंबर प्रथा का प्रचलन समाप्त होने लगा था।

उपर्युक्त विवाहों के अतिरिक्त हरिवंश में अनुलोम और प्रतिलोभ विवाहों के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं इस प्रकार के वर्णेतर विवाह के हरिवंश में 'ऋष्यन्तर विवाह' कहा गया है। ये विवाह तिरस्कार्य नहीं ज्ञात होते। अनेक स्थलों में ऋष्यन्तर विवाहों का तथा उनकी सन्तति का गौरव के साथ वर्णन इस बात का प्रमाण है। ऋष्यन्तर विवाह में नीच वर्ण की कन्या से विवाह का प्रचलन पर्याप्त मात्रा में दिखलाई देता है। हरिवंश में वर्णित ऋषियों की क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सन्तान अनुलोम विवाह से उत्पत्ति का परिचय देती है। विश्वामित्र के वंश के विवरण में उनके वंशज ऋषियों के 'ऋष्यन्तर विवाह्य' कहा गया है।[127] इसी स्थल में कौशिक (विश्वामित्र) तथा पूरुवंश के परस्पर सम्बन्ध का उल्लेख ब्रह्म–क्षत्र सम्बन्ध के रुप में वर्णित है यथा–

"ऋष्यन्तर विवाह्मश्च कौशिका बहवः स्मृताः।
पौरवस्य महाराज ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च।।
सम्बन्धोऽप्यस्य वंशेऽस्मिन् ब्राह्मक्षत्रस्य विश्रुतः।।[128]

हरिवंश के अन्य स्थल में शुनक नामक ऋषि के पुत्रों को शौनक कहा गया है। शौनकों के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी आते हैं। यथा–

"पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च।।"[129]

चारों वर्णो के रुप में शौनकों का उल्लेख चार वर्ण की भिन्न–2 स्त्रियों से ब्राह्मण ऋषि के विवाह की सूचना देता है। भार्गव वंश के अंगिरस के पुत्रों को तीन जातियों

में जन्म लेते हुये कहा गया है।[130] अन्य स्थल में भार्गव वंशी अंगिरस के पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बतलाये गये हैं।[131] इसी प्रकार मुद्गल के पुत्र मौद्गल्यों के क्षात्र धर्म ये युक्त ब्राह्मण कहा गया है।[132] क्षत्रिय राजाओं में भी ऋषियों की भांति वर्ण के अतिक्रमण की प्रवृत्ति दिखलाई देती है। नरिष्यत राजा के पुत्र शक बतलाये गये हैं।[133] शक विशेषण के द्वारा यहां पर नरिष्यत के शकवंशी कन्या से विवाह का संकेत मिलता है।

इसी प्रकार हरिवंश में क्षत्रिय राजाओं के प्रतिलोम विवाह का परिचय उनकी ब्राह्मण सन्तान से मिलता है। कण्व के पुत्र मेघातिथि की सन्तान को 'काण्वायन द्विज' कहा गया। यथा–

"पुत्रः प्रतिरथस्यासीत् कण्वः समभवन्नृपः।
मेघातिथिः सुतस्तस्य यस्मात् काण्वायना द्विजः।।"[134]

इसी प्रकार बलि के पुत्रों के दो पक्ष मिलते हैं। पहला पक्ष क्षत्रियों का है इन्हें बालेय क्षत्रिय कहते हैं। दूसरा पक्ष ब्राह्मणपुत्रों का है ये बालेय ब्राह्मण कहे गये हैं।[135]

इस प्रकार हरिवंश में अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों के अनेक उदाहरण मिलते हैं जिससे पता चलता है कि समाज में इस समय तक अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह प्रचलन में थे।

हरिवंश पुराण में बहुपत्नी प्रथा का उल्लेख भी मिलता है। श्रीकृष्ण की 16009 पत्नियों का उल्लेख मिलता है।[136] लेकिन यह विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है। दक्ष की साठ कन्याओं का विवाह कश्यप, चन्द्रमा धर्म आदि ऋषियों से हुआ था इनके साथ एक–एक कन्या का नहीं अपितु कई कन्याओं का विवाह इनके साथ हुआ था।[137] इन विवरणों से पता चलता है कि समाज में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। लेकिन यह प्रथा सामान्यतः शासक वर्ग एवं ऋषि महर्षियों तक ही समिति थी। सामान्य वर्ग सामान्यतः एक ही पत्नी रखते थे। लेकिन इन्हें भी एक से अधिक पत्नी रखने पर प्रतिबन्ध नहीं था।

पत्नी के रुप में स्थिति :-

हरिवंश पुराण में पत्नी को सम्माननीय स्थान दिया गया है। तथा पति के लिये उसकी प्रत्येक प्रकार की इच्छा पूर्ण करने का प्रयत्न किया गया है। उदाहरणार्थ– श्रीकृष्ण

अपनी प्रिय पत्नी सत्यभामा का प्रसन्न करने के लिये पारिजात का वृक्ष लाने के लिये इन्द्र से भयंकर युद्ध करते हैं तथा अन्ततः परिजात वृक्ष लाकर उनको प्रसन्न करते हैं।[138]

इसी प्रकार रुक्मिणी की पुत्र प्राप्ति की इच्छा को पूर्ण करने के लिये श्रीकृष्ण कैलाश जाकर कठोर तपस्या करते हैं। [139] इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि भार्या का स्थान बहुत महत्वपूर्ण था। वास्तविक अर्थो में पत्नी सधर्मचारिणी थी जिसके साथ रहकर ही गर्हस्थ धर्म का पालन सम्भव था।

धार्मिक स्थिति :-

हरिवंश पुराण में स्त्रियों के धार्मिक क्रियाकलापों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। स्त्रियों के पतिव्रत धर्म तथा सदाचरण पर विशेष बल दिया गया है। साथ ही उन्हें विविध प्रकार के व्रतों का अनुष्ठान एवं दान देते हुये भी दिखाया गया है। [140]

विभिन्न महत्वपूर्ण अवसरों पर एंव धार्मिक अवसरों पर पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य थी। इससे स्त्रियों की धार्मिक स्थिति का पता चलता है। कि हरिवंश पुराण के समय में स्त्रियों को महत्वपूर्ण धार्मिक अधिकार प्राप्त थे। धार्मिक अनुष्ठानों में स्त्रियाँ पति के साथ समान रुप से सम्मिलित होती थी पत्नी की अनुपस्थिति में धार्मिक अनुष्ठानों का सम्पन्न होना असम्भव होता था। धार्मिक जीवन में यज्ञ का विशिष्ट स्थान था तथा इसके सम्पन्न करने में पत्नियां पति का साथ देती थीं। हरिवंश पुराण में निरुपति वराह की पृथ्वी उद्वार की क्रिया को यज्ञ रुप कहा गया है जिसके सम्पन्न होने के समय उनकी पत्नी छाया भी उनके साथ थी। यथा–

"छायापत्नी सहायो वै मणिश्रृड. इवोच्छ्ित :।

भूत्वा यज्ञ वराहोऽसौ युगपत् प्रविशद् गुरुः।।"141

इसी प्रकार नैमिषारण्य के विषय में वर्णित है कि इस विशिष्ट क्षेत्र में सम्पादित यज्ञ में स्वयं तप यजमान बने थे और इला ने पत्नी के रुप में साथ दिया था। पुष्कर क्षेत्र में सम्पन्न कश्यप के अवश्मेघ यज्ञ में दिति पत्नी के रुप में उनके समीप बैठी थी। जनमेजय के अवश्मेघ यज्ञ में भी उनकी पत्नी वपुष्टमा ने यज्ञ में भाग लिया था। [142] स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनसुार स्त्रियां पुरुषो कें अपेक्षा धर्म के प्रति अधिक आकृष्ट थीं तथा ईश्वर में उनकी अपार श्रद्धा

थी स्त्रियां विभिन्न प्रकार के व्रतों का अनुष्ठान करती थी तथा विविध प्रकार के दान देती थी। वे विविध प्रकार के गृह देवताओं का पूजन करती थीं। देवताओं में मातृदेवी, शिव, विष्णु, तथा कार्तिकेय की पूजा विशेष रुप से प्रचलित थी उपुर्यक्त उद्वरणों से स्त्रियों की उन्नत धार्मिक स्थिति का पता चलता है।

सामाजिक स्थिति :-

सामाजिक जीवन में नारी की स्थिति विरोधाभासपूर्ण थी। एक ओर तो नारी प्रशंसा के प्रसंग मिलते हैं तो दूसरी ओर उनके प्रति हीन भावनायें व्यक्त की गई है।

हरिवंश पुराण के नरियों के प्रशंसात्मक प्रसंगों में नारी को सृष्टि तथा सामाजिक सन्तुलन का कारण भूत आवश्यक अंग माना गया है। तथा यह प्रतिपादित किया गया है कि सृष्टि का संचालन स्त्री विरहित स्थिति में असम्भव है। स्त्रीरूप धारिणी वसुन्धरा वैन्य को निर्देशित करती है। तथा बताती है कि जनजीवन के अस्तित्व में उसकी गभूत प्रतिष्ठा है।[143] सामान्यता स्त्रियॉ सुलझे हुये मन की होती थी, इसीलिये उन्हें सुलभ–स्वभाव वाली माना गया था। नारी की यह प्रतिष्ठा उसके श्रेष्ठ गुणों पर आधारित थी, इसीलिये गुणवती स्त्रियॉ भू–मण्डल का अलंकार समझी जाती थी। स्त्रियों ने उच्चकोटि की नैतिकता को अंगीकार किया था, तथा वे अपने चरित्र और आदर्श के कारण प्रशंसनीय थी। उनमें शील,सच्चरित्रता एवं पतिव्रता धर्म का पालन आदि गुणों का आरोपित होना आवश्यक था। यथा–

"सतीत्वं धर्मचरणं यस्या नित्यमखण्डितम्।
पुण्यकानां विधिस्तस्याः पुराणैः परिकीर्तित।।"
अवाग्दुष्टाः शौचयुक्ता धृतिमत्यः शुभव्रताः।
सततं साधुवादिन्यों धारयन्ति जगत् खलु।।
व्याधितः पतितो वापि दीनों वापि दीनों वापि कथञ्चन।
न व्यक्तव्यः स्त्रिया भर्ता धर्म एष सनातनाः।।"[144]

जहॉ एक ओर स्त्री की प्रशंसा की गयी है वहीं दूसरी ओर उनके प्रति हीन धारणायें भी अभिव्यक्त की गयी हैं। समाज में नारी के प्रति हीन भावना को जन्म देने वाले स्मृतिकार एवं नीतिकार हैं क्योंकि इन धर्मशास्त्र कारों ने धार्मिक क्षेत्र में स्त्रियों को शूद्र के

समकक्ष स्थापित कर उन्हें मन्त्रोच्चारण और पिण्ड देने के अधिकार से वंचित कर दिया। नागरिक के मूलभूत अधिकारों में भी उनकी स्थिति शूद्रों के समान ही दयनीय रहीं। हरिवंश पुराण के कुछ स्थलों में स्त्रियों की संगति शूद्रों के समान ही वर्जित मानी गई है। स्त्री को नरक और काम का प्रधान अस्त्र सिद्ध किया गया है।[145] वह कठोर ह्रदय वाली तथा वेश्या के समान अविश्वासी मानी गई है उसकी बुद्धि पर आक्षेप कर उसे अविवेकी और अस्थिर बुद्धि वाली कहा गया है। स्त्री बुद्धि अग्राह्य है, यह धारणा लोगों के मन में घर कर चुकी थी इसीलिये कहा गया है कि स्त्री के सम्बन्ध में ईश्वर, मनुष्य तथा दानव कुछ भी निश्चित रूप से कह सकने में असमर्थ है।

हरिवंश पुराण में विधवा की दयनीय दशा का भी वर्णन किया गया है। जब कृष्ण कंस का वध कर देते है, तब उसकी विधवा पत्नियाँ विविध प्रकार से विलाप करती है और कहती है विधवा नारी जब तक जीवित रहती है उसे विलाप ही करना पड़ता है उसका अन्तः करण रोता रहता है। साथ ही इसमें सतीप्रथा की ओर भी संकेत किया गया है जिसमें कंस की पत्नियाँ कहती है कि हमें तो पति के साथ ही चलना है ऐसे अवसर पर हम रो क्यों रही है यथा–

"रूदितानुशयो नार्या जीवन्त्याः परिदेवनम्।
किं वयं सति गन्तव्ये सह भर्त्रा रूदामहे।।"[146]

इन उद्धरणों से पता चलता है कि समाज में विधवा की स्थिति बहुत ही दयनीय थी तथा समाज में सतीप्रथा का भी प्रचलन था। हरिवंश पुराण में पर्दाप्रथा के प्रचलन के प्रमाण नहीं मिलते। जिस समय कृष्ण की पत्नियाँ नारद से धार्मिक चर्चा तथा व्रतों के विषय में सुन रहीं थीं उस समय उन्होने किसी प्रकार का कोई पर्दा नहीं कर रखा था।[147] इसी प्रकार जब कंस ने मल्लयुद्ध के लिये रंगशाला को बनवाया तथा सजवाया था तो उसमें अन्तःपुर की स्त्रियों के लिये भी अनेक प्रेक्षागार बनाये गये थे जो सुवर्ण से विचित्र तथा रत्नों की प्रभा से व्याप्त थे। यथा–

"अन्तः पुरचराणां च प्रेक्षागाराण्यनेकशः।
रेजुः कान्चनचित्राणि रत्नज्वालाकुलानिच।।"[148]

आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता के लिये स्त्रियॉ विभिन्न जीविका अपनाती थी, और समाज द्वारा इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। विदुषी स्त्रियॉ आचार्या बनकर समाज में उच्च स्थान प्राप्त कर सकती थी। गणिकाओं का यद्यपि समाज में उच्च स्थान न था परन्तु उन्हे हेय दृष्टि से भी नहीं देखा जाता था और वे स्वतन्त्र रूप से अपनी जीविका चलाती थी। कंस और कृष्ण के मल्लयुद्ध में बनी रंगशाला में गणिकाओं के लिये पृथक मंच बने थे, जो सुन्दर बिछौनों और वस्त्रों से ढँके हुये थे वे सब के सब विमानों के समान कान्तिमान् दिखाई देते थे और मुख्य–2 वाराङ़गनाएँ उनकी शोभा बढ़ाती थीं। यथा–

"गणिकानां पृथङ.नङ्चाः शुभैरास्तरणाम्बरैः।

शोभिता वारमुख्या भिर्विमान प्रतिमौजसः।।"[149]

राजा–रानियों तथा अन्य कुलीन स्त्रियों की सेवा–शुश्रुषा के लिये परिचारिकायें होती थीं, जो निम्नवर्ग की स्त्रियॉ होती थीं तथा अपने जीवन–यापन के लिये राजकुलों में सेवा का कार्य करती थी।[150] सम्भवतः स्त्रियों की जीविका को समाज में विशेष प्रोत्साहन नहीं मिला, इसीलिये हमें उच्चवर्ग अथवा मध्यवर्ग की स्त्रियों के आत्मनिर्भरता के उदाहरण नहीं मिलते हैं। अन्य जीविका अपनाने वाली स्त्रियों की गणना मर्यादेन्तर नारियों के अन्तर्गत होती थी इनमें परिचारिका अथवा सेविका, दासी, धात्री, गणिका, स्त्री गुप्तचर, स्त्री सैनिक, वेश्या, नटी, गोपी, किराती, शबरी, नर्तकी आदि की गणना होती थी।

इस प्रकार हरिवंश पुराण में स्त्रियों की समाजिक तथा धार्मिक स्थिति की समीक्षा से प्रतीत होता है कि स्त्रियों के प्रति हरिवंश के विचार अधिकांशतः उदार हैं। कन्या पत्नी तथा माता के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित पद प्रदान किया गया है। वस्तुतः हरिवंश में स्त्रियों की स्थिति के सन्दर्भ में प्रवृत्ति और निवृत्ति द्विविध भावनाएँ क्रियाशील हैं। जहाँ–जहाँ प्रवृत्तिमूलक भावना प्रधान है और गृहस्थ आश्रम को महत्वपूर्ण बताया गया है वहॉ स्त्रियॉ के प्रति भी प्रशस्त विचार प्रकट किये गये है। परन्तु ऐसे स्थल जहॉ निवृत्ति–मार्ग की मुख्यता है तथा सांसरिक जीवन के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गई है, वहॉ स्त्रियों के प्रति भी अनुदार विचार व्यक्त किये गये है। इसके अतिरिक्त कुछ विरोधात्मक उद्धरण भी मिलते है ऐसे उद्धरणों में पात्र और परिस्थिति की विशिष्टता को ही कारण माना जा सकता है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. अथर्ववेद, 14,14.
2. शतपथ ब्राम्हण, 5,2,1,10, : मनुस्मृति, 9,45.
3. महाभारत, 1,74,40 : बृहस्पति स्मृति, 25, 11.
4. वृहतसंहिता, 74,5 : 5,11, 15—16 : मनुस्मृति , 9,26.
5. अथर्ववेद, 3,23 : 6,2.
6. वही, 11,5,8.
7. शतपथ ब्राम्हण, 5,1,10 : तैत्तिरीय ब्राम्हण, 22,2,6.
8. बृहदारण्यक उपनिषद, 3,6,1
9. शतपथ ब्राम्हण, 14,3,1,35
10. विस्तृत अध्ययन के लिये दृष्टव्य—हॉनर, विमेन अंडर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, दूसरा अध्याय
11. जातक, सं0 301.
12. मनुस्मृति, 2,67.
13. वहीं, 2,56 : 9,18.
14. वही, 9,3.
15. मत्स्य पुराण,154, 156.
16. विष्णु पुराण, 1,15,8.
17. वायु पुराण, 62,156 : ब्रम्हाण्ड पुराण, 2,36,182.
18. विष्णु पुराण, 5,2,20—11.
19. वायु पुराण, 66,54:ब्रम्हाण्ड पुराण, 3,2,55.
20. मत्स्य पुराण, 13.18.

21. वायु पुराण, 69, 107 : ब्रम्हाण्ड पुराण 3,7,67

22. मत्स्य पुराण, 227, 150.

23. वायु पुराण,96, 225: ब्रम्हाण्ड पुराण, 3,71,231.

24. वही, 62.159: वही, 2.36.185.

25. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव, पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविललाइजेशन, बनारस, 1956, पृष्ठ–120.

26. ब्रम्हाण्ड पुराण, 3.23.66.69

27. विष्णु पुराण, 1.15.7.

28. मत्स्य पुराण, 154.157.

29. वही, 29.1–18.

30. विष्णु पुराण, 4.13.131.154

31. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.139–140.

32. ऋग्वेद, 1.124.7.

33. मत्स्य पुराण, 154.158–159.

34. वही, 154.155.

35. विष्णु पुराण, 4.13.55.

36. सरकार, सेलेक्ट इंसक्रिप्शंस, पृष्ठ–258.

37. ब्रम्हाण्ड पुराण, 3.2.28:,वायु पुराण, 66.27

38. वायु पुराण, 72.13–15 : ब्रम्हाण्ड पुराण, 3.10.15–16

39. विष्णु पुराण, 3.10.19 : वायु पुराण, 30.28–29 : ब्रम्हाण्ड पुराण, 2.13.30

40. मत्स्य पुराण, 20.27.

41. वही, 4.24.

42. वही, 154.290.294–301–308–309, : वायु पुराण, 41.31.

43. मत्स्य पुराण, 15.5–6

44. वायु पुराण, 107.5–6

45. अल्तेकर, आनन्द सदाशिव, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ-11.

46. वही, पृष्ठ-14

47. मत्स्य पुराण, 82.29 : 131.9 : ब्रम्हाण्ड पुराण, 3.27.7–8

48. विष्णु पुराण, 5.32.22

49. वही, 5.23.11

50. मत्स्य पुराण 154.156

51. विष्णु पराण, 5.7.49

52. वही, 5.23.11

53. मनुस्मृति, 3.21

54. विष्णु पुराण, 3.10.26

55. ब्रम्हाण्ड पुराण, 4.31.103

56. वायु पुराण, 67.57

57. ब्रम्हाण्ड पुराण, 1.5.19 : 1.1.6 : मत्स्य पुराण, 58.21

58. ब्रम्हाण्ड पुराण 4.40.93–97

59. वायु पुराण, 75.70

60. ब्रम्हाण्ड पुराण, 4.14.15

61. मत्स्य पुराण, 18.13:54.24:96.13:57.22.

62. ऋग्वेद, 1.72.6.5.

63. तैत्तिरीय ब्राम्हण, 3.7.5.

64. मनुस्मृति, 5.155.

65. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 4.1.33.

66. विष्णु पुराण, 2.15.14;5.6.15.

67. अथर्ववेद, 14.1.43.

68. विष्णु पुराण, 13.24.

69. मत्स्य पुराण, 154.166.

70. वायु पुराण, 88.71–72.

71. शतपथ ब्राम्हण, 4.1.5–9.

72. रामायण, 2.27.6.

73. महाभारत, अनुशासनपर्व, 146.55

74. कार्पस, इन्सक्रप्सन्स इण्डिकेरम, भाग–3, पृष्ठ–20

75. मत्स्य पुराण, 92.20.

76. वायु पुराण, 30./122

77. मत्स्य पुराण, 31.32

78. विष्णु पुराण, 6.2.35

79. वही, 1.15.43

80. वही, 4.10.24

81. ऋग्वेद, 10.95.15

82. तैत्तिरी संहिता, 1.10.11

83. मनुस्मृति, 5.139 : याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.21

84. विष्णु पुराण, 1.15.65.

85. वही, 4.13.85.

86. ब्रम्हाण्ड पुराण, 3.30.25.37.

87. वही, 4.30.37.

88. मत्स्य पुराण, 154.19.

89. ब्रम्हाण्ड पुराण, 4.30.44.

90. मत्स्य पुराण, 215.61.

91. वही, 54.5.

92. वही, 185.19.

93. वही, 208.13.

94. विष्णु पुराण, 1.15.54.

95. ऋग्वेद, 1.87.3.

96. महाभारत, शान्ति पर्व, 148.2.

97. मनुस्मृति, 5.157.

98. विष्णु पुराण, 5.38.2.

99. वही, 3.18.92.

100. ब्रम्हाण्ड पुराण, 3.30.35—38.

101. मत्स्य पुराण, 154.274.

102. विष्णु पुराण, 4.3.33ःवायुपुराण, 88.132ःब्रम्हाण्ड पुराण, 3.63.131.

103. मत्स्य पुराण, 61.32.

104. विष्णु पुराण, 5.20.27.

105. मत्स्य पुराण, 31.12.

106. वही, 154.134.

107. अल्टेकर, अनन्त सदाशिव, पूर्वोद्धत, पृष्ठ—197.

108. ऋग्वेद, 10.85.33.

109. अथर्ववेद, 2.36.1.

110. रामायण, 3.33.8.

111. महाभारत, 15.16.13.

112. मत्स्य पुराण, 154.157:4.24.

113. अथर्ववेद, 3.23.6.2.

114. हरिवंश पुराण, 1.3.

115. मनुस्मृति, 2.67:याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.13.

116. अल्तेकर,अनन्त सदाशिव, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृष्ठ–162.

117. हरिवंश पुराण, 2.78.28.–30.

118. वही, 2.69.1–17.

119. वही, 2.118.

120. वही, 2.77–80.

121. वही, 2.59.38–40:,2.61.7.

122. मनुस्मृति, 3.21.

123. हरिवंश पुराण, 2.58.84.

124. वही, 2.94.11:,49:2.119.74.

125. वही, 2.59.

126. वही, 2.51.15, 32–33.

127. वही, 1.27.53.

128. वही, 1.32.59.6.

129. वही, 1.29.8.

130. वही, 1.29.83.

131. वही, 1.32.40.

132. वही, 1.32.60–68.

133. वही, 1.10.28.

134. वही, 1.32.5.

135. वही, 1.31.33–35.

136. वही, 2.60.40–43.

137. वही, 1.3.28–31.

138. वही, 2.67.

139. वही, 3.73.

140. वही, 2.77–81.

141. वही, 3.34.41.

142. वही, 3.5.12.

143. वही, 1.5.6.

144. वही, 2.78.4, 8–9.

145. वही, 2.78.5–6.

146. वही, 2.31.37.

147. वही, 2.77.6–9.

148. वही, 2.29.6.

149. वही, 2.29.9.

150. वही, 2.2.4–5.

सप्तम अध्याय

- उपसंहार
- शोध-प्रबन्ध का मूल्यांकन
- शोध के लिये अपनाई गई विधि
- स्थिति एवं स्थल का अवलोकन
- अन्वेषण एंव सर्वेक्षण
- शोध–विषय से सम्बन्धित विषय–सामग्री की खोज
- व्यक्तिगत सर्वेक्षण
- शोध सहयोग
- हरिवंश पुराण पर अब तक हुये शोध कार्यो की तुलनात्मक समीक्षा
- शोध के परिणाम
- हरिवंश पुराण के संदर्भ में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन
- हरिवंश पुराण के यथार्थ पर नवीन दृष्टि
- हरिवंश पुराण के धार्मिक महत्ता पर नवीन दृष्टि, शोध की उपलब्धि

उपसंहार

पुराणों की महत्ता निर्विवाद तथा सर्वमान्य है। इनकी भाषा व्यावहारिक तथा सरल है और शैली रोचक तथा आख्यान मयी। अतः जितना अधिक जनसामान्य को पुराण का भक्ति संपुटित सरल श्लोक आकर्षित करता है उतना न तो वेद का दुरूह मन्त्र आकृष्ट करता है और न स्मृति शास्त्र का शुष्क श्लोक। इसीलिये छान्दोंग्य उपनिषद में पुराण को पंचम वेद कहकर उनकी महत्ता प्रतिपादित की गयी है। जहॉ तक पुराणों की रचना का प्रश्न है तो यह स्पष्ट है कि पुराणों की रचना किसी एक काल में नहीं हुयी। वास्तव में ये अनेक शताब्दियों के चिन्तन मनन के परिणाम हैं फिर भी अधिकाशं महत्वपूर्ण पुराणों की रचना सातवीं शती ई० तक हो चुकी थी। पुराणों की संख्या के विषय में मतभेद नहीं है। इनकी संख्या 18 है जो निर्विवाद है। इनका विभाजन गुणों के आधार पर भी किया गया है जैसे– सतोगुणी पुराण के अन्तर्गत–विष्णु, भागवत, नारद, गरूड़, पद्म तथा वराह पुराण आते हैं। रजोगुणी पुराण के अन्तर्गत–ब्रम्ह, ब्रम्हाण्ड मार्कण्डेय, ब्रम्हवैवर्त, वामन तथा भविष्य पुराण एवं तमोगुणी पुराण के अन्तर्गत–स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, लिंग, अग्नि तथा वायुपुराण को रखा गया है।

हरिवंश में महाभारत के खिल के साथ–साथ पुराणत्व का भी समन्वय हुआ है, किन्तु विद्वानों का ध्यान दूसरे पुराणों की अपेक्षा हरिवंश पुराण की ओर कम आकृष्ट हुआ है। जबकि हरिवंश में सभी पौराणिक तत्व विद्यमान दिखलाई देते है। हरिवंश पुराण में इन तत्वों की उपस्थिति देखकर कुछ विद्वानों ने इसे भी पुराणें के समकक्ष रखने की बात कही है। सुप्रसिद्ध विद्वान फरक्यूहर ने हरिवंश की गणना महापुराणों में करते हुये इसको बीसवॉ महापुराण माना है। इसी प्रकार विण्टर नित्स ने भी हरिवंश को खिल के अतिरिक्त पुराण के रूप में स्वीकार किया है। हरिवंश में पुराण के पंचलक्षण–सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित प्रमुखता से मिलते है। हरिवंश में पुराण पंचलक्षण के सर्ग–प्रतिसर्ग के अनुरूप ही जगत् की सृष्टि तथा प्रलय सम्बन्धी विचार मिलते हैं। वंश तथा मन्वन्तर के अनुरूप राजाओं तथा मन्वन्तरों का विवरण मिलता है। वंशानुचरित के अनुसार राजाओं तथा ऋषियों के विविध आख्यान मिलते है। पुराण

पंचलक्षण के अतिरिक्त हरिवंश के अनेक वृतान्त भी पौराणिक प्रसंगों से समानता रखते हैं।

हरिवंश खिल है अथवा पुराण। इस मत की सम्यक् विवेचना करने पर दो निष्कर्ष निकलते है, पहले निष्कर्ष के अनुसार हरिवंश महाभारत का अन्तरंग भाग है, जबकि द्वितीय निष्कर्ष के परिणामस्वरूप खिल हरिवंश में पुराण पंचलक्षणों के साथ पुराणों से समानता रखने वाली कुछ स्मृति सामग्री भी मिलती है। इसी कारण खिलपर्व होने पर भी हरिवंश का विकास एक स्वतन्त्र पुराण के रूप में हुआ है।

एक ओर जहॉ हरिवंश का विकास एक स्वतन्त्रपुराण के रूप में हुआ है वहीं दूसरी ओर महाभारत तथा हरिवंश के आन्तरिक प्रमाण हरिवंश को महाभारत का खिल सूचित करते हैं। क्योंकि महाभारत के पर्वसंग्रह पर्व में सौ पर्वों के अन्तर्गत हरिवंश का भी समावेश है। परम्परागत 18 पुराणों के अन्तर्गत हरिवंश की गणना नहीं की गयी। हरिवंश का उल्लेख महाभारत के परिशिष्ट या खिल के रूप में प्रायः मिलता है किन्तु इसमें पुराण के पंचलक्षणों का भी समावेश मिलता है। पंचलक्षणों का पूर्णता के साथ पालन करने के कारण ही सुप्रसिद्ध विद्वान फरक्यूहर ने हरिवंश को बीसवॉं महापुराण माना है।

हरिवंश में तीन पर्व या खण्ड है—हरिवंश पर्व, विष्णु पर्व और भविष्यपर्व। हरिवंश के रचयिता वेदव्यास हैं। हरिवंश के विष्णुपर्व तथा भविष्य पर्व का रचना काल तृतीय शताब्दी है जब कि हरिवंश पर्व का रचना काल द्वितीय शताब्दी के लगभग है। हरिवंश का धार्मिक महत्व सर्वत्र प्रख्यात है। सन्तान के इच्छुक व्यक्तियो के लिये हरिवंश का विधिवत श्रवण का विधान लोक प्रचलित है। यद्यपि हरिवंश एक वैष्णव पुराण है किन्तु इसमें वैष्णव धर्म अपने प्रारम्भिक रूप में है जबकि विष्णु पुराण और भागवत पुराण में यही धर्म अधिक विकसित हो गया है। धार्मिक महत्ता के साथ—साथ हरिवंश की ऐतिहासिक महत्ता भी अत्याधिक है। पुराण पंच-लक्षण के अन्तर्गत वंश, मन्वन्तर तथा वंशुानचरित हरिवंश के ऐतिहासिक अध्ययन के लिये प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करते है। अन्य पुराणों की अपेक्षा हरिवंश में वंशों का सुव्यवस्थित और स्पष्ट रूप उसकी ऐतिहासिक महत्ता को सिद्ध करते हैं।

धार्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से जहॉ हरिवंश महत्वपूर्ण है वहीं उसका सांस्कृतिक पक्ष भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। हरिवंश से हमें तत्कालीन समाज तथा ललित कलाओं

के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। हरिवंश के महत्वपूर्ण कुछ कला सम्बन्धी तत्व पुराण और अन्य ग्रन्थों में अनुपस्थित हैं। कृष्ण के द्वारा आविष्कृत 'छालिक्यगेय' और भद्र नामक नट की सहायता से प्रस्तुत दो नाटकों का प्रसंग हरिवंश में महत्वपूर्ण है। छाल्क्यि विविध बाद्यों के साथ गाया जाने वाला हावभाव पूर्ण संगीत है। यह किसी भी पुराण में नहीं मिलता। भद्र नट का प्रसंग भारतीय नाटक के जन्म और विकास पर प्रकाश डालता है।

हरिवंश तथा अन्य पुराणों का महत्वपूर्ण प्रतिपाद्य विषय कृष्ण के स्वरूप का विवेचन है। हरिवंश का कृष्ण चरित्र अन्य वैष्णव पुराणों के कृष्ण चरित्र से विशेषता रखता है। हरिवंश का कृष्ण चरित्र अन्य वैष्णव पुराणों के कृष्ण चरित्र से प्रारम्भिक है। विष्णु पुराण, भागवत पुराण और पद्मपुराण में मिलने वाले कृष्ण चरित्र के अनेक वृतान्त हरिवंश में नहीं है। उदाहरणार्थ–विष्णु पुराण तथा भागवतपुराण के वेणुगीत और माखनलीला हरिवंश में नहीं है। हरिवंश में रास का प्रसंग 'हल्लीस' के नाम से अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है जबकि विष्णु, भागवत, पद्द्म और ब्रम्हवैवर्त पुराण में रास का यह स्वरूप क्रमशः विस्तृत होता गया है।

हरिवंश, वैष्णव पुराण है किन्तु अन्य वैष्णवपुराणों से इसकी प्रवृत्ती भिन्न है। जहॉ हरिवंश में वैष्णव धर्म अपने प्रारम्भिक रूप में है वहीं विष्णु पुराण और भागवत पुराण में यही धर्म अधिक विकसित हो गया है। इसी प्रकार हरिवंश में पांचरात्र का अभाव है जबकि दूसरे वैष्णव पुराणों में यह प्रमुखता से मिलता है। उत्तरकालीन पुराणों में शाक्त विचारधारा के साथ गणेश, सूर्य, गंगा आदि देवताओ का समन्वय हुआ है जबकि हरिवंश में वैष्णव, शैव तथा शाक्त विचारों के अतिरिक्त सूर्य, गणेश, गंगा, तुलसी आदि की पूजा तथा माहात्म्य पूर्ण रूप से अनुपस्थित है। हरिवंश में पुण्यकव्रत ही स्मृति–सामग्री का एकमात्र प्रतिनिधित्व करता है जब कि अन्य पुराणों में पुण्यक ब्रत का उल्लेख नहीं मिलता।

हरिवंश तथा अन्य पुराणों में तत्कालीन संस्कृति के दर्शन होते है। इनमें से कुछ बातें तो सभी पुराणों में एक समान मिलती हैं जबकि कुछ बातों में अन्तर भी मिलता है। हरिवंश के महत्वपूर्ण कुछ कला–सम्बन्धी तत्व पुराणों और अन्य ग्रन्थों में अनुपस्थित हैं। कृष्ण के द्वारा अविष्कृत 'छालिक्यगेय' और भद्र नामक नट की सहायता से प्रस्तुत दो नाटकों का प्रसंग हरिवंश

में महत्वपूर्ण है। छालिक्य विविध बाद्यों के साथ गाया जाने वाला हाव–भाव पूर्ण संगीत है यह किसी भी अन्य पुराण में नहीं मिलता। हरिवंश में रास का प्रसंग संक्षिप्त है जबकि अन्य पुराणों में रास का प्रसंग विस्तृत होता गया है। हरिवंश में अनुलोम और प्रतिलोम दोनों ही प्रकार के विवाहों का उल्लेख मिलता है, इस प्रकार के वर्णेतर विवाह को हरिवंश में 'ऋष्यन्तर विवाह कहा' गया है। हरिवंश में यह विवाह तिरस्कार्य नहीं ज्ञात होते। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हरिवंश में वर्ण विषयक सामग्री दो प्रकार के समाजों की प्रवृत्ति का परिचय देती है। राजवंशों में वर्णित अन्तर्जातीय सम्बन्धों के द्वारा तत्कालीन समाज में जातिगत उदारता के दर्शन होते हैं जबकि कलिवर्णन में वर्णसंकर के प्रति घृणा जातिगत नियमों की कठोरता को सूचित करती है। लेकिन इसके बावजूद पुराणों में शूद्रों तथा स्त्रियों के लिये बनाये गये विधान मनुस्मृति की अपेक्षा उदार हैं।

पुराण पंचलक्षण के अन्तर्गत 'वंश' 'मन्वन्तर' तथा 'वंशानुचरित' पुराणों के ऐतिहासिक अध्ययन के लिये महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते हैं। पुराण पंचलक्षण का पालन करने वाले पुराणों में हरिवंश, ब्रह्म, वायु, ब्राह्मण्ड, विष्णु, मत्स्य तथा भागवत पुराण प्रमुख हैं। हरिवंश में राजवंशों का वर्णन अन्य पुराणों के वंशवर्णन से भिन्न है। हरिवंश की वंशावली जनमेजय के बाद समाप्त हो जाती है जबकि वायु पुराण, विष्णु पुराण तथा मत्स्य पुराण की वंशावलियां जनमेजय के बाद कलियुग के राजाओं का वंशक्रम में भी प्रस्तुत करती हैं। इसके अतिरिक्त हरिवंश के वंश क्रम में राजाओं के राज्यकाल का उल्लेख नहीं है जबकि वायु पुराण, विष्णु पुराण तथा मत्स्य पुराण में राजाओं के राज्यकाल का स्पष्ट उल्लेख है।

पुराणों से प्राचीन भारत की सामाजिक व्यवस्था के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है। पुराणों के पंचलक्षण सामाजिक जीवन से अप्रत्यक्ष रुप से सम्बद्ध हैं। प्राचीन हिन्दू शास्त्रकारों ने वर्णव्यस्था का विधान समाज की विभिन्न श्रेणियों में लोगों के कार्यो का उचित बंटवारा करके सामाजिक संगठन बनाये रखने के लिये किया ताकि प्रत्येक मनुष्य अपने–अपने निर्दिष्ट कर्तव्यो क पालन करते हुये आपसी मतभेदों एवं वैमनस्य से मुक्त होकर अपना तथा समाज का पूर्ण विकास कर सके। वर्ण व्यवस्था की उत्पति के सन्दर्भ में दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त, गुण तथा कर्म का सिद्धान्त आदि प्रमुख सिद्धान्त हैं। ऋग्वैदिक समाज में प्रारम्भ

में केवल तीन वर्ण थे– ब्रह्म, क्षत्र तथा विश। इस काल के अन्त में चौथे वर्ण शूद्र का उल्लेख भी मिलने लगता है। इस समय विभिन्न वर्णो के खान–पान, व्यवसाय, विवाह आदि के ऊपर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। उत्तर वैदिक काल में समाज में चारों वर्णो की स्पष्टतः प्रतिष्ठा हुई। इस काल के समाज में हम पहली बार विभिन्न वर्णो के बीच भेदभाव पाते हैं किन्तु वर्णव्यवस्था में जटिलता नहीं आने पाई थी। सूत्रों के काल में वर्ण व्यवस्था को सुनिश्चित आधारप्रदान किया गया और प्रत्येक वर्ण के कर्तव्यों का निर्धारण हुआ। वर्ण का आधार कर्म न मानकर जन्म माना गया तथा ऊंचनीच की भावना का विकास हुआ। धर्मशास्त्रों के समाज में वर्णव्यवस्था का जो स्वरुप निर्धारित हुआ वह बाद के समाजों के लिये आदर्श बनी रही। इस काल में वर्ण को पूर्णतया जन्मना माना गया। परम्परागत चार वर्णो के अतिरिक्त समाज में बहुसंख्यक वर्णसंकर जातियां उत्पन्न हो गयी।

हरिवंश में वर्ण विषयक सामग्री दो प्रकार के समाजों की प्रवृत्ति का परिचय देती है। राजवंशों में वर्णित अन्तर्जातीय सम्बन्धों के द्वारा तत्कालीन समाज में जातिगत उदारता के दर्शन होते है। जबकि कलिवर्णन में वर्णसंकर के प्रति घृणा जातिगत नियमों की कठोरता को सूचित करती है। विदेशी शासकों तथा वेद–विरूद्ध मतावलम्बियों के जातिगत ऐक्य के सिद्धान्तों के प्रति पुराणों के कलिवर्णन में सभी जगह विरोध की भावना दिखलाई देती है। इसीलिये विदेशियों तथा वेद–विरूद्ध मतावलम्बियों का शूद्रों की कोटि में रखा गया है।

मनुष्य का जीवन कर्म के अनुसार व्यवस्थित करने के लिये चार आश्रमों की व्यवस्था की गई। हिन्दू धर्मशास्त्र मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानते हैं तथा प्रत्येक आश्रम के निमित्त पच्चीस–पच्चीस वर्ष की अवधि निर्धारित करते हैं। आश्रमों की संख्या चार है–ब्रम्हचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास। विद्या प्राप्ति के लिये ब्रम्हचर्य आश्रम की व्यवस्था की गई थी। इस आश्रम में ब्रम्हचारी के लिये विद्याध्यन, गुरूसेवा, पवित्रता, इन्द्रियसंयम, भिक्षा आदि अपेक्षित कर्तव्य थे। हरिवंश में और्व, विश्वामित्र, वसिष्ठ, सान्दीपनि आदि ऋषियों के आश्रमों का उल्लेख प्राप्त होता है। दूसरा आश्रम गृहस्य आश्रम था इस आश्रम के विषय में पौराणिक उद्देश्य बंश–परम्परा की अभिवृद्धि है। स्त्री, परिग्रह, अर्थार्जन, अतिथि सत्कार, पितृतर्पण, यज्ञ, बलिकर्म, स्वाध्याय, पंचमहायज्ञ, आदि गृहस्थ के कर्तव्य बताये गये हैं। हरिवंश में भी गृहस्थ आश्रम की

महिमा गाई गयी है। हरिवंश में वंशवृत्तों के अन्तर्गत ऐसे अनेक राजाओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं। जिन्होनें नीतिपूर्वक शासन कर, प्रजापालन तथा सन्तानोत्पत्ति के द्वारा गृहस्थ आश्रम का पालन किया था। गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों को पूरा करने के बाद अवस्था के ढलने पर मनुष्य वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। हरिवंश में अनेक राजाओं के वानप्रस्थ आश्रम में जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। राजाब्रह्मदत्त तथा राजा ययाति के वृतान्त से पता चलता है कि ये राजा पत्नी सहित वानप्रस्थ आश्रम में गये थे। कृष्ण द्वारा कंस का वध किये जाने के उपरान्त उग्रसेन ने कृष्ण को मथुरा का राजपद संभालने तथा स्वयं वन जाने की इच्छा प्रकट की थी। वानप्रस्थ आश्रम के पश्चात् सन्यास आश्रम का प्रारम्भ होता था पुराणों में सन्यास आश्रम का उद्देश्य मोक्ष घोषित किया गया है हरिवंश में राजा ब्रह्मदत्त तथा ययाति द्वारा सन्यास आश्रम में रहते हुये कठोर तपस्या करके मोक्ष प्राप्ति के आख्यान मिलते हैं।

संस्कार का शाब्दिक अर्थ परिष्कार, शुद्धता, अथवा परिवत्रता है। हिन्दू व्यवस्थाओं में संस्कारों का विधान व्यक्ति के शरीर को परिष्कृत अथवा पवित्र बनाने के उद्देश्य से किया गया। प्रायः सभी धर्मशास्त्रकार संस्कारों की संख्या 16 मानते हैं। ये निम्नवत् हैं गर्भाध-ान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, विघारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ केशान्त, समावर्तन, विवाह तथा अन्त्येष्टि। इस सन्दर्भ में यह उल्ल्खेनीय है कि हरिवंश में उपुयक्त सोलह संस्कारों का उल्लेख नहीं प्राप्त होता। जिन संस्कारों का उल्लेख हरिवंश में मिलता है वे निम्वनत है 1.गर्भाधान 2. जातकर्म 3. नामकरण 4. उपनयन 5. विवाह 6. अन्त्येष्टि संस्कार।

हरिवंश कालीन समाज में विविध प्रकार के वस्त्राभूषणों का प्रयोग स्त्री तथा पुरुषों के द्वारा किया जाता था। अभिजात और धनी वर्ग के लोग रेशम से बने कौशेय वस्त्र धारण करते थे। ऊन से बने हुये वस्त्र को औंर्ण कहा जाता था। कपास निर्मित सूती वस्त्र भी उपयोग में लाये जाते थे। सन्यासी एवं ऋषि वर्ग के लोग मृगचर्म, वल्कल,, मेखला, काश और कुश आदि के वस्त्र प्रयोग करते थे। हरिवंश काल में 'अधोवस्त्र' को 'वास' अथवा शाटी कहा जाता था। ऊर्ध्ववस्त्र के लिय 'उत्तरीय' या 'प्रावार' शब्द का प्रयोग किया जाता था। पुरुष प्रायः पगड़ी बांधते थे। उच्च्च परिवारों और अभिजात वर्ग में सिर में मुकुट धारण करने का प्रचलन था।

स्त्रियों साडी के भीतर एक दूसरा वस्त्र पेटीकोट भी पहनती थीं। हरिवंश में स्त्री–पुरुष दोनों के विविध आभूषणों का विवरण मिलता है। अभिजात वर्गो के आभूषण सोने, चांदी, हीरे, जवाहरात, मोती आदि, के होते थे। सामान्य और निर्धन व्यक्तियों के आभूषण पीतल, मूंगा, कौड़ी, आदि के होते थे। शरीर के विविध अंगों के लिये अलग–अलग आभूषण प्रयोग में लाये जाते थे। हरिवंश के समय में विविध प्रकार के भोजन और पेय प्रचलित थे। भोजन करने वालों के दो वर्ग थे–एक शाकाहारी और दूसरा मांसहारी। दिन में दो बार भोजन करने की पृथा थी। समाज में मदिरापान का भी प्रचलन था।

हरिवंश में जिस समाज का विवरण मिलता है उसका रहन–सहन अत्यन्त उच्च कोटि का है। इसका कारण यह है कि हरिवंश में अधिकांशतः राजाओं और ऋषियों का उल्लेख मिलता है। जहां राजाओं एवं राजपरिवारों का रहन–सहन अत्यन्त भव्य एवं विलासितपूर्ण है वहीं ऋषि–मुनियों का रहन–सहन सात्विक एवं त्याग–तपस्या से ओतप्रोत हैं। हरिवंश में गांवों के लोगों का रहन–सहन भी सन्तोषजनक है। हरिवंश से समाज में प्रचलित विभिन्न प्रकार के रीति–रिवाजों की जानकारी भी प्राप्त होती है। समाज में यज्ञ किये जाने, तीर्थयात्रा में जाने, विविध प्रकार के व्रतों का अनुष्ठान किये जाने, विविध प्रकार के उत्सवों को मनाये जाने का रिवाज था। समाज में घूत, मृगया, झूला, मल्लयुद्ध, रास, जलक्रीड़ा, गोष्ठी और संसद, अभिनय एंव नाटक संगीत आदि के द्वारा मनोरंजन किये जाने का रिवाज था। हरिवंश कालीन समाज में अनेक प्रकार के अंधविश्वास भी प्रचलित थे। कोई भी कार्य शुभ नक्षत्र तथा दिन को सम्पन्न किया जाता था। समाज में वृक्ष पूजा, पशुपूजा, पर्वतपूजा, तथा सरिता, पूजन में भी लोगों की आस्था थी। मनोवांछित कार्य की पूर्ति के लिये विविध प्रकार के व्रत एवं उपवासों में लोगों की अटूट आस्था दिखाई पड़ती है।

हरिवंश में शिक्षा के जिस स्वरुप की जानकारी प्राप्त होती है वह अधिकांशतः प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्वति से ही मिलती जुलती है। शिक्षा का प्रारम्भ उपनयन संस्कार के पश्चात् होता था। प्रायः तीनों वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के बालक अपने कुटुम्ब से दूर गुरु के आश्रम में शिक्षा ग्रहण करते थे। छात्रों को सबसे पहले वेदों का अध्ययन कराया जाता था। वेद के छः अंग थे– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष। हरिवंश में उल्लेख

मिलता है कि कृष्ण और बलराम में छहों अंगों सहित सम्पूर्ण वेद, दीक्षा, संग्रह सिद्धि और प्रयोग इन चार पादों से युक्त धनुर्वेद की तथा रहस्य सहित शास्त्रसमूहों की शिक्षा प्राप्त की थी।

स्त्रियों के प्रति हरिवंश के विचार अधिकांशतः उदार है। कन्या, पत्नी तथा माता के रुप में उन्हें प्रतिष्ठित पद प्रदान किया गया है। वस्तुतः हरिवंश की भावना के मूल में प्रवृत्ति और निवृत्ति द्विविध भावनायें क्रियाशील है। जहां कहीं भी प्रवृत्ति मूलक भावना प्रधान है और गृहस्थ आश्रम को महत्वपूर्ण बताया गया है, वहां स्त्रियों के प्रति भी प्रशस्त विचार प्रकट किये गये हैं। परन्तु ऐसे स्थलों में जहांकि निवृत्ति–मार्ग की मुख्यता है तथा सांसरिक जीवन के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गयी है, वहां स्त्रियों के प्रति भी अनुदार विचार व्यक्त किये गये हैं।

धर्म शब्द 'धृ' घातु से बना है जिसका तात्पर्य है– धारण करना, आलम्बन देना, पालन करना। प्राचीन भारतीय के धर्म के विषय में सुनिश्चित ज्ञान हमें सर्वप्रथम वैदिक सहित्य से प्राप्त होता है। इस साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है। आर्य विभिन्न देवताओं के अस्तित्व में विश्वास करते थे। देवताओं की उपासना यज्ञों द्वारा की जाती थी मुख्यतः वैदिक देवताओं के तीन वर्ग है– आकाश के देवता, अंतरिक्ष के देवता तथा पृथ्वी के देवता। वैदिक धर्म का उद्देश्य मुख्यतः लौकिक सुखों को प्राप्त करना था। पूर्व वैदिक कालीन कर्मकाण्ड प्रधान तथा उत्तर वैदिक कालीन ज्ञानमार्गी धर्मो का समन्वय कर महाकाव्यों के समय में एक लोकधर्म का विकास किया गया जो सर्वसाधारण के लिये सुलभ था। देवसमूह में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को सर्वोच्च प्रतिष्ठा दी गयी। राम तथा कृष्णा को विष्णु का ही अवतार मान लिया गया तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये भक्ति तथा उपासना का सरल मार्ग बताया गया। पौराणिक युग में भक्ति के ऊपर विशेष बल दिया गया। पौराणिक धर्म का उददेश्य वैदिक धर्म के सरल ढंग से आम जनता के समक्ष प्रस्तुत करना है। शिव, विष्णु आदि वैदिक देवताओं को ग्रहण कर पुराणों ने उन्हें नवीन रुप दिया।

यद्यपि हरिवंश एक वैष्णव पुराण है किन्तु इसके बावजूद इसमें शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन तथा बौद्ध आदि अनेकों धार्मिक विचार मिलते हैं। हरिवंश के तीनों पर्वो में शैवधर्म से सम्बन्धित उद्वरण प्राप्त होते हैं। इन उद्वरणों कें शिव की महिमा का बखान किया गया है। स्वयं भगवान कृष्ण शिव की पूजा–अर्चना करते हुये चित्रित किये गये हैं। हरिवंश में देवी

विषयक वृतान्त शाक्त धर्म के प्रचलन की ओर संकेत करता है। देवी के दो विभिन्न स्वरुपों का समन्वय यहां पर सर्वव्यापिनी मातृशक्ति के रुप में हुआ है। शक्ति का पहला स्वरुप कृष्ण की भगिनी एकानंशा और योगमाया में मिलता है, और दूसरा रुप शिव की सहचारी भवानी में। यद्यपि हरिवंश एक वैष्णव पुराण है, लेकिन हरिवंश का कृष्णचरित्र अनेक पुराणों के कृष्ण चरित्र की पृष्ठभूमि है। अतः हरिवंश में कृष्ण चरित्र तथा विष्णु –भक्ति का प्रारम्भिक रुप देखा जा सकता है। इस प्रकार हरिवंश प्रारम्भि वैष्णव पुराण प्रतीत होता है। प्रारम्भिक वैष्णव पुराण होते हुये भी हरिवंश में उत्तरकालीन विष्णुभक्ति के बीज देखे जा सकते हैं। यहां पर विष्णु–कृष्ण को संख्य पुरुष तथा वेदान्त के ब्रह्म से एकीभूत किया गया है और कृष्ण को योगीश्वर कहा गया है। अन्य पुराणों में प्रमुख स्थान ग्रहण करने वाले पांचरात्र का एक स्थल को छोड़कर हरिवंश में पूर्ण अभाव है।

हरिवंश का दार्शनिक तत्व पौराणिक दर्शन के क्षेत्र में महत्व रखता है। हरिवंश में सांख्य और योग के विषयों पर अलग–अलग विचार प्रस्तुत किये गये हैं। किन्तु हरिवंश म कृष्ण का संख्य पुरुष से एकीभाव विशुद्ध सांख्यमत का पोषण नहीं करता। इस पुराण में संख्य पुरुषरुप कृष्ण में वेदान्त के परमब्रह्म का समन्वयन हुआ है। हरिवशं के अन्तर्गत योग का विस्तृत विवेचन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस विवचेन के प्रारम्भ में योग के पारिभाषिक शब्दों का लगभग अभाव है।

अष्टांगयोग के यम–नियम, प्राणायम आदि का इस स्थल में उल्लेख नहीं है। हरिवंश में योग का यह स्वरुप इस दर्शन की प्रारम्भिक अवस्था को सूचित करता है। किन्तु हरिवंश के योग सम्बन्धी विवेचन के अन्तिम स्थलों में हठयोग का निरुपण हुआ है। अतः हरिवंश का यह प्रसंग योग के प्रारम्भिक प्रसंग के अधिक अर्वाचीन ज्ञात होता है। इस प्रकार हरिवंश के योगनिरुपण में प्रारम्भिक स्थल प्राचीन हैं तथा अन्तिम स्थल अर्वाचीन।

वैष्णवधर्म में अवतारवाद का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हरिवंश में भगवान विष्णु के पौष्कर अवतार, वाराह, अवतार, नरसिंह अवतार, वामन अवतार, दत्तात्रेय अवतार परशुराम अवतार, राम अवतार, मत्स्य अवतार, कूर्म अवतार, कृष्ण अवतार, वेदव्यास अवतार कल्कि अवतार आदि का उल्लेख प्राप्त होता हैं। 'बाल्मिकी के गीत' तथा 'रामायण' का उल्लेख

क्रमशः हरिवंश के आदि और अन्तिम अध्यायों में मिलता है। हरिवंश पुराण में रामायण तथा रामावतार के वर्णन के आधार पर हम कह सकते हैं कि हरिवंश पुराण के काल में रामोपाख्यान से लोग परिचित थे तथा राम को आदर्श मानकर लोग राम के जीवन एवं चरित्र से प्रेरणा ग्रहण करते थे।

हरिवंश में शैव वैष्णव तथा शाक्त विचारों के अतिरिक्त अन्य परम्परा हरिवंश में अत्यन्त नगण्य स्थान रखती है। सूर्य गणेश, तुलसी, आदि की पूजा तथा माहात्म्य हरिवंश में पूर्णरुप से अनुपस्थित हैं। हरिवंश में बौद्धधर्म का उल्लेख कलिधर्म निरुपण के अन्तर्गत किया गया है। हरिवंश में इस अवैदिक धर्म के प्रति घृणा से भाव की अभिव्यक्ति हुई है। हरिवंश में रजि के वृतान्त के अन्तर्गत जिन धर्म के ज्ञान का अभाव हरिवंश पुराण की उस धार्मिक स्थिति का परिचय देता है जब 'जिन' को रजि के वृतान्त के अन्तर्गत रखने की परम्परा नहीं चली थी।

हरिवंश में शैव, वैष्णव तथा शाक्त धर्म में परम्पर समन्वय स्थापित किया गया है। हरिवंश पुराण के भविष्य पर्व के अन्तर्गत कृष्ण की कैलाश यात्रा के प्रसंग में कृष्ण के द्वारा शिव की स्तुति का वर्णन है। इसके बाद शिव कृष्ण की स्तुति करते हैं स्तुति के अन्त में शिव के द्वारा विष्णु और शिव में अभेद की स्थापना हुई है। इसी प्रकार हरिवंश में शाक्त धर्म के साथ भी शैव और वैष्णव धर्म का समन्वय दिखाया गया है। कहीं पर शक्ति को शिव की पत्नी के रुप में तो कहीं पर शक्ति को कृष्ण की भगिनी के रुप में चित्रित किया गया है।

हरिवंश पुराण में पंच महायज्ञों (भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ एवं ब्रह्म यज्ञ) के साथ–साथ श्रौत यज्ञों के प्रचलन के प्रमाण भी मिलते हैं। यद्यपि इस काल तक आते–आते अनेक विशाल यज्ञों का अस्तित्व समाप्त हो चुका था लेकिन राजसूय यज्ञ, अश्वमेघ यज्ञ आदि विशाल यज्ञों का प्रचलन हरिवंश पुराण के काल में भी था। हरिवंश में जप एवं तप से सम्बन्धित अनेक वृतान्त मिलते हैं। देवताओं के तप को प्रोत्साहन देने वाले प्रमुख देवता विष्णु माने गये हैं। हरिवंश में जप एवं तप की महत्ता के साथ साथ दान के औचित्य तथा महत्व का प्रतिपादन भी किया गया है। विभिन्न व्रतों की समाप्ति पर विविध वस्तुओं का दान किये जाने का विधान प्रस्तुत किया गया है। अठारह पुराणों के श्रवण से जो फल मिलता है, वह हरिवंश के श्रवण से प्राप्त बतलाया गया है। हरिवंश में वैष्णव भक्ति का अत्यन्त सरल रुप मिलता है।

इसमें वैष्णव भक्ति के पांचरात्र के लिये विशेष स्थान नहीं है। हरिवंश पुराण से तत्कालीन समाज में प्रचलित धार्मिक उत्सवों, के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। हरिवंश में इन्द्रयाग उत्सव, गिरियज्ञ उत्सव, पुष्यक व्रत आदि का उल्लेख हुआ है। हरिवंश में प्रभास, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, गंगातीर्थ, कुरुक्षेत्र, श्रीकंठ, गौतमाश्रम परशुराम कुण्ड, विनशनतीर्थ, रामतीर्थ, गंगाद्वार, कनखलतीर्थ, सोमोत्थानतीर्थ, कपाल मोचन तीर्थ, जम्बू मार्ग, सुवर्ण बिन्दु, कनकपिंगल, दशाश्वमेधिक तीर्थ, बदरीतीर्थ, नर–नारायण का आश्रम, फल्गुतीर्थ, चन्द्रवतीर्थ, कोकामुखतीर्थ, गंगासागर, सूकरतीर्थ, योगमार्ग, श्वेतद्वीप, ब्रह्मतीर्थ, बैकुण्ठकेदार, शापमोचन तीर्थ आदि प्रसिद्ध तीर्थो का उल्लेख प्राप्त होता है। हरिवंश में स्त्री और पुरुषों के धर्म में समानता के साथ–साथ कई क्षेत्रों में भिन्नता भी दिखाई देती है। उदाहरणार्थ– ईश्वर की आराधना का अधिकार, पुरुष के समान ही स्त्रियों को भी था किन्तु उन्हें यज्ञ करने तथा वेदों को सुनने का अधिकार नहीं था। हरिवंश में स्त्रियों के लिये अनेक प्रकार के व्रतों तथा दान दिये जाने के वृतान्त प्राप्त होते हैं। स्त्री एवं पुरुष दोनों की ही तीर्थयात्रा पर जाने, वहां विविध प्रकार के दान देने तथा भगवद् आराधना करने की स्वतन्त्रता दिखाई देती है।

पुराणों के विविध विषयों में इतिहास–तत्व महत्वपूर्ण है। पुराण पंचलक्षण के अन्तर्गत वंश मन्वन्तर तथा वंशानुचरित पुराणों के ऐतिहासिक अध्ययन के लिये पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं पुराण–निर्माता 'सूत' पुराणों की मूल ऐतिहासिक प्रवृति के प्रबल प्रमाण हैं। पुराण लक्षण के अन्तर्गत आने के कारण वंशावलियाँ लगभग सभी प्रारम्भिक पुराणों में मिलती हैं। ऐसे पुराणों में हरिवंश पुराण, ब्रह्म, पुराण, वायु पुराण, ब्राह्मण्ड पुराण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण तथा भागवत पुराण प्रमुख हैं। हरिवंश पुराण तथा ब्रह्म पुराण की वंशवलियाँ बहुत अधिक समानता रखती है। हरिवंश के प्रारम्भ से लेकर हरिवंश पर्व के उनतालीसवें अध्याय तक मन्वन्तरों तथा वंशों का वर्णन है। किन्तु हरिवंश में राजवंशों का वर्णन अन्य पुराणों के वंशवर्णन से भिन्न है। हरिवंश की वंशवली जनमेजय के बाद समाप्त हो जाती है। हरिवंश के वंशक्रम में राजाओं के राज्यकाल का उल्लेख नहीं है। हरिवंश के वंशवर्णन की ये विशेषतायें इस पुराण की ऐतिहासिक सामग्री में नवीन तत्वों का समावेश करती है। हरिवंश के इस स्थल में जनमेजय के बाद के केवल तीसरी पीढ़ी के राजा अजपार्श्व से यह वंश समाप्त हो जाता है किन्तु

ब्रह्मपुराण, वायु पुराण, मत्स्यपुराण तथा विष्णु पुराण, हरिवंश से भिन्न जनमेजय के बाद के राजाओं की एक लम्बी सूची देते हैं। यहां पर हरिवंश अन्य पुराणों की प्रवृत्ति से भिन्न होने के कारण इन पुराणों से पूर्ववर्ती ज्ञात होता है। हरिवंश में देवता तथा पितरों के वंशक्रम का वर्णन भी मिलता है। किन्तु इतिहासकार पार्जिटर ने इन्हें पूर्णकाल्पनिक माना है अतः ऐतिहासिक दृष्टि से इन वंशावलियों का मूल्य कम है। हरिवंश में इक्ष्वाकु वंश, अजमीढ़ वंश,अनेनस् का वंश, काशी राजवंश, उत्तर–पंचाल वंश, मगध राजवंश, पुरुवंश, कक्षेयु वंश, अंग वंश, तुर्वसु वंश, यदुवंश, वृष्णिवंश, सात्वत् वंश, शुंग, वंश आदि क्षत्रिय राजवंशों की वंशावलियों का उल्लेख प्राप्त होता है। हरिवंश में ब्राह्मणवंशों की वंशावलियाँ भी प्राप्त होती हैं। ब्रह्मणवँशों में वसिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, भार्गव आदि की वंश परम्परायें प्राप्त होती है। हरिवंश में विदेशी जातियों का वर्णन पुराणों की परम्परा के अनुसार ही मिलता है। हरिवंश में शक, यवन, पहलव, दरद तथा तुषार आदि विदेशी जातियों का उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु पुराणों में वर्णित विदेशी जातियों हूण जाति का उल्लेख हरिवंश में नहीं मिलता। हरिवंश में जिन विदेशी जातियों का उल्लेख किया गया है उन्हें पर्याप्त शाक्तिशाली कहा गया है जिसको युद्ध में पराजित करना बड़े गौरव की बात थी। हरिवंश में शक, यवन, पहलव, दरद आदि विदेशी जातियों को क्षत्रिय का पद दिया गया है। इन विदेशी जातियों तथा भारतीय आर्यो के मध्य पर्याप्त एकता तथा सामाजिक समरसता के लक्षण दिखाई देते हैं तथा इनका व्यापक पैमाने पर भारतीयकरण किया गया। इस प्रकार हरिवंश में वायु , ब्राह्मण्ड,विष्णु, मत्स्य तथा भागवत पुराण की भांति कलियुग के राजाओं की लम्बी वंशावली नहीं है किन्तु प्राचीन राजाओं के वृत्तों का विशुद्ध रुप इस पुराण के वंशवर्णन की विशेषता है। इस प्रकार हरिवंश का ऐतिहासिक महत्व बहुत अधिक है। हरिवंश के कुछ वृतान्त तो नितान्त मौलिक हैं। जबकि कुछ वृतान्त अन्य पुराणों के वृतान्तों से समानता रखते हैं।

अन्य पुराणों के समान ही हरिवंश में भी स्त्रियों के विषय में उदार विचार व्यक्त किये गये हैं। इसमें पुत्री का स्थान पुत्र की अपेक्षा निम्न माना गया है। पुत्र–प्राप्ति की कामना से हरिवंश–श्रवण की परम्परा भारत में चिरकाल से प्रचलित है। हरिवंश के काल तक बालिकाओं की वैदिक शिक्षा पर तो प्रतिबन्ध लगा दिया गया था किन्तु उन्हें व्यावहारिक, व्यावसयिक, आध्–

यत्मिक धार्मिक तथा राजनीतिक सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। हरिवंश में हमें विवाह के आठ प्रकारों में से ब्राह्म गन्धर्व एवं राक्षस विवाहों के उद्धरण बहुतायत में मिलते हैं। इस काल तक स्वयंवर प्रथा का प्रचलन समाप्त होने लगा था। हरिवंश में अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। इन्हें ऋष्यन्तर विवाह कहा गया है। हरिवंश में पत्नी को सम्मानीय स्थान दिया गया है। हरिवंश में स्त्रियों को धार्मिक क्रियाकलापों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। स्त्रियों के पतिव्रत धर्म तथा सदाचरण पर विशेष बल दिया गया है साथ हीं उन्हें विविध प्रकार के व्रतों का अनुष्ठान एवं दान देते हुये भी दिखाया गया है। विभिन्न महत्वपूर्ण अवसरों पर एंव धार्मिक अवसरों पर पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य है। सामाजिक जीवन में नारी की स्थिति विरोधाभासपूर्ण थी। हरिवंश में एक ओर तो नारी प्रशंसा के प्रसंग मिलते हैं तो दूसरी ओर उनके प्रति हीन भावनायें व्यक्त की गई हैं। हरिवंश के नारियों के प्रशंसात्मक प्रसंगों में नारी को सृष्टि तथा सामाजिक सन्तुलन का कारण भूत आवश्यक अंग माना गया है। स्त्रियों ने उच्चकोटि की नौतिकता को अंगीकार किया था तथा वे अपने चरित्र और आदर्श के कारण प्रशंसनीय थी। उनमें शील, सच्चरित्रता एवं पतिव्रत धर्म का पालन आदि उदात्त गुण है। किन्तु जहां एक ओर स्त्री की प्रशंसा की गई है। वहीं दूसरी ओर उनके प्रति हीन भावनायें व्यक्त की गई हैं। हरिवंश के कुछ स्थलों में स्त्रियों की संगति शूद्रों के समान ही वर्जित मानी गई है। स्त्री को नरक और काम का प्रधान अस्त्र सिद्ध किया गया है। हरिवंश में विधवा की दयनीय दशा का भी वर्णन किया गया है। समाज में सती प्रथा के प्रचलित होने के भी प्रमाण मिलते हैं। किन्तु हरिवंश में पर्दाप्रथा के प्रचलन के प्रमाण नहीं मिलते। आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भरता के लिये स्त्रियां विभिन्न जीविका अपनाती थीं। विदुषी स्त्रियां आचार्य बनकर समाज में उच्च स्थान प्राप्त कर सकती थी। समाज में गणिकायें भी थी। राजा–रानियों तथा अन्य कुलीन स्त्रियों की सेवा–शुश्रुषा के लिये परिचारिकायें होती थीं। स्त्रियाँ परिचारिका, दासी, धात्री, गणिका, स्त्री गुप्तचर, स्त्रीसैनिक वेश्या,नटी गोपी, किराती, शबरी नर्तकी, आदि के कार्य भी करती हैं। इस प्रकार स्त्रियों के प्रति हरिवंश के विचार अधिकांशतः उदार हैं।

इस प्रकार हरिवंश में जहां एक ओर पुराण पंचलक्षणों का पालन किया गया है। वहीं महाभारत के खिल के रुप में भी इसकी प्रतिष्ठा है। हरिवंश में जिस समाज एवं धर्म

की झांकी प्रस्तुत की गयी है उसका ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अनुशीलन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हरिवंश में प्रतिबिम्बित समाज एवं धर्म तत्कालीन युग के विषय में यथेष्ट उन्नति एवं उदारता के दृष्टिकोण को सूचित करते हैं। साथ ही हरिवशं का ऐतिहासिक महत्व भी बहुत अधिक है। हरिवंश के कुछ वृतान्त तो नितान्त मौलिक है। जब कि कुछ वृतान्त अन्य पुराणों के वृतान्तों से समानता रखते हैं।

शोध प्रबन्ध का मूल्यांकन :-

यह शोध–प्रबन्ध शोध छात्रा के अथक परिश्रम का परिणाम है। पांच वर्ष की अवधि में शोध छात्रा द्वारा अपने विषय का गंभीर अध्ययन किया गया है। हरिवंश पुराण तथा इससे सम्बन्धित जो भी पुस्तकें जहां भी उपलब्ध हुई वहां से लाकर उन्हें पढ़ने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त 18 पुराणों तथा उपपुराणों का एवं उनसे सम्बन्धित पुस्तकों का भी गंभीर अध्ययन किया गया है तथा इसके लेखन में शोधपरक गवेषणात्मक शैली को अपनाया गया। विषय की गम्भीरता को देखते हुये विशिष्ट शब्दों का व्याकरण सम्मत विश्लेषण किया गया है तथा यह प्रयास किया गया है कि उनका व्यवाहारिक स्वरुप भी शोध प्रबन्ध में स्पष्ट रुप से दिखलाई दे। ज्ञान के सागर अथाह है इसमें जिज्ञासु द्वारा जितनी भी डुबकी लगाई जाये वह कम है। इसलिये यह शोध प्रबन्ध मुझे एक प्रकार का आत्मसन्तोष और सन्तुष्टि प्रदान करता हैं। मैं इसे एक मूल्यवान उपलिब्ध मानती हूं। और यह स्वीकार करती हूँ कि मेरा यह परिश्रम सार्थक है। और भविष्य में समुचित प्रतिफल प्रदान करने वाला है। मैने शोध–प्रबन्ध का मूल्यांकन निम्न दृष्टिकोण अपनाकर किया है–

1. शोध के लिये अपनाई गई विधि :-

मेरा यह शोध–प्रबन्ध 'हरिवंश पुराण में प्रतिबिम्बित समाज एवं धर्म का ऐतिहासिक अनुशीलन' सामाजिक विषय से सम्बन्धित है तथा यह इतिहास से जुड़ा हुआ है। इसलिये सामाजिक विषय से सम्बन्धित जो शोध विधि, शोध विज्ञान में निर्धारित की गई है उसी का अनुसरण मैने अपने शोध–प्रबन्ध में किया है तथा उन बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये मैने यह शोध कार्य किया है जो शोध के लिये निर्धारित किये जाते हैं। ये बिन्दु निम्नलिखित है :–

अ. स्थिति एवं स्थल का अवलोकन :-

शोध-प्रबन्ध में ऐतिहासिक साक्ष्यों का पता लगाने के लिये मैने उन स्थानों का भ्रमण किया जहां पुराणों से सम्बन्धित साक्ष्य उपलब्ध हैं। विशेषरुप से उन स्थलों का अवलोकन किया गया है जिनका उल्लेख हरिवंश में मिलता है जैसे– मथुरा, गोकुल, प्रयाग, नैमिषारण्य, काशी, अयोध्या आदि। इन स्थलों का अवलोकन करने के पश्चात् जनसामान्य में पुराणें के प्रति वास्तविक भावना के जानने में मदद मिली।

ब. अन्वेषण एवं सर्वेक्षण :-

हरिवंश पुराण तथा अन्य पुराणों का प्रकाशन गीताप्रेस गोरखपुर से किया गया है। मैने गीताप्रेस, गोरखुपर के संस्करण के अतिरिक्त हरिवंश के चित्रशाला प्रेस, पूना तथा वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित प्राचीन संस्करणो की भी अध्ययन किया है तथा अध्ययन के पश्चात समाज एवं धर्म से सम्बन्धित उल्लेखों का ऐतिहासकि दृष्टिकोण से सर्वेक्षण भी किया है। इसके अतिरिक्त अन्य पुराणों में मिलने वाले समाज एवं धर्म से सम्बन्धित विवरणों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया है।

स. शोध-विषय से सम्बन्धित विषय सामग्री की खोज :-

शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिये जहां मेरे द्वारा हरिवंश के गीताप्रेस, गोरखपुर, बेकटेश्वर प्रेस–बम्बई तथा चित्रशाला प्रेसपूना के संस्करणों का गम्भीर अध्ययन किया गया वहीं प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों का अध्ययन भी किया गया तथा धर्मसूत्र ग्रन्थों एवं महाकाव्यों का भी अध्ययन किया गया इसके अतिरिक्त तुलनात्मक अध्ययन के लिये वायु पुराण, ब्राम्हाण्डपुराण, ब्राह्म पुरण, विष्णु पुराण, भागवत पुराण तथा मत्स्य पुराण का भी विशेष रुप से अध्ययन किया गया है। इन ग्रन्थों के माध्यम से शोधकार्य पूर्ण करने में काफी सहयोग मिला। इन ग्रन्थों के अलावा प्राचीन इतिहास से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया गया है इनमें वर्णित सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति के अनुसार निष्कर्ष निकालने में पर्याप्त सहयोग मिला है इनके अतिरिक्त श्रीमती वीणापणि पाण्डे द्वारा रचित 'हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन 'से काफी सहयोग प्राप्त हो सका। इसके अतिरिक्त पुराणों पर जो कार्य भारतीय तथा अंग्रेज विद्धानों ने किये हैं उनका अध्ययन भी बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ इन विद्धानों में जे0एन0

फरक्यूहर, आर०सी० हाजरा, एफ०डब्ल्यू० हाफकिन्स, पी०वी० काणे, सिद्धदेश्वरी नारायण राय डी० आर० पाटिल ,विण्टर नित्स, हरि नारायण दुबे आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

2- व्यक्तिगत सर्वेक्षण-

'हरिवंश पुराण' के विषय में महत्व की वास्तविक स्थिति का पता लगाने के लिये मैने कुछ बुद्धजीवियों, इतिहासकारों, समाजसेवियों, संस्कृत विद्यालयों के आचार्यों, धार्मिक संस्कार कराने वाले पुरोहितों, मंदिर के पुजारियों एवं महन्तों से सम्पर्क स्थापित किया तथा उनसे कई एक प्रश्न 'हरिवंश पुराण में प्रतिबिम्बित समाज एवं धर्म के ऐतिहासिक अनुशीलन' से सम्बन्धित पूंछे। इन सभी ने हरिवंश पुराण के महत्व को स्वीकार किया तथा मेरे प्रश्नों का उत्तर दिया।

3- शोध सहयोग-

शोध प्रबन्ध लिखने के लिये मुझे जिन व्यक्तियों और जिन संस्थाओं से सहयोग मिला। उन्हीं की वजह से यह शोध कार्य पूर्णता की ओर पहुंचा। इस संदर्भ में पं०जे०एन०पी०जी० कालेज बांदा के इतिहास विभाग के सेवानिवृत्ति विभागाध्यक्ष प्रो० बी० एन० राय जी का परामर्श एवं समुचित मार्गदर्शन इस शोध प्रबन्ध का निर्देशन करता रहा है। उन्हीं की कृपा से यह शोध प्रबन्ध अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हुआ। इसके अतिरिक्त पं० जे०एन०पी०जी० कालेज बांदा के पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय और राजकीय पुस्तकालय से भी सहयोग प्राप्त हुआ। साथ ही इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के पुस्तकालय तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व विद्यालय के पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग तथा गंगानाथ झा पुस्तकालय इलाहाबाद से भी काफी अधिक मात्रा में पुस्तकीय सहायता प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त इतिहास विभाग में कार्यरत अंशकालीन प्रवक्ता डॉ० संतोष तिवारी का मार्गदर्शन भी शोध की विषय सामग्री के अनुसार समय-समय पर प्राप्त होता रहा है। यह शोध प्रबन्ध इन सभी के सहयोग का परिणाम है।

4- हरिवंश पुराण पर अब तक हुये शोध कार्यों की तुलनात्मक समीक्षाः-

अनुसंधान एवं अन्वेषण बुद्धिमान मानव की प्रकृति है। वह स्वभावतः नवीन उपलब्धि के लिये प्रयासरत रहता है। उसकी विषयवस्तु में अन्तर होता है। शोध शैली में अन्तर

होता है किन्तु वह प्रचीनता को मानसिक कोष में सुरक्षित रखकर नवीनता की खोज में आगे बढ़ता है। ब्रिटिश शासनकाल में वर्तमान शोध प्रणाली का उदय हुआ तथा सन् 1860 से लेकर अब तक अनेक शोध कार्य विविध विषयों मे हुये। ये शोधकार्य इतिहास विषय में भी हुये, जिन व्यक्तियों ने शोध कार्य किया उन्हें योग्यतानुसार डी0फिल,पी0एच0डी0 और डी0लिट आदि उपाधियों से सम्मानित किया गया। पुराणों के विविध विषयों पर भी अनेक विद्वानों ने शोध कार्य किये हैं। पुराणों के प्रसिद्ध अध्येतागण फरक्यूहर, विण्टरनित्स, हापकिन्स, आर0सी0 हाजरा, इत्यादि विद्वानों ने भी हरिवंश पुराण के महत्व को स्वीकार किया है। फरक्यूहर के अनुसार हरिवंश पुराण बीसवां महापुराण है। श्रीमती वीणापाणि पाण्डेय ने अपने ग्रन्थ 'हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचना' में हरिवंश के सांस्कृतिक पक्ष को उजागर किया है।

जिस शोध प्रबन्ध की रचना मेरे द्वारा की गयी है उसमें उन कमियों को पूरा करने का प्रयास किया गया है जो हरिवंश पुराण पर काम करने वाले विद्वानों के शोध ग्रन्थों में दृष्टिगत होती है इसलिये यह शोध प्रबन्ध हरिवंश के संदर्भ में सर्वथा नई सोंच प्रस्तुत करता है। जो अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। इस शोध प्रबन्ध हरिवंश पुराण में प्रतिबिम्बत समाज एवं धर्म का ऐतिहासिक अनुशीलन में प्राचीन परम्पराओं को नवीन वैज्ञानिक शोध परक दृष्टिकोण से देखा गया है और उसकी समुचित समालोचना प्रस्तुत की गई है।

शोध के परिणामः-

जिस शोध–प्रबन्ध को पांच वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् सृजित किया गया है तथा इसमें उचित परामर्श और निर्देशन का अनुसरण किया गया है। वह शोध प्रबन्ध निश्चित ही मेरे परिश्रम का वास्तविक मूल्याकंन है। इसके संदर्भ में निम्न निष्कर्षात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं।

1- हरिवंश पुराण के सदर्भ मे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन :-

यह शोध प्रबन्ध हरिवंश पुराण में प्रतिबिम्बत समाज एवं धर्म का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अनुशीलन करता है। साथ ही विभिन्न वंशों का विश्लेषण भी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किया गया है। शोध प्रबन्ध की यह उपलब्धि सर्वथा नवीन है।

2– हरिवंश पुराज के यथार्थ पर नवीन दृष्टिः– पुराण भारतीय संस्कृति और धर्म के मेरूदण्ड रहें हैं तथा तत्कालीन भारतीय संस्कृति ,धर्म एवं इतिहास की उपयोगी सामग्री हमें पुराणों में मिलती है। अष्टादश पुराणों में हरिवंश पुराणों का परिगणन नहीं किया गया है, क्योंकि इसे महाभारत का खिल माना जाता है किन्तु स्वरूप से यह एक पुंराण है और पुराण स्वतंत्र रूप में विकसित हुआ है उसमें जहॉ एक ओर अन्य पुराणों की विशेषतायें प्राप्त होती हैं वही दूसरी ओर इसकी अपनी विशेषतायें भी हैं।

3– हरिवंश पुराण की धार्मिक महत्ता पर नवीन दृष्टिः–हरिवंश में जहां एक ओर सामाजिक और ऐतिहासिक विशेषताएं प्राप्त होती हैं, वहीं दूसरी ओर इसकी धार्मिक महत्ता भी बहुत अधिक है। पुत्रहीन तथा निःसंन्तान व्यक्तियों को पुत्र प्राप्ति की इच्छा से इस वैज्ञानिक युग में भी लोगों का इस बात पर पूरा विश्वास है।

शोध की उपलब्धिः–शोध प्रबन्ध की उपयोगिता शोध छात्रा के लिये केवल पी.एच.डी. अथवा डी.लिट. की उपाधि प्राप्त करना मात्र नहीं हैं, अपितु शोधार्थिनी ने शोध कार्य से अपने शोध विषय में निपुणता प्राप्त कर ली है। तथा वह अपने शोध विषय की अधिकृत विद्वान मानी जाती है। इससे उसके बौधिक स्तर और योग्यता स्तर का विकास होता हैं। किन्तु इसका वास्तविक लाभ उन पाठको को विशेष रूप से मिलेगा जो गम्भीरता पूर्वक इस शोध प्रबन्ध का अध्ययन करेगें तथा शोधार्थिनी की बुद्धि का मूल्यांकन करगें। यदि कोई भी शोधार्थी , विचारक अथवा इतिहासकार हरिवंश पुराण के किसी भी विषय पर पुस्तक लेखन का कार्य करेगा तो उसके लिये यह शोध प्रबन्ध उपयोगी सिद्ध होगा। भविष्य में शोध प्रबन्ध उपयोगी सिद्ध हो इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर इस शोध प्रबन्ध का सृजन किया गया है तथा शोधार्थिनी उन सभी की कृतज्ञ रहेगीं जो इस शोधन प्रबन्ध का अध्ययन करगें तथा शोधर्थिनी के श्रम का मूल्यांकन करगें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- ❖ मौलिक ग्रन्थ
- ❖ सहायक ग्रन्थ
- ❖ कोश एवं विश्वकोष
- ❖ जर्नल्स एवं शोध पत्र/पत्रिकायें
- ❖ अभिलेख
- ❖ विदेशी यात्रियों के विवरण

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मौलिक ग्रन्थ

अग्नि पुराण — आनन्द आश्रम, पूना, 1906, एम.एन. दत्त द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता, 1903

अर्थर्ववेद — सायण भाष्य सहित, संपा0 एम.पी. पंडित, बम्बई, 1895–98.

अर्थशास्त्र — कौटिल्य, संपा0आर. शामाशास्त्री, मैसूर, 1923.

अपराजितपृच्छा — भुवनदेव, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, 1950.

अभिधान चिन्तामणि — हेमचन्द्र, गुजरात, 1914.

अमरकोष — अमर सिंह, पूना, 1907.

अष्टाध्यायी — पाणिनी, संपा0 एस.सी.वसु, दिल्ली, 1977.

अहिर्वुधन्य संहिता — एम0डी0रामानुजाचार्य, आडयार, मद्रास, 1916.

आदि पुराण — जिनसेन, 2 भागों में भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1951.

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र — संपा0 यू0सी0 पाण्डेय काशी संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1971.

आपस्तम्ब धर्मसूत्र — संपा0 जी ब्यूहलर, बाम्बे संस्कृत सीरीज, पूना. 1932.

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र — संपा0ए0सी0 शास्त्री, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज,बड़ौदा,1955.

आश्वलायन गृह्यसूत्र — संपा0टी0 गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, 1923.

आश्वलायन श्रोतसूत्र — संपा0 एच.एन आप्टे, पूना, 1917.

उत्तर गीता — गौडपाद विरचित, वाणी लिवास मुद्रणालय, श्रीरंगम, 1910.

ऋग्वेद — वैदिक संशोधन मण्डल, वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, 1946.

ऐतरेय ब्राम्हण — संपा0 आर. अनन्त कृष्ण शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, 1941.

कठोपनिषद — कल्याण उपनिषदंक, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1949.

कात्यायन स्मृति — संपा0 पी0वी0 काणे, बम्बई, 1943.

कालिका पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई.

कूर्म पुराण	बिब्लियोथिका इंडिका, संपा. नीलमणि मुखोपाध्याय. कलकत्ता, 1890.
कौमुदी महोत्सव	विज्जिका कृत, शाकुन्तला राव शास्त्री, बम्बई, 1952
कृतयकल्पतरू	लक्ष्मीधर संपा0 के.वी. आर. आयंगर, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, 1941—53.
कृत्यरत्नाकर	चण्डेश्वर ठाकुर विरचित, एशियाटिक सोसाइटी , बंगाल. 1925.
कृत्यसार समुच्चय	अमृतनाथ झा विरचित काशी संस्कृत सीरीज, चतुर्थ पुष्प.
गदाधर पद्धति	गदाधर भट्टकृत, बिब्लियोथिका इण्डिका, एसियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल से प्रकाशित.
गरूड़ पुराण	सरस्वती प्रेस कलकत्ता, 1890.
गीत गोविन्द	जयदेवकृत, बम्बई, 1929.
गोपथ ब्राम्हण	राजेन्द्रलाल मित्र व विद्याभूषण द्वारा संपादित, कलकत्ता 1871.
गौतम धर्म सूत्र	अनु. यू.सी. पाण्डेय, काशी संस्कृत सीरीज, बनारस 1966.
चतुर्वर्ग चिन्तामणि	हेमाद्रि, पूना, 1878.
छान्दोग्य उपनिषद	संपा, राजा राजेन्द्र लाल मिश्र व ई.वी कावेल नई दिल्ली, 1878
जयाख्य संहिता	इम्बार कृष्ण माचार्य द्वारा संपादित, गायकवाड़ ओरियनृल सीरीज—54, बड़ौदा 1931
जातक	संपा.वी.फाउसवोल, 6 भागों में, लन्दन, 1877—98 . अनु0 ई.वी. कावेल, कैम्ब्रिज, 1895—1913.
जैन हरिवंश पुराण	माणिक्यचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, 31वां पुष्प.
तैत्तिरीय आरण्यक	आनन्द आश्रम प्रेस, पूना 1897.
तैत्तिरीय ब्रम्हण	सायणाचार्य के भाष्य सहित संपा, विनायक गणेश आप्टे, आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1738.
तैत्तिरीय संहिता	आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1860.

दान क्रिया कौमुदी — गोविन्दानन्द विरचित, बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1903

दान सागर — बल्लाल सेन, संपा.बी. भट्टाचार्य, कलकत्ता,1953–55.

दित्यावदान — संपा0 ई.वी. कावेल एवं ए.ए. नैल, एमस्टर्डम, 1970

दीघ निकाय — संपा0 टी. डब्ल्यू. रिज डेविड्स एवं जे.ई.कार्पेटर, लन्दन, 1890–91.

देवी भागवत — वैकेटश्वर प्रेस, बम्बई

धम्मपद — दि बुद्धा सोसाइटी, बाम्बे

ध्वन्यालोक — हरिदास संस्कृत ग्रन्थ माला–66,1937.

नाट्यशास्त्र — बिब्लियोथिका इंडिका न0 272, भाग–1, (1950, ट्रान्सेलेटेड) बाई मनमोहन घोष.

नारद स्मृति — आक्सफोर्ड, 1989.

निघण्टु तथा निरूक्त — हिन्दी अनु0 सत्यभूषण योगी एवं शशि कुमार . दिल्ली, 1977.

निर्णय सिन्धु — कमलाकर भट्टकृत,चौखम्बा,सीरीज नं0 266.

नीतिसार — कामन्दक कृत, संपा, आर, एल. मित्रा, कलकत्ता 1884.

पद्मपुराण — नवल किशोर प्रेस, लखनऊ

पाराशर स्मृति — मधवाचार्य की टीका सहित, कलकत्ता, 1833

पारस्कर गृहयसूत्र — एम. जी. वक्रे द्वारा संपादित, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, 1977.

बृहत्संहिता — बाराहमिहिरकृत,वाराणसी, 1895.

बृहद्धर्म पुराण — बिब्लियोथिका इंडिका न्यू सीरीज नं0 668, संपा हर प्रसाद शास्त्री, 1888.

बृहदारण्यक उपनिषद — शंकराचार्य की टीका सहित, अनु0 स्वामी माधवा नन्द, अल्मोड़ा, 1950.

बृहन्नारदीय पुराण — बिब्लियोथिका इण्डिका, संपा, ऋषिकेश शास्त्री, कलकत्ता, 1891

बृहस्पति स्मृति	संपा के.वी. आर आयंगर, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, 1941
ब्रम्हपुराण	आनन्दश्रम संस्कृत सीरीज 1895, ग्रन्थांक 28.
ब्रम्हवैर्क्तपुराण	कलकत्ता,1888, जीवनन्द भट्टाचार्य द्वारा संशोधित
ब्रम्हाण्ड पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस , बम्बई
बौधायन गृहासूत्र	संपा आर. शामाशास्त्री मैसूर 1927
बौधायन धर्मसूत्र	हिन्दी ब्याख्याकार—उमेशचन्द्र पाण्डेय,चौरबम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी 1972.
बौधायन श्रौतसूत्र	संपा डब्ल्यू . कैलेण्ड, 2 भागों में, हालैण्ड 1903.
भगवत गीता	गीता प्रेस, गोरखपुर, 1982.
भविष्य पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1912
भागवत पुराण	(1) टी.के. कृष्णामाचारी द्वारा संपादित एवं निर्णय सागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित (2) गीता प्रेस, गोरखपुर 1953
मत्स्य पुराण	आनन्दश्रम ग्रन्थावली ग्रन्थांक 41—सन् 1900
मज्झिम निकाय	संपा. ट्रेकनर, आक्सफोर्ड, 1898—1935
मदन महार्णव	विश्वेश्वर भट्टकृत संपा. जी.एच. भट्ट, बड़ौदा
मदनरत्न प्रदीप	मदन सिंह देवकृत, गंगा ओरियण्टल सीरीज नं.—6 संपा एम के शर्मा, बीकानेर,1948
मनुस्मृति	कुल्लूक कृत टीका, काशी संस्कृत सीरीज पुस्तकमाला 114
महाभारत	(1) वेदव्यास कृत 6 भागों में गीता प्रेस गोरखपुर, 1968. (2) रामचन्द्र शास्त्री द्वारा संपादित, एस.एन. जोशी द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, चित्रशाला प्रेस पूना, प्रथम संस्कृत 1930.

महाभाष्य — पतंजलिकृत, संपा. एफ. कलिहार्न, 3 भागों में बम्बई, 1892–1909

मार्कण्डेय पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई,

मानवधर्म शास्त्र — इन्दिरारमण कृत, ज्ञानमण्डल प्रेस, काशी, 1999

मालविकाग्निमित्र — कालीदासकृत कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे

मृच्छकटिक — शूद्रककृत, द्वितीय संस्करण, पूना 1950.

याज्ञवल्क्य स्मृति — मिताक्षरा की टीका सहित, संपा, जगन्नाथ रघुनाथ धारपुरे, बम्बई, 1914.

युक्तिकल्पतरू — भोज द्वारा रचित, संपा ईश्वर चन्द्र शास्त्री कलकत्ता,1917

रघुवंश — कालीदास कृत काशी संस्कृत सीरीज, पुस्तकमाला, 51, 1995

राततरंगिणी — कल्हणकृत, संपा एम.ए. स्टीन, बम्बई, 1892.

राजनीति रत्नाकर — चण्डेश्वर मिश्रकृत, संपा काशीप्रसाद जायसवाल पटना 1924.

रामायण — (1) बाल्मीकिकृत, गीता प्रेस गोरखपुर, 1967.
(2) संपा पी.एल. वैध बड़ौदा, 1962.

लिंग पुराण — संपा जीवनन्द विद्यासागर कलकत्ता, 1885.

वसिष्ठ धर्मसूत्र — ए.ए. क्यूहरर द्वारा संपादित, पूना, 1930.

वामन पुराण — वैकटेश्वर प्रेस बम्बई.

वायुपुराण — बिब्लियोथिका इण्डिका, एसियाटिक, सोसाइटी आफ बंगाल द्वारा प्रकाशित.

वाराह पुराण — बंगाल एसियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता,

विष्णु पुराण — वैकटेश्वर प्रेस बम्बई,

विष्णु धर्मोन्तर पुराण — वैकटेश्वर प्रेस बम्बई 1912.

विष्णु स्मृति — आक्सफोर्ड, 1880

शतपथ ब्राम्हण — संपा ए. बेवर, लन्दन, 1885.

श्वेताश्वतर उपनिषद — कल्याण उप निषदंक, गीता प्रेस गोरखपुर, 1949.

शास्त्रवार्ता समुच्चय — मुनि जिवा विजय जी कृत

शिवपुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई.

शुक्रनीति — अनु.वी.के सरकार, इलाहाबाद 1914

स्कन्द पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई

स्मृतिचंद्रिका — देवण्ण भट्टकृत संपा, एल. श्री निवासाचार्य, मैसूर, 1914

स्मृति मुक्ताफल — वैधनाथ कृत, धरपुरे द्वारा सम्पादित .

समरांगण सूत्रधार — बड़ौदा सेन्ट्रल लाइब्रेरी, 1925.

हरिवंश पुराण पंडित — (1) वेदव्यास कृत, हिन्दी टीकासहित, टीकाकार रामनारायण दत्ता शास्त्री पाण्डेय 'राम' गीताप्रेस गोरखपुर, सं0 2058

(2) संपा रामचन्द्र शास्त्री एस.एन. जोशी द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, चित्रशाला प्रेस, पूना, प्रथम संस्करण, 1936

(3) खेमराज सेठ द्वारा प्रकाशित, वेकटेश्वर प्रेस बम्बई, 1847

हर्ष चरित्र — बाणभट्ट कृत, संपा, पाण्डुरंग वामन काणे, बम्बई, 1918.

सहायक ग्रन्थ-

अग्रवाल, कृष्ण गोपाल,	भारतीय सामाजिक संस्थायें,दशम् संस्करण, आगरा,
अग्रवाल वासुदेवशरण	प्रचीन भारतीय लोकधर्म, अहमदाबाद, 1964.
वही,	हर्ष चरित्र एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, 1964
वही,	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, तृतीय संस्करण वाराणसी,1996.
वही,,	मार्कण्डेय पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद,
वही,	वामनपुराणः एक सांस्कृतिक अध्ययन पृथ्वी प्रकाशन,वाराणसी, 1964.
अग्निहोत्री.पीडी.	पंतजलि कालीन भारत पटना 1963
अय्यर,पी.एस.एस.	इबोल्यूशन आफ हिन्दू मॉरल आइडियाज, दिल्ली, 1976
अली.एस.एम.	दि ज्यॉग्राफी आफ दि पुराणाज नई दिल्ली, 1966
अल्तेकर, अनन्त सदाशिव,	सोर्सेज आफ हिन्दू धर्म शोलापुर, 1952
अल्तेकर, अनन्त सदाशिव,	दि पोजीशन आफ बुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन दिल्ली, 1962.
अल्तेकर, अनन्त सदाशिव,	प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति वाराणसी, 1955
आप्टे, बी.एस.	सोशल एण्ड रिलिजस लाइफ इन दि गृहासूत्राज बम्बई, 1954.
आयंगर के.वी. आर.	आस्पेक्ट्स ऑफ ऐंशिएन्ट इण्डियन इकोनामिक थाट, वाराणसी, 1965.
आयंगर के.वी. आर.	सम आस्पेक्ट्स आफ दि हिन्दू न्यू आफ लाइफ एकार्डिग टू धर्मशास्त्र बड़ौदा 1952.

इलियट, सी — हिन्दूइज्म एण्ड बुद्धिज्म, भाग 2 लन्दन, 1921.

ईश्वरी प्रसाद एवं शर्मा शैलेन्द्र — प्रचीन भारतीय कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, इलाहाबाद, 1990.

उपाध्याय के.एन. — अर्ली बुद्धिज्म एण्ड भगवदगीता, दिल्ली, 1971

उपाध्याय बल्देव — संस्कृत साहित्य का इतिहास, दशम संस्करण,वाराणसी, 1978.

उपाध्याय बल्देव — पुराण विमर्श, तृतीय संस्करण वाराणसी, 1987

उपाध्याय, रामजी, — प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति,इलाहाबाद,1963,

ओझा, मधुसूदन, — पुराण निर्माणाधिकरणम् तथा पुराणोत्पत्ति प्रंसग, जयपुर, सं0 2009.

ओमप्रकाश — प्राचीन भातर का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास , दिल्ली 1975,

ओमप्रकाश — अर्ली इण्डियन लैण्ड ग्राण्ट्स एण्ड स्टेट इकोनामी, इलाहाबाद, 1988

वही, — पोलिटिकल आइडियाज इन दि पुराणाज,इलाहाबाद 1977

कविराज, गोपीनाथ, — भारतीय संस्कृति और साधना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1963

काणे पाण्डुरंगवामन, — धर्मशास्त्र का इतिहास, 5 भागों में अनुवादक अर्जुन चौबे काश्यप, लखनऊ, 1980.

कीथ, ए.बी. — दि रिलीजन एण्ड फिलासफी ऑफ दि वेद एण्ड उपनिषद, 2 भागों में, पुनर्मुद्रण दिल्ली, 1970

कीथ, ए.बी. — ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, आक्सफोर्ड 1928

कुप्पू स्वामी, बी., — धर्म एण्ड सोसाइटी, मद्रास, 1977

केरफेल, डब्ल्यू, — दस पुराण पंचलक्षण, बॉन, 1927

केरफेल, डब्ल्यू,	एन इंट्रोडक्शन टु इंडियन हिस्ट्री बम्बइ 1956
कौशाम्बी, डी0डी0,	प्राचीन भारत की सभ्यता और संस्कृति,नई दिल्ली, 1977
कौशाम्बी, डी0डी0,	जैन आगम साहित्य में भारतीय सामाज, 1965
धुर्ये जी.एस.	कास्ट एण्ड क्लास इन अर्ली हिस्टारिकल इण्डिया, बम्बई, 1957
धुर्ये जी.एस.	वैदिक इण्डिया, बम्बई 1979
घोष, एन.एन.	अर्ली हिस्ट्री ऑफ कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1935.
घोषाल, यू.एस	बिगनिंग्स ऑफ इण्डियन हिस्टोरियोग्राफी एण्ड अदर एस्सेज.
चकलादार, एच.सी,	सोसल लाइफ इन ऐशिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता,1929.
चक्रवर्ती के.सी.	ऐंशिएन्ट इण्डियन कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन
चतुर्वेदी, परशुराम,	वैष्णमधर्म, इलाहाबाद, 1953.
चटर्जी, हेरम्बा,	स्टडीज इन सम आस्पेक्ट्स आफ हिन्दू संस्काराज इन ऐंशिएन्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1965
जायवाल, के.पी.	हिस्ट्री आफ इण्डिया, लाहौर, 1934
जायवालस सुवीरा,	वैष्णवधर्म का उद्भव और विकास, द्वितीय संस्करण, दिल्ली, 1996.
जॉली, जे.,	हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम(जर्मन से अनुवाद बी.के. घोष) कलकत्ता, 1928.
जिमर, एच,	फिलासफी आफ इण्डिया, न्यूयार्क, 1951.
जैन, कैलाश चन्द्र,	प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थायें.भोपाल, 1987.
झा,डी.एन,	प्राचीन भारत एक रूपरेखा, नई दिल्ली 1978
झा. एव श्रीमाली,	प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 1981.
टण्डन,यशपाल,	पुराण विषय– समनुक्रमणिका,

डे,एस. के.	हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर.
तिलक बाल गंगाधर	आर्कटिक होम आफ द वेदाज गीता रहस्य
तिवारी, गौरी शंकर,	उत्तरी भारत में ब्राम्हणों की स्थिति (शोध प्रबन्ध)
थापर, रोमिला,	भारत का इतिहास,राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1975
थापर, रोमिला,	ऐंशिएन्ट इण्डियन शोसल हिस्ट्री सम इण्टर पिटेसन्स, दिल्ली, 1978.
दास गुप्ता, एस.,	हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी भाग 2 लन्दन 1940
दास गुप्ता, एस.,	इण्डियन आइडियलिज्म, लन्दन, 1933.
दास, भगवान,	दि साइन्स आफ सोसल आर्गनाइजेशन, मद्रास 1910.
दीक्षितार, बी.आर.आर,	सम आस्पेक्ट्स आफ दि वायुपुराण मद्रास, 1933.
वही,	मत्स्य पुराणः ए स्टडी, मद्रास, 1935.
दुबे, सत्य मित्र ,	मनु की समाज व्यवस्था कलकत्ता, 1964.
दुबे, हरिनारायण	पुराण समीक्षा इलाहाबाद 1984.
धुरिया, प्रताप चन्द्र	शूद्र और नारी 1963.
नन्दी, आर.एन	शोसल रूट्स आफ रिलीजन इन ऐंशिएण्ट इण्डिया कलकत्ता, 1986
नेगी, जे.एस.	सम इण्डोलॉजिकल स्टडीज, इलाहाबाद, 1966.
पटेल, मणिलाल,	दि नाइन्थ मण्डल आफ दि ऋग्वेद, बम्बई, 1940
प्रभु, पी.एम.	हिन्दू सोशल आर्गनाईजेशन, बम्बई, 1958.
पाटिल, डी.आर,	कल्चरल हिस्ट्री फाम दि वायु पुराण दिल्ली, 1973
पार्जिटर एफ.ई	ऐन्शिएन्ट इण्डियन हिस्टॉरिकल ट्रेडीसन्स, आक्सफोर्ड 1922
पार्जिटर एफ.ई	दि डाइनेस्टीज आफ दि कलि एज,आक्सफोर्ड 1913.

पाठक, वी.एस, शैव कल्ट इन नार्दन इण्डिया, वाराणसी, 1960

पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, 1963

पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र स्टडीज इन दि ओरिजिन्स आफ बुद्धिज्म, इलाहाबाद, 1957.

वही, भारतीय परम्परा के मूल स्वर, दिल्ली, 1981.

पाण्डेय, राजबली, दि ज्याग्रफिकल इनसाइक्लोपीडिया आफ ऐन्शिएन्ट एण्ड अर्ली मिडीवल इण्डिया, वाराणसी 1967,

पाण्डेय, राजबली, पुराण विषयानुक्रमणी

वही, भारतीय नीति का विकास, बिहार राष्ट्रभाष परिषद, 1965

वही, हिन्दू संस्कार

पाण्डेय, विमल चन्द्र, प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1981

पाण्डेय, विमल चन्द्र प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 1989

पाण्डेय, वीणापणि, हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन, प्रकाशन, शाखा,सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1960

पाणिक्कर, के.एस., ए सर्वे आफ इण्डियन हिस्ट्री बम्बई 1974,

पाणिक्कर, आर., वैदिक इक्सपीरियन्स–मंत्र मंजरी, लन्दन, 1977.

पीटर्सन, पी., हायमन्स फ्रास दि ऋग्वेद बाम्बे संस्कृत सीरीज न. 36 षष्ठ संस्करण, 1931.

पुसाल्कर, ए.डी. स्टडीज इन एपिक्स एण्ड पुराणाज आफ इण्डिया, विद्याभवन बाम्बे प्रथम संस्करण 1953.

फरक्यूहर, जे.एन.एन. आउटलाइन आफ दि रिलीजियस लिटरेचर आफ इण्डिया,आक्सफोर्ड, 1920,

फ्लीट, जे.एफ.,	कार्पस इंस्क्रिप्सनम इंडिकेरम, भाग 2.
फिक, रिचर्ड	सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इंण्डिया इन बुद्धाज टाइम (एस.के. मित्रा द्वारा अनुवादित) कलकत्ता, 1920
बनर्जी, एन.बी,	स्टडीज इन दि धर्मशास्त्र ऑफ मनु, दिल्ली, 1080.
बनर्जी, जे.एन,	डेबलमेंट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी, कलकत्ता, 1941.
बनर्जी, एस.सी,	धर्मसूत्राज ए स्टडी इन देयर ओरिजिन एण्डडेवलपमेंट. कलकत्ता. 1962.
बनर्जी, एस.सी,	इण्डियन सोसाइटी इनदि महाभारत, वाराणसी, 1976
ब्लूमफील, एम.,	दि रिलीजन आफ दि वेद, वाराणसी, 1972.
बाशम, ए.एल.,	अद्भुद भारत, आगरा, 1978
बाशम, ए.एल.,	ए कल्वरल हिस्ट्री आफ इण्डिया, आक्सफोर्ड, 1975
	ब्राउन, पर्सी, इण्डियन आर्की टेक्चर, बम्बई.
बुलके, फादर कामिल,	रामकथा, इलाहाबाद, 1964.
बेनी प्रसाद	ए स्टेट इन ऐंशिएण्ट इण्डिया, इलाहाबाद, 1928
वही,	हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता
बोस, एन के.,	दि स्ट्रक्चर आफ हिन्दू सोसाइटी, दिल्ली, 1975.
बंधोपाध्याय, एन.,	कौटिल्य, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, 1945
भट्टाचार्य, रमाशंकर,	इतिहास पुराण का अनुशीलन, वाराणसी, 1963.
वही,	पुराणगत वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1965.
भवालकर, वनमाला,	महाभारत में नारी अभिनव, साहित्य प्रकाशन, सागर
भंडारकर डी.आर.	सम आस्पेक्ट्स आफ ऐन्शिएण्ट हिन्दू पालिटी कार्माइकेल लेक्चर्स, 1968

भंडारकर, आर.जी.,	वैष्णविज्य शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजिसस सिस्टम्स, स्ट्रासवर्ग, 1913.
मजुमदार, आर.सी.	कारपोरेट लाइफ इन ऐन्शिएन्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1922
मजुमदार, आर.सी.	एन एडवान्स हिस्ट्री आफ इंडिया, लन्दन 1946
वही,	(सम्पा) हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दि इण्डियन पीपुल
मजुमदार, आर.सी.	वाल्यूम I-IV भारतीय विद्या भवन, बम्बई,1951–1962
मनकड, डी. आर.,	पुराकिण क्रोनोलॉजी
मित्र, आर.एल.,	ए कैटलाग आफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्टस कलकत्ता, 1880
मित्र एस. के	दि एपिक्स आफ दि हिन्दूज, कलकत्ता 1925
मित्र एस. के	ग्यारहरवी सदी का भारत, वाराणसी, 1968
मिश्र, उर्मिला प्रकाश,	प्राचीन भारत में नारी,नेपाल, 1987
मिश्र, जयशंकर,	प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1974
मिश्र, बी.बी.	पॉलिटी इन दि अग्नि पुराण, कलकत्ता,1965
मिश्र योगेन्द्र	एन अर्ली हिस्ट्री आफ वैशाली, पटना, 1962
मिश्र, वी.डी.	सम आस्पेक्ट्स आफ इण्डियन आर्क्यालॉजी, इलाहाबाद, 1977.
मीज, जी.एच.	धर्म एण्ड सोसाइटी, लंदन ,1935
मुकर्जी, आर के	हिन्दू सिविलाइजेशन,लंदन, 1936.
मैक्रिडल, जे. डब्ल्यू.,	ऐशिएण्ट इण्डिया ऐज नोन टु मेगस्थनीय एण्ड एरिया, बम्बई, 1877.

मैकडानल, ए.ए., हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, लंदन, 1925.

मैती, एस के., इकोनामिक लाइफ आफ नार्दद इण्डिया , कलकत्ता, 1957.

मोती चन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, भारती भण्डार प्रयाग ,सं. 2007.

यादव,बी. एन.एस, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन दि ट्वेल्थ सेन्चुरी ए.डी., इलाहाबाद, 1973

याजनिक, आर. के., दि इण्डियन थियेटर लन्दन.

रसेल, बी. फिलॉसफी, न्यूयार्क 1927.

राइस डेविड्स, टी डब्ल्यू., बुद्धिस्ट इण्डिया, लन्दन, 1917

राधाकृष्णन एस. दि हिन्दू न्यू आफ लाइफ, लन्दन, 1927

राना डे, आर.डी., कंसट्रक्टिव सर्वे आफ उपनिषदिक फिलासफी, पूना, 1933

राज, भारतीय, प्राचीन भारत में सामाजिक गतिशीलता ,इलाहाबाद, 1981

राय, उदय नारायण, गुप्त सम्राट और उनका काल,लोकभारती प्रकाशन , इलाहाबाद, 1976

राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद 1965

राय, उदय नारायण, स्टडीज इन ऐन्शिएंट इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर भाग–1, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969.

वही, हमारे पुराने नगर, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1969.

राय, ब्रजदेव प्रसाद, पोलिटिकल आइडियाज एण्ड इन्स्टीट्यूशन इन दि महाभारत, कलकत्ता, 1975.

राय, सिद्धश्वरी नारायण, पौराणिक धर्म एवं समाज पञ्चनद पब्लिकेशंस इलाहाबाद 1968.

राय, सिद्धश्वरी नारायण, हिस्टारिकल एण्ड कल्चरल स्टडीज, पुराणिक पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, 1978.

रायचौधरी हेमचन्द्र	दि अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव सेक्ट , कलकत्ता, 1920.
रायचौधरी हेमचन्द्र	स्टडीज इन इण्डियन एन्टीक्यूटीज, कलकत्ता, 1958
रायचौधरी हेमचन्द्र	पोलिटिकल हिस्ट्री आफ ऐन्शिएंट इण्डिया, कलकत्ता, 1953.
राव, विजय बहादुर,	उत्तर वैदिक समाज एवं संस्कृति, वाराणसी, 1966.
राव,टी.ए. गोपीनाथ,	एलिमेन्ट्स आफ हिन्दू आइक्नोग्राफी (दो भागों में) मद्रास, 1914–1916
रे हेमचन्द्र.	डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया कलकत्ता 1831
रैप्सन, ई जे.,	(सम्पा) कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग–1 दिल्ली, 1962.
रोज एच जे,	मार्डन मेथड्स इन क्लासिकल माइथॉलजी, सेण्ट एण्ड्रयूज, 1930
रोजेनफील्ड, जे,	दि डाइनेस्टिक आर्ट आफ दि कुषाणाज कैलीफोर्निया प्रेस वर्कल एण्ड लाओस ऐजेल्स, 1967.
लॉ, एन.एन,	आस्पेक्ट्स आफ ऐंशिएण्ट इण्डियन पॉलिटी, आक्सफोर्ड, 1921, पुनर्मुद्रित 1960.
लॉ, एन.एन,	स्टडीज इन ऐंशिएण्ट हिन्दू पालिटी, लंदन, 1914
ला, बी.सी	इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्ट्स आफ बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, दिल्ली, 1980
वही,	ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पुनमुद्रण दिल्ली, 1972.

ला, बी.सी — हिस्टारिकल जियोग्राफी आफ ऐशिएण्ट इण्डिया पेरिस

लिडंगत, आर., — दि क्लासिकल लॉ आफ इण्डिया (अनुवादक जेडी एम.डेरेट) नई दिल्ली, 1973.

व्यास. एस.एन., — इण्डिया इन दि रामायण एज, दिल्ली, 1967.

विण्टरनित्स, एम., — हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटेरचर भाग–1 कलकत्ता, 1972.

विल्सन, एच.एच., — सेलेक्ट स्पेसीमेन ऑफ दि थियेटर आफदि हिन्दूज , 2 भागों में तृतीय संस्करण, लंदन, 1871

विल्सन, एच.एच., — इंट्रोडक्सन टु दि इंग्लिश ट्रान्सलेशन ऑफ दि विष्णु पुराण.

वही, — पुराणाज ऑर ऐन एकाउण्ट ऑफ देयर कण्टेंट एण्ड नेचर.

बेबर, ए., — हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, लंदन, 1882.

वेस्टर मार्क, ई. — दि ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट आफ मोरल आइडियाज, 2 भागों में, लंदन, 1906.

वैध, सी.बी., — हिस्ट्री आफ मिडीवल हिन्दू इण्डिया भाग–1 पूना, 1921.

बोरा, डी.पी. — इवोल्यूशन आफ मारल्स इन दि एपिक्स (महाभारत एण्ड रामायण), बम्बई, 1959.

शर्मा ,दशरथ, — राजस्थान थ्रू दि एजेज, अजमेर, 1966.

शर्मा, आर'.एन., — ऐंशिएण्ट इण्डिया, एकार्डिग टु मनु, दिल्ली, 1980.

शर्मा, रामशरण, — ऑस्पेक्ट्स आफ पालिटिकल आइडियाज एण्ड इन्स्टीट्युशंस इन ऐंशिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, 1959

शर्मा, रामशरण, — इण्डियन फ्यूडलिज्म, कलकत्ता, प्रथम संस्करण 1965. द्वितीय संस्करण, 1981.

वही, — लॉइट आन अर्ली इंण्यिन सोसाइटी एण्ड इकानमी, बम्बई, 1966.

शर्मा, रामशरण,	शूद्राज इन ऐशिएण्ट इंण्डिया दिल्ली 1958 द्वितीय संशोधित संस्करण 1980
शर्मा, लक्ष्मीनिधि,	धर्म, दर्शन, इलाहाबाद 1992.
शर्मा,रामाश्रय,	ए सोशियों—पोलिटिकल स्टडी आफ दि बाल्मीकि रामायण, दिल्ली, 1971.
शर्मा, वी.एन.	सोशल लाइफ इन नार्दन इण्डिया, दिल्ली, 1966.शामशास्त्री,
आर.,	इवोल्यूशन आफ इण्डियन पॉलिटी, कलकत्ता, 1920.
शास्त्री, के.ए.एन.	आस्पेक्ट्स आफ इण्डियाज हिस्ट्री एण्ड कल्चर दिल्ली, 1974.
शास्त्री जे.एल.	पालिटिकल थॉट इन दि पुराजाज लाहौर, 1944
शास्त्री,एस.राव.,	पॉलिटिकल थॉट इन दि पुराजाज, लाहौर, 1944.
शास्त्री, आर.,	स्टडीज इन रामायण बड़ौदा स्टेट कीर्ति मंदिर लेक्चर सरीज नं.— 9.
शाह, के.टी.,	ऐंशिएन्ट फाउण्डेशंस आफ इकानमिक्स इन इण्डिया. बम्बई, 1954.
शुक्ल बद्रीनाथ	मार्कण्डेय पुराण एक अध्ययन, चौखम्बा विद्या भवन, काशी, 1960.
सखाउ, ई.सी.,	अल्बेरूनीज इण्डिया, 2 भागों में लंदन, 1888.
सरकार, डी.सी.,	सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस कलकत्ता, 1942.
सरकार, डी.सी.,	स्टडीज इन दि ज्याग्राफी आफ ऐशिएण्ट एण्ड मिडीवल इण्डिया, दिल्ली, 1966
सरकार, बी.के.	दि पॉलिटिकल इंस्टीटयूशंस एण्ड थियरीज आफ दि हिन्दूज कलकत्ता 1939.

सत्यश्रवा, शकाज इन इंडिया, लाहौर, 1947.

सालेतोर , बी.ए., ऐंशिएण्ट इण्डियन पॉलिटिकलथॉट एण्ड इंस्टीट्यूशन, न्यूयार्क, 1963

सालेतोर, आर.एन., लाइफ इन द गुप्ता एज, बम्बई, 1943.

सिन्हा, बी.पी., मगध का राजनीति इतिहास, पटना, 1978.

सिन्हा, बी.पी., रीडिंग्स इन कौटिल्याज अर्थशास्त्र, दिल्ली, 1976

सिन्हा, जी.पी., पोस्ट गुप्ता पॉलिटी, कलकत्ता, 1970.

सिन्हा, एच.एन., सांवरनेटी इन ऐशिएण्ट इण्डियन पॉलिटी, लंदन, 1938.0

सिन्हा, एन.के.पी., पोलिटिकल आइडियाज एण्ड आइडियल्स इन दि महाभारत, दिल्ली, 1976.

सिन्हा, प्रभावती, स्मृति, पोलिटिकल एण्ड लीगल सिस्टम एसोशियो इकोनामिक स्टडी, नई दिल्ली, 1982

सिंह, एम.आर. ए क्रिटिकल स्टडी आफ दि ज्याग्रिफिकल डाटा इन दि अर्ली पुराणाज, कलकत्ता, 1972.

सिंह, रणजीत, धर्म की हिन्दू अवधारणा, इलाहाबाद, 1977.

सेन, ए.के स्टडीज इन हिन्दू पालिटिकल थाट कलकत्ता 1926

सेन बी.सी. स्टडीज इन दि बुद्धिस्ट (ट्रेडिशन एण्ड पॉलिटी) कलकत्ता, 1974.

सेनगुप्ता एन.सी., इबोल्यूशन आफ ऐशिएण्ट इण्डियन लॉ, लंदन, 1953.

सेनगुप्ता एन.सी. सोर्सेज आफ लॉ एण्ड सोसाइटी इन ऐशिएण्ट इण्डिया. कलकत्ता. 1914

सैबाइन,जी. ए हिस्ट्री आफ पालिटिकल थियरी, लंदन, 1956 पुनमुद्रित, भारत, 1973.

स्पेल मैन जे डब्ल्यू. — पॉलिटिकल थियरीज इन ऐंशिएण्ट इण्डिया, आक्सफोर्ड, 1964

स्टर्नबक, एल. — जुरिड़िकल स्टडीज इन एंशेण्ट इण्डियन लॉ, वाराणसी, 1965–67

स्मिथ बी.ए. — दि अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, चतुर्थ संस्करण, आक्सफोर्ड, 1924.

श्रीवास्तव, कृष्णचन्द्र, — प्राचीन भारत का इतिहास, इलाहाबाद 1989.0

वही, — प्राचीन भारत की संस्कृति इलाहाबाद, 1988.

श्रेडर, एफ.ओ. — ऐन इंट्रोडक्शन टु दि पांचरात्र एण्ड दि अहिर्बुधन्य संहिता आडयार–मद्रास 1916

हापकिन्स, एफ. डब्ल्यू., — दि सोशल एण्ड मिलिट्री पोजीशन आफ दि रूलिंग कास्ट इन एशेण्ट इंडिया, न्यूहैवन, 1889.

हापकिन्स, एफ. डब्ल्यू., — दि ग्रेट एपिक आफ इंडिया न्यूहैवेन 1920

हाजरा, आर.सी., — पुराणिक रिकार्डस आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, दिल्ली, 1975.

हिरियाना, — दि इसीन्टियल्स ऑफ दि इण्डियन फिलासफी, लंदन

त्रिपाठी,पी.वी. — पुरूषार्थ चतुष्ट्य, वाराणसी, 1970.

कोश एवं विश्वकोष-

द स्टूडेण्ट संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, वी0एस0 आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1963.

द स्टूडेण्ड इंगलिश– संस्कृत डिक्शनरी, वी0एस0 आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1963.

संस्कृत–इंगलिश डिक्शनरी, वी0वी0गाइड.

संस्कृत–इंगलिश डिक्शनरी, मोनियर विलियम्स

वैदिक शब्दकोष, सूर्यकांत वैदिक रिसर्च सोसाइटी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी,वाराणसी, 1963.

यजुर्वेद पदानुक्रमणिका, बम्बई, 1908.

द इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड इथिक्स,1.2.

बुद्धिस्ट हायब्रिड संस्कृत डिक्शनरी, एफ. इडगेर्टन, दिल्ली, 1970

ए क्रिटिकल पॉली डिक्शनरी,डिनेज, एण्डर्सन, कोपेनहेगन, 1924–48,

डिक्शनरी आफ पाणिनि, एस0एम0कात्रे,पूना, 1978,

पॉली– इंगलिश डिक्शनरी, रिजडेविड्स, पुनर्मुद्रण, नई दिल्ली, 1975,

दि रूट्स, वर्ब, फार्म्स एण्ड प्राइमरी डेरिवटिवेज आफ दि संस्कृत लैंग्वेज, डब्ल्यू0 डी ह्विटने, दिल्ली, 1963.

ए डिक्शनरी ऑफ दि वैदिक रिट्यूल्स बेस्ड आन दि श्रौत एण्ड गृह्यसूत्राज् चित्रभानु सेन, दिल्ली, 1978.

जर्नल्स एवं शोध पत्र/पत्रिकायें-

आर्क्याजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इण्डिया,

आर्क्याजिकल सर्वे रिपोर्ट्स.

इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, बम्बई, वाल्यूम्स–5 (1876), 12 (1893), 18 (1889),30 (1901), 37 (1908).

इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटर्ली, कलकत्ता, वाल्यूम्स–3, 9, 10.

इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू, दिल्ली.

इण्डियन कल्चर, वाल्यूम–4, 1918.

एनाल्स ऑफ दि ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास.

एनाल्स आफ दि भंडारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना वाल्यूम्स II, X, XIV, XVII, XX.

एनुवल रिपोर्टस आफ दि आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, दिल्ली.

एपिग्रैफिया इण्डिका, कलकत्ता.

क्वाटर्ली रिव्यू आफ हिस्टारिकल स्टडीज , कलकत्ता.

जर्नल आफ अमेरिकन ओरियण्टल, सोसाइटी, न्यूहैवेन, वाल्यूम 59,61.

जर्नल ऑफ दि आन्ध्रा हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी.

जर्नल आफ इकनामिक एण्ड सोशल हिस्ट्री आफ दि ओरियण्ट लाइडेन

जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री, त्रिवेन्द्रम.

जर्नल आफ इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज, इलाहाबाद.

जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बाम्बे, बाम्बे.

जर्नन आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता.

जर्नल आफ दि गंगानाथ झां रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद,

जर्नल आफ बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, वाल्यूम्स 14, 16, 18.

जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास, वाल्यूम्स 3–5, 9–12.

जर्नल आफ रॉयल एसियाटिक सोसाइटी, लंदन 1904, 1907, 1908, 1911,1961,1918.

जर्नल आफ दि यूनिवर्सिटी आफ बाम्बे, 1942 वाल्यूम XI.

जर्नल आफ यू.पी. हिस्टॉरिकल सोसाइटी, लखनऊ, वाल्यूम 17.

जर्नल आफ वेंकटेश्वर ओरियण्टल इंस्ट्टीटयूट, तिरूपति, वाल्यूम–8.

दि न्यू इंण्डियन ऐण्टीक्वेरी, वाल्यूम 5, 1942–43.

पुराणम, सर्व भारतीय काशीराज न्यास दुर्ग, रामनगर, वाराणसी.

प्रोसीडिंग्स आफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस.

प्रोसीडिंग्स एण्ड ट्रान्जेक्शन ऑफ आल इण्डिया.

सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट, मैक्समूलर द्वारा संपादित, आक्सफोर्ड.

सैक्रेड बुक्स आफ दि हिन्दूज, पाणिनी आफिस, भुवनेश्वरी आश्रम इलाहाबाद से प्रकाशित तथा इंडियन प्रेस से मुद्रित.

अभिलेख-

कारपस इंसक्रिप्शनम इंडिकेरम, जिल्द–1 (डॉ0 बुल्स द्वारा सम्पादित)

कारपस इंसक्रिप्शनम, इंडिकेरम, फ्लीट, जे0एफ0, वाराणसी, 1963 ई0.

कारपस इंसक्रिप्शनम इंडिकेरम, जिल्द 4, भाग 1 एवं 2, मिराशी वासुदेव, अटकमंड, 1955 ई0.

गुप्त अभिलेख, उपाध्याय, वासुदेव, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1974 ई0.

प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, उपाध्याय, वासुदेव, दिल्ली, 1979 ई0.

सेलेक्ट इंसक्रिप्शन्स, जिल्द–1, डी0सी0 सरकार, कलकत्ता, 1965.

विदेशी यात्रियों के विवरण-

अल्बरूनीज इण्डिया, साचों, पापुलर एडीशन, 1914 ई0.

आन युवानच्वांग, वाटर्स , 1905 ई0.

फाहियान, लेग्गे, आक्सफोर्ड, 1886 ई0.

फाहियान, गाइल्स, लन्दन, 1877 ई0.

लाइफ आफ युवानच्वांग, बील, लन्दन, 1914 ई0.

श्वेतासिंह